सूर्य के स्तोत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

✲

निर्देशक

डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी

एम० ए०, डी० फिल्०

✲

शोधकर्त्री

ज्योति

एम० ए०

✲

सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९८७

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

-0-

पुरोवाक्

सूर्य ज्योति है, ज्योतियों का ज्योति है, अद्वितीय प्रकाश है, जीवन और प्राण है। चराचर की आत्मा है —

'सूर्य आत्मा जगत: तस्थुषश्च'

सूर्य के अभाव में जीवन की सम्भावना की कल्पना असम्भव है। आत्मा भी ज्योतिरूप है। ज्योतिस्तम सूर्य विश्वात्मा है। प्राणतत्व का परमाधिष्ठान है। वैदिक ऋषि ने तो 'पश्येमशरद: शतम्, 'माम: सूर्यस्य संदृशो युयोथा:' द्वारा सततसूर्यसंदर्शन की कामना व्यक्त की है। सच तो यह है कि --

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्वं पूषन्नपावृणु मह रत्नाय चताय सत्यधर्माय दृष्टये।'

सत्य इसी स्वर्णकलश में स्वर्णपिधान से पिहित है। इसका अधिष्ठाता सत्यरूपपूषान देव ही इसे खोल सकता है। उसी की कृपा से सत्य का उद्घाटन सम्भव है --

'जो जानहि जेहि देहि जनाई जानत तिनहिं तिनहिं होइ जाई।'

तद्रूपता आत्मतादात्म्य मानव जीवन का लक्ष्य है। यह तादात्म्य - यह स्वरूपसंदर्शन स्वयं उसी की कृपा से सम्भव है 'क्योंकि तुलसी के शब्दों में 'जड़ चेतनहि ग्रन्थि पर गई - - - निरुआई।'

ग्रन्थि के विमोक्ष हेतु ही सत्यस्वरूपोद्घाटन आवश्यक है। सत्य-स्वरूपोद्घाटन - स्वर्णकलश का पिधानापनयन देवशास्त्रीय विराट्स्वरूपसंदर्शन ही है। कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य विराटस्वरूप का संदर्शन स्वत: ही कृपापूर्वक कराया था और तब अर्जुन ने कहा —

'पश्यामि देवां स्तव देव देहे' - - -

'भुशुण्ड' काकरूप में राम की लीलाओं को देख रहा था । चपलकाकीय प्रकृति से डर रहा था कि राम पकड़ न लें । राम ने हाथ बढ़ाया और भुशुण्ड ने उड़ना चाहा - उड़ा और उड़ता ही रहा । जब जब पीछे देखे तो राम का हाथ उसे पकड़ ही लेने वाला हो । वह अनेकानेक ब्रह्माण्डों में उड़ता रहा किन्तु उसके हाथ की दूरी कम न हुई । अन्तत: राम ने उसे पकड़ कर मुंह में डाल लिया । अनन्त कोटि ब्रह्माण्डरूप उदर में वह घूमता रहा । राम के रोम-रोम में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड लटक रहे थे । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव देखे । किन्तु राम एक ही थे - अद्वितीय और अनन्त । अन्त: राम ने भुशुण्ड को ज्ञान दिया । यह राम द्वारा भुशुण्ड को यह विराट्‌रूप संदर्शन प्राप्य था । कभी-कभी कृपालु परमात्मा इसे हठात् प्रकट करता है । कौसल्या को भी राम के मुख में ब्रह्माण्ड संदर्शन हुए थे । यही विराट्-रूपसंदर्शन तत: तज्ज्ञानजन्य परमविश्रान्ति ही जीवन का लक्ष्य है । ऋषि ने इसी की कल्पना की है । सर्वगत पूषा ही राम है, वही कृष्ण है । वह सर्वदेवमय, देवदेव देवाधिदेव है । उसी से समग्रतामरूपता का उद्भव और उसी में विलय है, विश्रान्ति है । यही विश्रान्ति जीवन का लक्ष्य है । तप का अर्थ ऊष्मा है साधुजनों का पञ्चाग्नि सेवन तप है । तप द्वारा तप्त का ताप में विलय ही लक्ष्य है । यह प्रतीकोपासना है ।

मेरा यह प्रस्तुत शोधप्रबन्ध भी प्रतीकोपासना है । शोध तप है । इस तप से तृप्त हो ताप के साथ तादात्म्य ही लक्ष्य है । मेरे शोधनिर्देशक: श्रद्धेय डा० हरिशङ्कर त्रिपाठी जी ने सम्भवत: इसी लक्ष्य से मुझे सूर्य स्तोत्रों पर कार्य करने की आज्ञा दी, ऐसी मेरी सम्भावना है । शोध पुण्य कर्म है । मीमांसक दृष्टि से कर्म ही तो धर्म है और वह भी वेदापुराणादि और त्रिक-ज्योति, विश्वात्मा सूर्य देव के स्तोत्रों पर, यह मेरे जन्मान्तर पुण्य ही थे ।

प्रस्तुत विषय अति व्यापक तथा परम गहन है । शोध का कार्य

ही कठिन है । लक्ष्य दूर दृश्यमान होता रहता है । समीप पहुंचने पर पुन: दूरतर लगने लगता है । यही पहुंचने और लक्ष्य के दूरतर प्रतीति की क्रिया पुन: पुन: घटित होती है । इसका पंथ भी पिच्छिल होता है । पंथ की पिच्छिलता के कारण यदि सुकुमार शोधकर्त्री फिसल भी जाय तो ; श्रेष्ठजनों को उसे सहारा देना धर्म होता है । आशा है उदारचेता गुरुजन मुझे अवश्य ही सहारा देंगे । भूलकर जाना मानव की प्रकृति है । यही भूलें इतिहास का निर्माण करती हैं । जिससे सहारा त्रुटिविहीन स्वर्णिम भविष्य की कल्पना सम्भव होती है । एक भूल से ठोकर खाकर व्यक्ति आत्मोर्जा को संकलित कर संकल्प लेकर ऊपर बढ़ जाता है । आप सब मेरी इन भूलों को क्षमापूर्वक यदि इंगित कर सकें तो मेरा सौभाग्य होगा ।

यज्ञ रूपी शोधकार्य में निर्देशक ऋत्विक् रूप हुआ करता है । ऋषि-तुल्य डा० हरिशङ्कर त्रिपाठी मेरे इस यज्ञ के ब्रह्मा रहे हैं क्योंकि कहा भी गया है --

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णो गुरुर्देवो महेश्वर: ।
गुरु: साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नम: ।।

ब्रह्मतुल्य गुरु की परम उदार प्रेरणा और अतुल सद्भावना शिष्यजनों की अपनी रिक्थ हुआ करती है । उन्होंने अध्वर्यु की भूमिका स्वीकार की । मैं उनकी परम कृतज्ञ हूं । विभागाध्यक्ष डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव जी ने सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त किया । मैं उनकी हृदय से आभारी हूं । जिन अन्य बन्धु जनों ने मुझे बहुधा सहयोग प्रदान किया मैं उन सबके प्रति भी विनम्र हार्दिक आभार व्यक्त करती हूं । विशेषत: श्री श्यामलाल तिवारी जी के अति शुद्ध विभूर्ण टंकण कार्य से यज्ञ में पूर्णाहुति का कार्य किया उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूं ।

विषय परिधि :-

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का विषय 'सूर्य के स्तोत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन' है। जिसका उद्देश्य पुराणों में प्राप्त हुई प्रमुख स्तुतियों का सम्पूर्ण संकलन एवं विवेचन है। सूर्य के स्तोत्रों को यथा सम्भव आलोचनात्मक बनाने का प्रयास किया गया है। आलोचनात्मक से हमारा तात्पर्य यह रहा है कि सूर्य के स्तोत्रों के सम्बन्ध में पुराणों में जो विभिन्न प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं, उन सब को विषय के आधार पर तर्कसंगत समीक्षा करते हुए किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त रहते हुए इन स्तोत्रों को किसी वर्ग विशेष में प्रतिष्ठित किया जाय। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में सूर्य के अन्तर्गत वह समस्त सामग्री सन्निविष्ट है जिसका सम्बन्ध उन स्तुतियों में रहा है। इस प्रकार स्तोत्रों का अध्ययन, सूर्य के प्रमुख स्तोत्रों, इन स्तोत्रों के प्रमुख प्रकार जैसे - कर्मकाण्डीय स्तोत्र, जपात्मक स्तोत्र, नामात्मक, पाठात्मक, रक्षात्मक, बीजमन्त्र, खड्ग मन्त्र आदि स्तोत्र आ जाते हैं।

सूर्य के विशिष्ट स्तोत्रों को आलोचनात्मक दृष्टि में रखकर रस की दृष्टि से उनमें प्रवाहित होने वाला भक्तिरस, छन्द एवं अलंकारों का सम्यक् निरूपण किया गया है। सूर्य स्तोत्रों का सम्बन्ध पूजा व ध्यानरूप होने के कारण मन्दिर, व्रतों व त्योहार का वर्णन है।

सूर्य की महिमा व उत्पत्ति सम्बन्धी कथाओं को व्यक्त कर सूर्य की नित्याराधना-विधि व ग्रहणादि, मुद्रादि को ध्यान में रखकर सूर्य के प्रतीकरूप रथ का भी वर्णन है।

विषय निरूपण -

प्रथम अध्याय में शोधप्रबन्ध की भूमिका है जिसके अन्तर्गत क्रमशः स्तोत्रों की सामान्य उत्पत्ति, प्रयोजन, वैशिष्ट्य तथा स्तोत्र साहित्य के

उद्भव विकास की दृष्टि में रखते हुए विविध सम्प्रदाय के स्तोत्रों का परिचयात्मक वर्णन करने का प्रयास किया है। साथ ही स्तोत्रों के वर्गीकरण के आधार पर स्पष्ट कर उन्हें खड्ग स्तोत्र, हृदयस्तोत्र, रक्षात्मक स्तोत्र आदि की संज्ञा सुधा से अभिहित किया है।

द्वितीय अध्याय में सूर्य शब्द की व्युत्पत्तियां उनके वाच्यनामों का उल्लेख है। सूर्य के विविधरूप जो वेद, पुराण, उपनिषदों में उपलब्ध हैं उनका विशद् विवेचन है। तृतीय अध्याय में सूर्य की स्तुतियां की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है किन्तु उनमें विशिष्ट स्तुतियों का ही संकलन है तथा उन स्तुतियों में प्राप्य सूर्य के विभिन्न स्वरूप जैसे - सर्वदेवमय, सर्वोपकारीगुण, साक्षात् ब्रह्मरूपता तथा कर्मयोगादि का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में सूर्य की उत्पत्ति महिमा तथा स्तोत्रों से सम्बन्धित कुछ प्रमुख कथाएं संकलित हैं। सूर्य की वंशावली, सूर्य के प्रिय पुष्प, व मुद्राओं के अतिरिक्त सूर्य के मन्दिर व नित्याराधना-विधि व्रत त्योहारों का वर्णन किया गया है। चूंकि सूर्य स्तुतियां भक्तिभाव से प्रेरित होकर ऋषियों की वाणी उद्भूत है।

पंचम अध्याय में स्तुतियों से सम्बन्धित भक्तिरस के परिचय के साथ-साथ सूर्य के स्तोत्रों में प्रयुक्त प्रमुख भक्तिरसों की अभिव्यञ्जना है।

षष्ठम् अध्याय में छन्दाभिव्यक्ति के अतिरिक्त सूर्य के स्तोत्रों में प्रयुक्त वैदिक छन्द त्रिष्टुप, अनुष्टुप, गायत्री तथा लौकिक छन्दों में स्रग्धरा, शिखरिणी व आर्या छन्दों का उल्लेख है।

सप्तम अध्याय में सूर्य की स्तुतियों में आलंकारिक सौन्दर्य की भी अभिव्यञ्जना है। जिसकी विविध दृष्टियों से मूल्यांकन की चेष्टा के साथ शोध-प्रबन्ध का उपसंहार का भी उल्लेख है।

अध्ययन प्रणाली -

प्रस्तुत अध्ययन में सूर्य के प्रमुख स्तोत्रों

का ही वर्णन सबसे अधिक मुख्य विषय रहा है । क्योंकि इन स्तुतियों में सूर्य के विभिन्न परिचित, चिरपरिचित तथा अपरिचित रूपों का सर्वत्र उल्लेख है । जिसको इंगित करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है । यद्यपि इन स्तुतियों का एक मात्र ध्येय रोगों का विनाश, तम का नाश, अरिविजय व सर्व कामनाओं की पूर्ति करना है । सूर्य सम्बन्धित विषय अत्यन्त विशद है । यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह निर्णय लिया जा सकता है कि सूर्य के किसी भी एक अंश पर शोधकार्य हो सकता है । चाहे उपासना पद्धति, या साहित्यिक अध्ययन, सूर्य गायत्री तथा पुरातत्व ज्ञानियों के द्वारा विश्लेषित मन्दिरों का आलोचनात्मक अध्ययन है । इस प्रकार सूर्य से सम्बन्धित सम्यक् जानकारी हो सकती थी किन्तु एक विषय में सब कुछ व्यक्त करना सम्भव नहीं है । इसलिए दोनों के मध्य का मार्ग अपनाते हुए प्रस्तुत प्रयासित शोधप्रबन्ध में यथासम्भव चेष्टा यही की गयी है कि सूर्य के स्तोत्रों में प्राप्त विषय का प्राधान्य तथा उसी के अनुरूप सूर्य के स्वरूपों की व्याख्या है ।

सूर्य के स्तोत्रों के अतिरिक्त सूर्य से सम्बन्धित कथा व वंशावली के विषय में विशाल वाङ्मय में जहां जहां भी साक्ष्य मिलते हैं उसे संकलित कर इस विषय को और अधिक स्पष्ट करने में सहायक प्रतीत हुए हैं । तत्पश्चात् सूर्य के पौराणिक तथा आधुनिक साहित्य स्तोत्रों को सम्मुख रखकर उनकी यथासम्भव उपलब्ध तथ्यानुकूल तथा तर्कसंगत आलोचना की गई है ।

इस प्रकार प्रस्तुत शोधप्रबन्ध की अध्ययन प्रणाली केवल पुराणों तक में ही नहीं सीमित रखकर विशाल संस्कृत वाङ्मय में अत्यन्त विस्तृत हो गई है ।

इस विशाल क्षेत्र को यथाशक्ति दृष्टि में रखने की चेष्टा की गई है । इस विषय की वस्तुगत्या स्वाभाविक है । सम्भवत: अनेक स्थल पर ऐसे सन्दर्भ या विचार दृष्टि पथ में न आ पाया हो, जो प्रस्तुत अध्ययन में

उपादेय होते हैं तो इन त्रुटियों के लिए मानव बुद्धि की शक्ति सीमितता क्षम्य है । फिर भी इतना निवेदन अवश्य है कि प्रस्तुत अध्ययन में उपादेय सामग्री जुटाने में अपनी ओर से किसी भी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता -

प्रस्तुत प्रबन्ध में यद्यपि सूर्य के स्तोत्रों का ही अध्ययन और विवेचन ही मुख्य आधार बनाया गया है तथापि प्रसंगत: इसमें पुराणों में यत्र तत्र बिखरी हुई सूर्य सम्बन्धित अंशों को एकत्र किया गया है और इस प्रकार यह प्रयास सूर्य के स्तोत्रों का सन्दर्भ के साथ-साथ प्रमुख ग्रन्थ भी बन गया है । इससे भी अधिक इस प्रबन्ध में सूर्य की स्तुतियों में प्राप्य स्वरूपों का प्रथम बार उल्लेख करके उनकी साहित्यिक दृष्टि से तर्क संगत आलोचना भी की गई है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को पूर्वाग्रह तथा अपूर्ण दोषों से मुक्त रखने का सर्वत्र प्रयत्न किया गया है ।

सूर्य की आध्यात्मिक प्रवृत्ति के साथ-साथ पञ्चदेवों, नवग्रहों में तथा प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्ति है ।

अत: शोधप्रबन्ध की मौलिकता मुख्यत: बिखरी हुई स्तुतियों का एकत्रीकरण कर विषयानुरूप आलोचनात्मक अध्ययन है । इसके अतिरिक्त भगवद्-भावना से किसी भी देव की उपासना श्रेष्ठ है । भगवद्भावनाओं से की जाने वाली उपासनाओं में श्री सूर्यमण्डल में परमात्मरूप की भावना करना भी एक और बड़े महत्त्व का विषय है । अनादिकाल से ऋषिमहर्षियों ने इस प्रकार की उपासनाकर अपने जीवन को धन्य बनाया और धर्म मार्ग दर्शन कराया है ।

-0-

प्रथम अध्याय

स्तोत्र साहित्य का परिचय

स्तोत्र साहित्य का परिचय -

संस्कृत का स्तोत्र-साहित्य बड़ा ही विशाल, सरस एवं हृदय-स्पर्शी है। यद्यपि वेद आध्यात्मिक ज्ञान एवं कर्मकाण्ड के साधन रहे हैं। कवित्व के प्रकाशन के नहीं, तथापि वैदिक स्तुतिपरक ऋचाओं में काव्य के अर्धस्फुटित अंकुर देखे जा सकते हैं। प्रत्येक धर्म में कवि अथवा भक्त अपने हार्दिक विचारों को भगवान् के सम्मुख नतमस्तक होकर व्यक्त करते हुए उनकी महिमा के वर्णन में अपने कोमल तथा भक्तिपूरित हृदय को अभिव्यक्त करता है क्योंकि वह कभी प्रभु की दिव्य विभूतियों के दर्शन से चकित हो उठता है, कभी भगवान् के विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीनजनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्मविस्मृत हो उठता है। इन्हीं भावों में कवि की अन्त: प्रेरणा का स्वाभाविक स्फुरण होता है और यहीं आराध्य-विषयक से अन्त:करण प्लावित एवं स्तुत्यभाव से भावित होकर प्रकट होता है। इस प्रकार स्तोत्रों में परमेश्वर की परिकल्पना द्वारा काव्यों में भाव की तीव्रता एवं सरसता का सहज समन्वय होता है। स्तोत्र-साहित्य वाङ्मयी भक्तिभावपूर्ण आराधना है।

स्तोत्र का अर्थ -

पुराणों तथा काव्यों में ऋषियों एवं भक्तकवियों ने सुख-दु:ख की भावावेगमयी अनुभूति को विनम्रतापूर्वक परमेश्वर के गुणानुवाद, कीर्तन, स्मरण एवं अपनी रक्षा के लिए उदात्तकण्ठ से विविध रूपों में जो भावगर्भ-निर्भर रचनाएं प्रस्तुत कीं वे ही भारतीय साधना में `स्तोत्र' की संज्ञा से अभिहित हुईं। साधारणतया `स्तोत्र' शब्द का अर्थ-विभिन्न रूपों में उपलब्ध होता है यथा —

स्तु० - अदा० उभ० स्तौति, स्तवीति, स्तुते, स्तुवीते, स्तुत इच्छा० तुष्टूषति ते, इकारान्त या उकारान्त उपसर्ग के पश्चात् स्तु के स् का ष् हो जाता है जिसका अर्थ है प्रशंसा करना, स्तुति करना, कीर्तन

करना, भजन गाना, स्तोत्रों द्वारा पूजन करना इत्यादि ।[1]

इस प्रकार स्तोत्र शब्द का अर्थ स्तु + ष्ट्रन् अर्थात् स्तूयते नेनेति।
स्तु + दाम्नीशस् युयुजेति । इति ष्ट्रन् ।[2]

स्तोत्र शब्द स्तु + ष्ट्रन् से बना है । स्तोत्र शब्द के पर्यायवाची स्तुति और स्तव शब्द भी माने जाते हैं । इन दोनों शब्दों की निष्पत्ति स्तु + क्तिन् तथा स्तु + अप् से हुई है ।[3]

मलयगिरि ने व्यवहार भाष्य में स्तुति और स्तव में अन्तर बताते हुए लिखा है । यथा --

'एक श्लोक: द्विश्लोकौ त्रिश्लोका: वा स्तुतिर्भवति ।
परतश्चतु: श्लोकादिक: स्तव: ।
अन्येषामाचार्याणां मतेन एक श्लोकादि:, सप्तश्लोका,
पर्यन्ता स्तुति: तत: परमष्टश्लोकादिका: स्तवा: ।।[4]

अर्थात् एक श्लोक से तीन श्लोक पर्यन्त स्तुति और इसके अनन्तर चार श्लोकादि स्तव है । मतान्तर से एक श्लोक से सप्तश्लोक पर्यन्त स्तुति और अष्ट श्लोक अथवा इससे अधिक श्लोक स्तव कहलाते हैं ।

१- वी० एस० आप्टे : संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ ११३५

२- शब्दकल्पद्रुम, प चमकाण्डम्, ३।२।१८२, पृष्ठ ४३५

३- डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृष्ठ ५५ ।

४- मलयगिरि द्वारा रचित : व्यवहार भाष्य - ३००, भा० १८३

अन्यत्र स्तव और स्तोत्र में भेद बताते हुए यथा लिखा है —

'स्तव गम्भीर अर्थ वाला और संस्कृत निबद्ध किया जाता है तथा स्तोत्र की रचना विविध छन्दों के द्वारा होती है ।'[1]

वस्तुत: आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना ही स्तुति है । अतएव स्तोत्र में रचनाएं हैं जिनमें परमात्मा, परमेष्ठी या अन्य देवी-देवताओं की स्तुति की जाय । आचार्य समन्तभद्र ने लिखा भी है —

'अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा प्रभु पर घटित नहीं होता यत: भगवान् में अनन्त गुण हैं, उनके एक गुण का वर्णन करना ही अशक्य है, फिर अतिशयोक्ति किस प्रकार हो सकती है । थोड़े गुणों का उल्लंघन करके बहुत्व कथावली स्तुति भगवान पर नहीं घटती क्योंकि उनमें अनन्त गुण हैं, उन गुणों को कहना भी संभव नहीं है ।'[2]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि प्रभु के आसाधारण गुणों की प्रशंसा करना ही स्तव या स्तवन है । इन स्तुतियों में भक्त अपने परमेश्वर या आराध्य की महिमा से अभिभूत होकर ही भावनापूर्ण अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करता है और उद्दाम भक्ति रस प्रवाह से अन्तस्तल में रहस्यमयी माधुर्य भावना की निगूढ धारा बहती है । स्तोत्रों के पाठ मात्र से हृदय में तदनुरूप रस का आविर्भाव हो उठता है । स्तुतियां गेय होती हैं गेय प्रबन्ध होती है ।

१- श्री शान्तिसूरि चैत्यवंदणमहाभाष । जैन आत्मानन्द सभा,
भावनगर वि० सं० १९७७, पृष्ठ १५० ।

२- गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्वकथा स्तुति: ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ।।
- आ० संस्था स्वयम्भू वीरसेवामन्दिर सरसावा,
वि० सं० २००८, १८।१, पृष्ठ ६१ ।

उत्तराध्ययन में स्तोत्रों की महत्ता इस प्रकार है —

'स्तव, स्तुति मंगलपाठ से जीवज्ञान, दर्शन और चरित्ररूप बोधिलाभ को प्राप्त करता है। अनन्तर ज्ञान, दर्शन और चरित्ररूप बोधिलाभ को प्राप्त करने वाला जीव, अन्तय क्रिया व कल्पविमानोपपत्ति को प्राप्त करता है।'[१]

स्तोत्र प्रयोजन -

शुद्धात्माओं की उपासना या भक्ति का अवलम्बन पाकर मानव का चंचल चित्त क्षणभर के लिए स्थिर हो जाता है। वह आलम्बन के गुणों का स्मरण कर अपने अन्त:करण में उन्हीं गुणों को विकसित करने की प्रेरणा पाता है तथा उनके गुणों से अनुप्राणित हो मिथ्या परिणति को दूर करने के पुरुषार्थ में रत हो जाता है क्योंकि दर्शन में शुद्धात्मा का नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीवात्मा कर्मबन्धनों के विलग हो जाने पर परमात्मा बन जाता है। चूंकि स्तोत्रों में भक्त के सभी भावों का पर्यवसान अन्तत: भक्ति में ही होता है अतएव इनमें धार्मिक एवं दार्शनिक दोनों प्रकार की भावनाएं देखने को मिलती है।

आचार्य समन्तभद्र ने 'स्तोत्र' का प्रयोजन इस प्रकार वर्णित किया है —

'तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यं कीर्तेर्नैस्ततो ब्रूयाम किंचन ॥'[२]

अर्थात् स्तोत्र पाठ करने से चित्त में निर्मलता उत्पन्न होती है, जिससे पुण्य

१- उत्तराध्ययन अंग्रेजी प्रस्तावना, टिप्पणी सहित, जार्ल चार्पेंटियर उपसाला १९१४ ई०, २९ अध्याय, १४ सूत्र।

२- स्वयम्भू वीर० वि० सं० २००८, ८८।२, पृष्ठ ६१ ।

का बन्ध होता है और भी कहा है —

'स्तुति: स्तोतु: साधो, कुशलपरिणामाय स तदा ।
अवेन्मा वा स्तुत्य: फलमपि ततस्तस्य च सत: ।।'[1]

अर्थात् स्तुति करने से प्रशस्त परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसमें उपास्य के गुणों का अच्छी तरह वर्णन रहे अथवा न भी रहे ; पर गुण कीर्तन होने से कल्याण की प्राप्ति होती है ।

स्तोत्र के विषय में यह कथन चरितार्थ होता है --
'पूजाकोटिसमं स्तोत्रं ।'[2]

अर्थात् एक करोड़ बार पूजा करने से जो फल मिलता है उतना एक स्तोत्र का पाठ करने से मिलता है यत: पूजा करने वाले व्यक्ति का मन पूजन सामग्री या अन्य बाह्य उपकरणों में आसक्त रहता है पर स्तोत्र पाठ करने वाले व्यक्ति का चित्त भगवान् के गुणों में संलग्न हो जाता है, अत: स्तोत्र पाठ पूजा की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है ।

इस प्रकार ईश्वर की उपासना करने का गुणानुवाद करने से साधक की परिणति स्वयं शुद्ध हो जाती है जिससे अभ्युदय की प्राप्ति होती है[3] ।

जैन स्तोत्र में 'काव्य की पृष्ठभूमि' में कहा भी गया

१- स्वयम्भू वीर०, वि० सं० २००८, २१।१, पृष्ठ ७४

२- अनेकान्तकिरण, सप्त पृष्ठ १६३ से उद्धृत ।

३- तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिन: पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्य:
- स्वयम्भू, वीरसेवा मन्दिर सं० १२।२, पृष्ठ ४१ ।

है —

'भगवान भले ही कुछ न देता हो किन्तु उसके सान्निध्य में वह प्रेरक शक्ति है जिससे भक्त स्वयं सब कुछ पा लेता है ।'[१]

अत: उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्तोत्रों में प्रयोजन को आधार मानकर भगवान का गुणकीर्तन किया जाता है जिससे भक्त अपने गुणों का विकास कर पाता है । संस्कृत-स्तोत्रों में भक्ति, दर्शन और आध्यात्म की त्रिवेणी प्रवाहित है । स्तोत्रों के तत्व इस प्रकार हैं --

(१) <u>उपास्य की महत्ता -</u> स्तोत्रों में उपास्य के दिव्यशील सौन्दर्य और आलौकिक गुणों की महत्ता ।

(२) <u>आत्मनिवेदन -</u>

कर्मावरण के कारण उत्पन्न होने वाली विकृति का कथन आत्मनिवेदन है ।

(३) <u>आध्यात्मिकता -</u>

स्तोत्रों में दार्शनिक विचारों की प्रमुखता रहती है ।

(४) <u>असंभव की आकांक्षा -</u>

असम्भव व आलौकिक और चमत्कारपूर्ण कार्यों का आराध्य द्वारा सम्पन्न की आकांक्षा ।

(५) <u>प्रसाद का सिद्धान्त -</u>

ब्रह्म सर्वकाय तथा सत्य संकल्प है और उसके ही प्रसाद से लोकोत्तर पुण्यदायी होता है ।

१- डा० प्रेमसागर : जैन काव्य की पृष्ठभूमि, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९६४ ई०, पृष्ठ २६ ।

स्तोत्रों का वैशिष्ट्य -

स्तोत्रों का वैशिष्ट्य उनके प्रयोजन के आधृत हैं । स्तोत्रों में भक्त की अन्तश्चेतना का स्वरूप सुन्दर मार्मिक शब्दों में प्रकट हुआ है । इन स्तोत्रों में दो ही बातें प्रमुख रूप से प्रकट होती हैं । एक तो भक्त का आत्म-निवेदन पूर्वक इष्टदेव के स्वरूप का वर्णन तथा दूसरी उनकी समुद्धारिणी शक्ति की प्रशंसा जिससे कि भगवान उसका भी उद्धार कर सके ।

समय की परिवर्तनशीलता के कारण बहुदेववाद, एकदेववाद ही, एकेश्वरवाद एवं सर्वसत्तावाद का अभ्युदय रहा है । अनेक देवी, देवताओं की स्तुति में अनेक प्रकार के स्तोत्र लिखे गये । जो भक्त जिस देवता का उपासक था उसने उसी ही देवता को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसकी उपासना की । कुछ स्तोत्रों में कवि ने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए चमत्कारी शब्दों का प्रयोग किया । कुछ में मार्मिक व्यञ्जना है ।

इन स्तोत्रों में देवस्वरूप-चित्रण में तथा उसके महत्व एवं शील के स्तवन में कवि की भावनाओं की अतिमनोरम अभिव्यक्ति है । ऐसे ही स्तोत्र काव्यकोटि में परिगणित होते हैं । यद्यपि मम्मट आचार्यों ने भक्ति को 'रस' नहीं माना है अपितु उसे देवविषयक रति कहकर 'भाव' के अन्तर्गत ही रखा है । अत: कुछ स्तोत्रों में अनुभूति की ऐसी मार्मिकता है कि उसे काव्यानन्द से कम सुखद नहीं कहा जा सकता है ।

धर्म प्रधान होने के कारण इन स्तोत्रों का भक्ति भावना प्रधान तथा धार्मिक समाज में समादर हुआ है । इसमें जहां एक ओर अनुराग है, वहां दूसरी ओर वैराग्य भावना भी देखी जाती है । अत: धर्मप्रधान और आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी समाज ने इनको बड़े प्रेम से अपनाया है । अद्यापि अगणित लोग इन भक्ति-भावना-भावित स्तोत्रों का नित्य पाठ करते हैं । इन स्तोत्रों में गेयता के अतिरिक्त भाषा सारल्य है जो साधारण जनों के लिए भी बोधगम्य है ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि स्तोत्रों का यह अपना ही वैशिष्ट्य है जिसके कारण यह एक साहित्य के रूप में परिणत हुआ है ।

स्तोत्र के प्रकार -

भारतीय संस्कृत स्तोत्र-साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । चूंकि स्तोत्रों का प्रथम उद्गम वैदिक साहित्य से हुआ है । कालान्तर में रामायण, महाभारत युग से होती हुयी पुराणों में यह परम्परा बनी रही और पुराणों के पश्चात् विभिन्न धर्मावलम्बियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के इष्टदेव को ध्यान में रखकर स्तोत्रों की रचना की है।[१]

शाक्त उपासकों ने शाक्त-स्तोत्रों की रचना की । शिव के उपासकों ने शैव स्तोत्रों की रचना की, विष्णु के उपासकों ने वैष्णव स्तोत्रों को लिखा । देवी, देवताओं में दुर्गा, लक्ष्मी, सूर्य, गणेशादि के नाम उल्लेखनीय हैं । हिन्दुओं की स्तोत्र-परम्परा से प्रभावित होकर जैनों और बौद्धों ने भी अपने स्तोत्र-काव्य की रचना की है ।

इस प्रकार विभिन्न स्तोत्रों के उद्भव होने के कारण स्तोत्र के प्रकार का विभाजन किया गया है । कुछ गद्यात्मक स्तोत्रों की भी रचना की गयी है । जिसका उल्लेख डा० ए० बी० कीथ ने किया है।[२]

उपरोक्त विवेचन के द्वारा यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है

१- डा० बलदेव कुमार : ` संस्कृत साहित्य का इतिहास `, पृष्ठ १८६-१८७।

२- डा० ए० बी० कीथ : ` संस्कृत साहित्य का इतिहास `, अनुवादक डा० मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ २६२ ।

कि स्तोत्र के निम्नलिखित प्रकार हैं —

(१) शैव स्तोत्र :- शिव भक्ति पर आधारित स्तोत्र ।

(२) शाक्त स्तोत्र :- शक्ति के उपासक के द्वारा की गयी रचनाएं ।

(३) वैष्णव स्तोत्र :- विष्णु की स्तुति के लिए विरचित स्तोत्र ।

(४) अन्य देवी-देवताओं के स्तोत्र :- सूर्य, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी ।

(५) जैन स्तोत्र :- जैनियों ने इष्टदेव के लिए लिखे स्तोत्र ।

(६) बौद्ध स्तोत्र :- बौद्धों द्वारा लिखे गये स्तोत्र ।

साहित्य के आधार पर उपर्युक्त स्तोत्रों का उल्लेख किया गया है किन्तु स्तोत्रों का उद्भव भक्ति से हुआ है, इस कारण इसमें आध्यात्मिकता का सन्निवेश है और भक्ति में प्रयुक्त होने वाले स्तोत्रों के नामकरण दार्शनिक विवेचन के आधार पर इस प्रकार किये गये हैं —

(१) नाम स्तोत्रम्

इसमें नामों का उल्लेख किया जाता है, नामों की संख्या अधिक होती है तथा पाठ-हवन आदि में उल्लेख किया जाता है । जैसे - १०० नाम वाले सूर्यष्टोत्तरशतनाम्, १००८ नाम वाले स्तोत्रादि ।

(२) कवच स्तोत्रम्

चूंकि भक्ति में हर तरह के भावों का सन्निवेश रहता है, इस कारण भक्त अपने शरीर की रक्षा के लिए भी मंत्रों के द्वारा देवताओं की आराधना करता है अत: यह स्तोत्र `कवच स्तोत्र' कहा जाता है । जैसे - सूर्यकवच, सरस्वती कवच इत्यादि ।

(३) हृदय स्तोत्रम्

हृदय में धारित करके जिसकी स्तुति की जाती है, वह `हृदय स्तोत्र' कहलाता है ।

जैसे — आदित्य हृदय स्तोत्र ।

(४) मालामंत्रात्मक स्तोत्रम्

बीस से अधिक अक्षरों वाले मन्त्रों को माला मन्त्र कहते हैं। जिनका जप माला पर किया जाता है और उसी से इष्टदेव की पूजा की जाती है ऐसे स्तोत्रों को `मालामन्त्रात्मक स्तोत्र` कहते हैं।[1] जैसे - त्रिपुरा स्तोत्र ।

(५) खड्ग स्तोत्रम्

शत्रु पर प्रहार व आत्मरक्षा के लिए खड्ग स्तोत्रों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मन्त्र खड्ग की भांति तीव्र धार वाले होते हैं। अत: यह स्तोत्र `खड्ग स्तोत्र` कहे जाते हैं।

(६) बीजमंत्रात्मक स्तोत्रम्

दस से कम अक्षरों वाले मन्त्रों को बीज मन्त्र कहा जाता है। ऊं, ह्रीं, गीं, क्लीं आदि शब्दों के द्वारा देवताओं की स्तुति की गयी है।[2] जैसे -- वाग्गादि के लिए दुर्गासप्तशती, त्रिपुरा स्तोत्र।

(७) पूजा स्तोत्रम्

जिनमें पञ्चोपचार, षोडशोपचार आदि के द्वारा देवताओं की पूजा की जाती है। वह `पूजा स्तोत्र` कहलाता है।

(८) मानस पूजा स्तोत्रम्

जिनमें मन द्वारा अथवा ध्यान लगाकर देवताओं की स्तुति की जाती है और ध्यान में ही आरती, पूजा भोग इत्यादि किये जाते हैं, उन्हें `मानसपूजा स्तोत्र` कहते हैं।

१- अग्निपुराण, २९३ अध्याय, पृष्ठ ४८६ ।

२- अग्निपुराण, २९३ अध्याय, पृष्ठ ४८६ ।

मत्स्यपुराण में चार प्रकार के स्तोत्रों का वर्णन है[1] --

(१) विधि स्तोत्रम्

(२) द्रव्य स्तोत्रम्

(३) कर्म स्तोत्रम्

(४) विधि होत्र स्तोत्रम्

इस प्रकार देवी, देवताओं की स्तुति करने के विभिन्न स्तोत्र हैं जिनके आधार पर पूजादि का विधान किया जाता है ।

स्तोत्र साहित्य का उद्भव एवं विकास -

संस्कृत साहित्य की विभिन्न धाराओं में स्तोत्र-साहित्य की भी एक धारा प्रस्फुटित हुई जो अपने में विशिष्ट तथा पूर्ण स्वतन्त्र रही है । संस्कृत स्तोत्र-साहित्य का उद्भव वैदिक साहित्य से हुआ । सर्वप्रथम ऋग्वेद में इन्द्र, वरुण, अग्नि‌ादि देवताओं की स्तुति में अनेक मन्त्र उच्चारित हुए । इन्हीं उच्चारित मन्त्रों की परम्परा में लौकिक संस्कृत में भी अनेक देवस्तुति या देवभक्तिपरक स्तोत्रों की रचना की गयी है । क्योंकि 'देवताओं की स्तुति करने वाले स्तोत्रों की रचना का अन्त वैदिक कवियों के साथ नहीं हुआ यद्यपि धर्म के क्रमिक परिवर्तन के कारण पूजित देवताओं में भी परिवर्तन हो गया । इसके पुराणों और तन्त्रों में अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं । दार्शनिक उन देवताओं के प्रति वास्तविकता की व्यवहारिक दृष्टि से वे उतनी ही दृढ़ता से स्वीकार करते थे जितनी दृढ़ता से पारमार्थिक दृष्टि से उसका निषेध करते थे ।'[2]

१- 'विधिहोत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत् संप्रवक्ष्ये, द्रव्य स्तोत्रं, कर्म्मस्तोत्रं,
विधिस्तोत्रं तथैव च, तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेवचतुष्टयम् ।'
- मत्स्यपुराण - १२१ अध्याय

२- ए० बी० कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास
अनुवाद - डा० मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ २६२ ।

इन स्तोत्रों में स्तुति एवं याचक वृत्ति की प्रधानता रही है, पुराण तो भक्तिविह्वल महर्षियों के उद्गार ही हैं । इसलिए तो पुराणों में स्तुतियों के भण्डारगार हैं ।[1]

यद्यपि रामायण और महाभारत में सहस्त्रनाम स्तुतियां की गयी हैं, उदाहरणास्वरूप --

'वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा के द्वारा श्रीराम की स्तुति, महाभारत में दुर्गा-स्तुति, विराट् तथा भीष्मपर्व में श्रीकृष्ण की स्तुति, द्रोण, सौप्तिक तथा अनुशासन पर्व में शिव की स्तुति ।'[2]

अत: समस्त स्तोत्र-साहित्य का प्रारम्भ पुराणों से ही हुआ क्योंकि वैदिक त्रिदेवोपासना ही पुराणों में पञ्चदेवोपासना के रूप में विकसित हुई और पौराणिक युग में भक्तिभावना का प्राबल्य होने से शिव, विष्णु आदि देवों के प्राधान्य एवं राम, कृष्ण इत्यादि अवतारों के वैशिष्ट्य के कारण इन पुराणों में स्तुतियों का ही प्रमुत्व रहा तथा अनेक स्तोत्र ग्रन्थ भी रचित हुए । इससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि स्तोत्र साहित्य की परम्परा प्राचीन है ।

जहां स्तोत्र साहित्य का उद्भव हुआ वहां उसका विकास भी निरन्तर होता गया जिसके फलस्वरूप इन स्तुतिपरक गीतिकाव्यों का प्रभाव अन्य सम्प्रदायों पर इतना पड़ा कि बौद्ध और जैनों ने भी स्तोत्रों की रचना अपनी भाषा में की । आज भी इनके अनेक स्तोत्र-ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इनमें काव्य-सौष्ठव के अतिरिक्त धार्मिक एवं दार्शनिक भाव की प्रधानता है । इनके स्तोत्रों तथा संस्कृत स्तोत्रों में केवल अन्तर इतना ही है कि इनमें जैन तीर्थङ्करों

१- डा० बलदेव कुमार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८६-१८७

२- वाल्मीकि रामायण ६। १२० । ५१-५६ ।

और बौद्धों का उल्लेख नहीं होता है जबकि संस्कृत के स्तोत्र काव्यों में जिन उपास्य देवों की स्तुतियां की गईं, उनमें अपने उपास्य देवों को अन्य देवों से अधिक श्रेष्ठ कहा गया ।

यद्यपि स्तुतिपरक इन गीतिकाव्यों में सर्वप्रथम गीतिकाव्य `श्यामला दण्डक` को माना जाता है और उसे ही कालिदास की कृति भी मानते हैं । परन्तु, अब यह प्रमाणों के आधार पर सिद्ध हो चुका है कि यह रचना कालिदास की न होकर तन्नामधारी किसी अन्य कवि की रचना है । इसी प्रकार `गाण्डिस्तोत्रगाथा` नामक स्तोत्र का रचयिता अश्वघोष को माना जाता है परन्तु प्रमाणों के आधार पर यह सन्देहास्पद है । अतः आज इस क्षेत्र में स्वतन्त्र गीति स्तुति काव्य के प्रथम रचयिता के रूप में मातृचेट को ही माना जाता है । मातृचेट सम्राट कनिष्क (७५ ई०) के आश्रित कवि थे । चीनी यात्री इत्सिंग ने अपनी पुस्तक में मातृचेट की कविता की मधुरता एवं गेयता की प्रशंसा की है और मातृचेट एक बौद्ध कवि थे । इनके पद्यों में उच्च सिद्धान्तों का भी संकेत मिलता है । बुद्ध और संघ की स्तुति में जो पद्य लिखे उस ग्रन्थ का नाम `शतपञ्चाशतिक` स्तोत्र है जिसके दो रूप मिलते हैं --

(१) चतुःशतक - जिसमें चार सौ स्तुति पद्य हैं ।

(२) अध्यर्धशतक - जिसमें १५० स्तुति पद्य हैं ।[१]

चीनी और तिब्बती भाषा में इनके अनुवाद भी मिलते हैं । इसी से प्रभावित होकर जैन आचार्यों द्वारा भी अपने तीर्थङ्करों की स्तुति में स्तोत्र लिखे गये । इन आचार्यों में समन्तभद्र, सिद्धसेन और हेमचन्द्र मुख्य हैं । इस प्रकार मातृचेट ने ही बौद्ध और जैनों को स्तुति काव्य लिखने की प्रेरणा दी इसलिए यदि इन्हें स्तुतिकाव्य का जनक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न

१- डा० बाबूराम त्रिपाठी : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १२२-१२३ ।

होगी । पुनश्च स्वतन्त्र स्तोत्र काव्य लिखने की परम्परा आज तक अनुकृत होती हुई विद्यमान है ।

स्तोत्र-साहित्य की परम्परा को समय-समय पर भक्त कवियों ने अत्यन्त गतिमयता प्रदान की है । इस कारण प्रमाणों के आधार पर जितने भी स्तोत्र प्राप्त हुए, उनका विवरण इस प्रकार है --

'जैन स्तोत्र'

आचार्य समन्तभद्र —

जैन-साहित्य में आचार्य समन्तभद्र का विशेष उल्लेखनीय स्थान है । इनके द्वारा विरचित प्रमुख स्तोत्र 'स्वयम्भूस्तोत्र' है[1] इनका समय लगभग तृतीय और चतुर्थ शती के मध्य माना जाता है । इसमें २४ तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है और प्रथम शब्द स्वयम्भू है, १४३ पद्य में १३ छन्दों का प्रयोग है और दार्शनिक तत्वों का विवेचन हुआ है । इनके द्वारा विरचित अन्य स्तोत्र यथा वर्णित है —

(१) देवागम स्तोत्र - सूत्र शैली में रचित दार्शनिक ग्रन्थ है ।

(२) युक्त्यनुशासन स्तोत्र

(३) जिनशतकालंकार - १०० पद्य २४ तीर्थङ्करों की स्तुति, चित्रबन्धों में विरचित है[2]

१- स्वयम्भू स्तोत्र - अनुवादक सम्पादक - जुगुल किशोर मुख्तार, वीर सेवा मन्दिर सरसावा वर्तमान दिल्ली १६५ पृष्ठ ८३-१०६ ।

२- स्तुति विद्या -- सम्पादक, अनुवादक साहित्याचार्य पं० पन्नालाल जैन 'बसन्त' १६५० ई० ।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र

जैन स्तोत्रों में इनका विशेष स्थान है। इनका समय ५०० ई० के लगभग है। इन्होंने 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' लिखा है। इसमें ४४ पद्य हैं। भाषा और भाव की दृष्टि से अभिव्यक्ति अत्यन्त श्रेष्ठ है।[१]

भक्तामर स्तोत्र -

जैन आचार्य मानतुङ्ग द्वारा रचित यह स्तोत्र है। जैन के धार्मिक अभिलेखों के अनुसार इनका समय सातवीं शती माना जाता है। इस पर जैन सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी टीका लिखी है। इसमें ४८ पद्य हैं तथा आदिनाथ भगवान् की स्तुति है।[२] डा० कीथ ने अपनी पुस्तक में लिखा है --

'मानतुङ्ग काव्य-शैली की सभी विशेषताओं से पूर्णत: अभिज्ञ थे।'[३]

जैन साहित्य के कुछ स्तोत्रों में सोमप्रभ का 'सूक्तिमुक्तावली' तथा वादिराज का 'एकीभाव स्तोत्र' है।

जैन साहित्य के साथ बौद्ध साहित्य के भी कई स्तोत्र ग्रन्थ हैं

१- Ed and trans is XIV 376 H, II P.
XI 11 42 P.

ए० क बी० कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास

२- पं० दुर्गाप्रसाद और वासुदेव लक्ष्मण : काव्यमाला, सप्तम गुच्छक,
पृष्ठ १- १० ।

सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२६ ई०

३- Edand trans - H Jacobi XIV, P . 18.

जो इस प्रकार हैं --

नागार्जुन --

बौद्धों के महायान सम्प्रदाय में स्तोत्रों की रचना हुई[1]। इनका समय लगभग सातवीं शती माना जाता है। ये शून्यवाद के प्रतिष्ठापक थे। इनकी रचना 'निरौपम्यस्तव', 'अचिन्त्यस्तव' है, अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ है।

हर्षवर्धन ने बौद्ध सम्प्रदाय पर एक स्तोत्र काव्य लिखा है[2]। इनका समय ६०६-६४८ ई० के लगभग है। 'अष्टमहाश्रीचैत्य स्तोत्र', 'सुप्रात स्तोत्र' आदि इनके स्तोत्र हैं।

स्त्रग्धरा स्तोत्र

बौद्ध काव्यों में इसका भी विशेष स्थान है[3]। यह सर्वज्ञ मित्र द्वारा रचित है। यह देवीतारा के प्रति लिखा गया स्तोत्र है। तारा देवी बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय में मातृदेवी तथा त्राणकारिणी के रूप में लोकप्रिय हैं।

अवलोकितेश्वर स्तोत्र -

व्रजदन्त (नवीं शती) के हैं। इसमें इष्टदेव की स्तुति में विविध मुद्राओं तथा गुणों का वर्णन किया है --

'वैष्णव स्तोत्र'

वैष्णव स्तोत्रों में विष्णु के विविध आयुधों की पृथक-पृथक

१- डा० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का विकास, पृष्ठ ३५१

२- Levi, OC I 11 198 EF, EN1 Gnhousen. -Harsh Vardhana.

३- डा० मंगलदेव शास्त्री अनुवादक।

स्तुति लिखी है । इनमें विष्णु के केश से लेकर पाद तक विभिन्न अंगों की प्रशंसा में पद्यों की रचना की गई है । इन स्तोत्रों में सौन्दर्य तथा माधुर्य की अनुपम धारा प्रवाहित है । ये स्तोत्र इस प्रकार हैं --

मुकुन्दमाला स्तोत्र -

यह वैष्णव साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है । इसके रचयिता कुल शेखर हैं । इनका समय दशम शतक माना जाता है । कवि ने भगवान् विष्णु की स्तुति में यह स्तोत्र लिखा है । कवि कभी अपनी दीन-हीन दशा का वर्णन करते हुए आत्मविस्मृत हो जाता है तो वह कभी भगवान् के विराट् रूप के दर्शन से चमत्कृत हो उठता है । इसमें ३४ पद्य हैं ।

आलवन्दार स्तोत्र -

इसके रचयिता श्री यमुनाचार्य १०वीं शती के थे जो कि वैष्णव मत के संस्थापक श्रीमद्रामानुजाचार्य के गुरू माने जाते हैं । इनका तमिल नाम आलवन्दार था । इसी कारण इनका स्तोत्र 'आलवन्दार स्तोत्र' नाम से विख्यात हुआ । आन्तरिक सुषमा के कारण यह 'स्तोत्ररत्न' भी कहा जाता है । इसमें प्राय: सर्वत्र भक्तिभावित कवि-हृदय की करुणरसाप्लावित अभिव्यक्ति है ।[1]

लीलाशुक स्तोत्र -

मालावार के निवासी कवि विल्वमंगल ने इस स्तोत्र की रचना की । इनका समय द्वादशशतक के लगभग माना जाता है । इसका दूसरा नाम 'लीलाशुक' भी है ।

कृष्णकर्णामृत को 'कृष्णलीलामृत' भी कहा जाता है । इसमें कृष्ण की स्तुति की गई है । इसमें ११० पद्य हैं । कवि ने अपने प्रियतम

१- डा० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का विकास, पृष्ठ ३५१-५२

के रूप उपास्य मानकर माधुर्य भक्ति का उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया है । शब्दों के चयन, मधुरा रति के चित्रण तथा हृदय के विमलभावों के प्रकाशन में 'कृष्णाकर्णामृत' सचमुच कृष्ण-काव्यों का मुकुटमणि है । आध्यात्मिक तथ्य का निर्देश श्लेष द्वारा रुचिरता के साथ उपन्यस्त है ।

वेदान्त देशिक -

भक्तिकवि वेदान्तदेशिक ने अनेक स्तोत्रों की रचना की है।[१] इसका समय १४वीं शती माना जाता है । यह अपने समय के उच्चकोटि के दार्शनिक विद्वान् हैं । इन्होंने लगभग २५ स्तुतिपरक गीति-काव्य को लिखकर गीतिकाव्यों की परम्परा को बढ़ाते हुए उसे समृद्ध किया है । भगवान् रंगनाथ, बालगोपाल आदि नाना देवों की भक्ति पेशल स्तुति है । इनके स्तोत्र निम्न-लिखित हैं —

(१) वरदराजपञ्चाशत् - इसमें काञ्ची के देवाधिदेव वरदराज की स्तुति में ५१ पद्य विरचित किये हैं ।

(२) हयग्रीव स्तोत्र - इसमें ३२ पद्यों में स्तुति की गई है ।

(३) अष्टभुजाष्टक - इसमें अष्टभुजाधारी विष्णु की स्तुति १०२ पद्यों में की गई है ।

(४) अच्युतशतक - इसमें अच्युत भगवान् की स्तुति १०२ प्राकृत गाथाओं के द्वारा की गई है ।

(५) गरुडपञ्चाशत - इसमें ५२ श्लोकों में गरुड की स्तुति है ।

(६) यतिराज सप्तति - इसमें रामानुजस्वामी की स्तुति ७४ पद्यों में की गई है ।

१- पादुका सहस्त्र मूलमात्र पार्थ सारथि - एडवोकेट देवकोट्टै द्वारा प्रकाशित है ।

(७) दयाशतक - इसमें भगवान् श्रीनिवास की दया का आध्यात्मिक रूपों में स्तवन ।

(८) गोदास्तुति - इसमें २६ पद्यों में आण्डाल की स्तुति की गई है ।

(९) पादुका सहस्त्र - यह सबसे अधिक प्रसिद्ध स्तोत्र है, १०० पद्य, इसमें भगवान् रंगनाथ की पादुका प्रशस्ति में ३२ पद्धतियां तथा उपनिषद् के तत्व का निर्देशन है ।

आनन्दमन्दाकिनी

श्री मधुसूदन सरस्वती ने भगवान् विष्णु के केशादि पादान्त रूप का वर्णन करते हुए इस 'ललित स्तोत्र' का प्रणयन किया है । इनका समय १६ वीं शती के लगभग है । इसमें भक्त-हृदय की कोमल अनुभूतियों का भव्य वर्णन है । इसके अतिरिक्त 'भक्तिरसायन स्तोत्र' है जिसमें भक्ति के स्वरूप का शास्त्रीय विवेचन है ।

श्रीकृष्णताण्डव स्तोत्र

आगरा निवासी श्री ऋषिकेश चतुर्वेदी ने 'शिवताण्डव स्तोत्र' के आधार पर श्रीकृष्ण के ताण्डव के चमत्कारी रूप स्तोत्र की रचना की है । इसमें १५ पद्यों में श्रीकृष्ण के ताण्डव का विवेचन किया है ।

सोमेश्वर

संस्कृत-साहित्य के उत्तरकाल में रचित स्तोत्रों की शैली से युक्त 'रामशतक स्तोत्र' की रचना सोमेश्वर ने की है ।[१] स्त्रग्धरा छन्द में स्तुति । भक्तिभाव और सहृदयता से रामशतक आद्यन्त ओत-प्रोत है ।

१- गा० ओ० सी० (बड़ौदा) सोमेश्वर के उल्लाघ राघव नामक नाटक के परिशिष्ट रूप में प्रकाशित ।

नारायणीय स्तोत्र[1]

यह नारायण भट्ट के द्वारा विरचित है । इसका समय लगभग १६ वीं शती का अन्तिम चरण तथा १७ वीं शती का प्रथम चरण माना जाता है । इसमें पद्य संख्या एक सहस्त्र से अधिक (१०३६) है । यह केरल का प्रख्यात स्तोत्र है ।

नारायण की स्तुति में निर्मित नारायण कवि द्वारा प्रणीत होने से 'नारायणीय' नाम पड़ा । ऐसा माना जाता है कि वायुरोग से पीड़ित होने पर गुरुवायुर मन्दिर के उपास्य श्रीकृष्ण की स्तुति में इस विपुल स्तोत्र के द्वारा रोग से मुक्त हुए । इस पर 'देशमङ्गलकाय' नामक ग्रन्थकार ने 'भक्तप्रिया' नाम की टीका भी लिखी है ।

रामभद्र दीक्षित -

यह तंजौर के विद्याप्रेमी राजाशाह जी के प्रथम सभाकवि थे । इनका समय १७ वीं शती का अन्तिम चरण है । इन्होंने राम की स्तुति में कई स्तोत्रों की रचना की है जो निम्नलिखित हैं --

(१) रामचापस्तव[2] -

इसमें १११ पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिनमें रामचन्द्र के धनुष का प्रौढ़ तथा उत्तम वर्णन किया गया है ।

(२) रामबाणस्तव[3] -

रामचन्द्र के धनुष की १०८ पद्यों में वीररस से युक्त रचना की है ।

१- अनन्त शयन ग्रन्थमाला में ग्रन्थांक ९८ में टीका सहित मूल ग्रन्थ का संस्करण हिन्दी अनुवाद - गीताप्रेस से प्रकाशित है ।

२- काव्यमाला के १२ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

३- काव्यमाला के १२ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

(३) विश्वगर्भस्तव जानकी जानि -[१]

१५२ पद्यों में अन्तिम चरण में 'तस्मै प्राप्तं लिखाह्नि दाशरथ्ये श्रीजानकी जानये ' लिखकर जगत् के विषम दुःखों से पीड़ित होकर कवि जानकीनाथ के शरण में जाने की प्रेरणा दी है ।

(४) वर्णमाला स्तोत्र -[२]

यह ५० पद्यों में वर्णमाला के अक्षर क्रम से विरचित स्तोत्र है जिसमें रामचन्द्र की स्तुति की गयी है ।

(५) रामाष्टप्रास -

इसमें ११६ पद्य हैं जो शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचित हैं । इसमें शब्द पाण्डित्य का प्राधान्य परिलक्षित होता है । प्रत्येक पाद में दो-दो अनुप्रास है ।

सुदर्शन शतक -[३]

यह कूरनारायण द्वारा रचित है जो रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी प्रतीत होते हैं । इस स्तोत्र में नारायण भगवान् के विशिष्ट आयुध सुदर्शन चक्र का स्त्रग्धरा छन्द में कवित्वमय वर्णन किया गया है ।

जानकी चरण चामर -[४]

इसके रचयिता श्रीनिवासाचार्य हैं । इनका समय लगभग १६ वीं शती का प्रारम्भ माना जाता है । इसमें भगवती सीता के चरणों की प्रशस्ति में स्तुति की गई है । इसमें १११ पद्य हैं जो शिखरणी छन्द में लिखे

१- काव्यमाला के १४ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

२- काव्यमाला के १३ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

३- काव्यमाला के ८ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

४- काव्यमाला के ६ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

गये हैं । इसमें कवि ने सुन्दर पद्यों में रचना की है ।

'शैव-स्तोत्र'

शिव के उपासकों ने विष्णु की भांति शिव की स्तुति की और उन पर अनेक स्तोत्रों की रचना की जो इस प्रकार है --

परशम्भुमहिम्न:स्तव[1]

इसके रचयिता कवि दुर्वासा हैं । यह तेरह प्रकरण में विभक्त है और इसमें तान्त्रिक तत्त्वों का निर्देश किया गया है । इसमें शिव की स्तुति की गई है ।

शिवस्तोत्रावली -

इसके कवि उत्पलदेव हैं । इनका समय प्रमाणों के आधार पर नवम शती है । यह २१ पद्यों का संग्रह है और इसमें शंकर के गुणों का वर्णन किया गया है । भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त सुन्दर है ।

अर्धनारीश्वर स्तोत्र[2] **-**

द्वादश शतक के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्यकार कल्हण ने इसकी रचना की थी । इसमें शंकर और पार्वती के रूप की स्तुति १८ पद्यों में की गई है ।

शंकराचार्य के शैव स्तोत्र -

शंकराचार्य ने शिव की स्तुति में कई स्तोत्र ग्रन्थ लिखे । इनका समय ८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है । स्त्रग्धरा छन्द में निबद्ध

१- मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट में चौखम्भा वाराणसी से प्रकाशित, पृष्ठ २२०-२४० ।

२- काव्यमाला के १४ वें गुच्छक में प्रकाशित ।

इनमें दो स्तोत्र हैं —

(१) शिवानन्दलहरी -

इसमें सौ पद्यों में शंकर की स्तुति की है । यह गुण और अलंकार से मण्डित है । यह ४१ पद्यों में विरचित है ।

(२) शिवापराधक्षमापण स्तोत्र -

इसमें शिव से अपराध क्षमा की प्रार्थना में स्तुति की गई है । इसमें जीवन की निःसारता के लिए कहा भी गया है --

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं यातिक्षयं यौवनं ।
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्नदिवसाः कालो जगद् भक्षकः ।।

दीनाक्रन्दन स्तोत्र[1] -

यह स्तोत्र लोष्टक कवि द्वारा रचित है । इसमें काशी के विश्वनाथ जी की ५४ पद्यों में स्तुति की गयी है । जिनमें कवि की दीनता की अभिव्यक्ति का स्वर अधिक मुखर है ।

स्तुति कुसुमाञ्जलि[2] -

१४ वीं शती से वर्तमान काश्मीर के निवासी, विख्यात दार्शनिक, उच्चकोटि के वैयाकरण और प्रौढ़ मीमांसक कवि कविराज जगद्धर हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है । इसमें ३८ स्तोत्र हैं जिनमें कुल मिलाकर

१- द्रष्टव्य श्रीकण्ठचरित २५ सर्ग श्लोक ३१-३६ ।

२- काव्यमाला में राजानक रत्नकण्ठ की टीका के साथ प्रकाशित, हिन्दी अनुवाद के साथ काशी से प्रकाशित, १९६४ ई० ।

१४२५ श्लोक हैं उसमें शिव की स्तुति की गयी है । सप्तम्, अष्टम् एवं नवम् स्तोत्र में करुणारस है । त्रिकदर्शन के सिद्धान्तों का भी प्रसङ्‌गत: इसमें वर्णन हुआ है ।

भैरव स्तोत्र -

इसके रचयिता प्रसिद्ध विद्वान अभिनवगुप्त थे । इनका समय दशम शतक माना जाता है । इन्होंने ही ध्वन्यालोक पर `लोचन` नामक टीका लिखी है । ये एक उच्चकोटि के दार्शनिक थे । इन्होंने शैव दर्शन पर `पत्यभिज्ञावृहतीवृत्ति` नामक ग्रन्थ भी लिखा है ।

शिवोत्कर्ष मञ्जरी[१] -

शैव स्तोत्रों में इसका भी विशेष स्थान है । इसके रचयिता नीलकण्ठ दीक्षित हैं । इनका समय १७ वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है । इसमें शिव की महिमा का वर्णन किया गया है । भाषा एवं भाव का सुन्दर समन्वय है ।

शिवशतकम् -

१८ वीं शताब्दी के लगभग इसकी रचना की गई है । इसके रचयिता महामहोपाध्याय श्रीगोकुल नाथ हैं । इसमें शिव की स्तुति में कुल १०० पद्य रचे गये हैं ।

शिवमहिम्नस्तोत्र[२] -

इस स्तोत्र के रचयिता पुष्पदन्त हैं । इसमें कुल ४० श्लोक हैं जिनमें अधिकांश में शिखरिणी छन्द का प्रयोग हुआ है । भाषा के लालित्य

१- डा० बलदेव कुमार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८६-१८७ ।
२- कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मद्रास संख्या १११०३ ।

तथा भावों की दार्शनिकता के कारण यह स्तोत्र शैव स्तोत्रों में अधिक लोकप्रिय है। मालवा देश के मन्दिर की दीवार पर महिम्नस्तोत्र के ३१ पद्य खुदे हैं। इसमें ईश्वर की सत्ता आदि अनेक दार्शनिक विषयों पर गम्भीर तर्क उपस्थित है। इस स्तुति की अपरिमित महिमा इस प्रकार गायी गई है —

'महेशान्नापरो देवो महिम्नो ना परा स्तुतिः।'

'शाक्त-स्तोत्र'

शैव स्तोत्रों के साथ शाक्त स्तोत्रों की परम्परा भी अधिक प्रचलित हुई। देवी की आराधना हेतु उन्होंने जो भी लिखा वह इस प्रकार वर्णित है —

शंकराचार्य -

आचार्य शंकर त्रिपुरासुन्दरी के उपासक थे। शंकराचार्य सत्य के पारमार्थिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों को लेकर चलने वाले दार्शनिक थे अतएव उन्होंने लोक प्रचलित विश्वासों को भी स्वीकार करते हुए जन साधारण की भावनाओं की तुष्टि के लिए कई स्तोत्रों को लिखा था वह इस प्रकार है —

(१) अम्बाष्टक[१] -

अम्बा की प्रशस्त स्तुति एक अप्रसिद्ध वृत्त में है। टिप्पणी के साथ प्रकाशित है। इसमें पार्वती की कवित्वपूर्ण मार्मिक स्तुति है।

१- काव्यमाला के २ गुच्छक में प्रकाशित ।

(२) कनकधारा स्तव -

यह भगवती लक्ष्मी की स्तुति में विरचित है जिसमें २२ श्लोक हैं। 'त्रिपुरासुन्दरी मानसिकोपचार पूजा'[१] और 'चतु:षष्टि उपचार मानस पूजा' इन दोनों स्तोत्रों में भगवती की मानस पूजा का वर्णन किया गया है। प्रथम १२८ पद्यों में से ७३ पद्यों में शिखरिणी छन्द है। 'भवान्यष्टकम्' तथा 'आनन्दलहरी स्तोत्र' और 'देव्यपराधक्षमापण स्तोत्र' में दुर्गा जी की स्तुति में लिखे गये हैं। इनमें देवी से अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना की गई है।

लीलास्तवरत्न

इसके रचयिता दुर्वासा है जिन्हें समस्त उपनिषदों के प्रथम देशिक (गुरु) होने का श्रेय प्राप्त है। इसमें ५८ पद्य में देवी की महिमा का वर्णन किया गया है। इस पर विद्यानन्द नाथ के शिष्य नित्यानन्द नाथ की विस्तृत व्याख्या है। ललिताम्बा के त्रैलोक्य सुन्दर सौन्दर्य का वर्णन इस स्तोत्र का वैशिष्ट्य है।

पञ्चस्तवी[२]

कालिदास की रचनारूप में विश्रुत पञ्चस्तवी पांच विभिन्न स्तवों के समूह रूप में प्रस्तुत किया है —

(१) लघु स्तुति - २१ पद्य।
(२) घट स्तव - २१ पद्य।
(३) चर्चा स्तुति - २३ पद्य।

१- सदसदनुग्रह निग्रह गृहीत मुनि विग्रहो भगवान्।
सर्वासामुपनिषदां दुर्वासा जयति देशिक: प्रथम: ।।
- (त्रिपुरासुन्दरीमहिम्न स्तोत्र, २८ पद्य)

२- काव्यमाला के १० गुच्छक में प्रकाशित।

(४) अम्बा स्तुति - ३२ पद्य ।

(५) सकलजननी स्तव - ३५ पद्य ।

इन स्तवों में साहित्यिक सौन्दर्य के साथ ही साथ तान्त्रिक तथ्यों का भी मनोरम उद्घाटन है । 'पञ्चस्तवी' की ख्याति एकादश शताब्दी में अवश्य हो गई थी क्योंकि मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में इसका उल्लेख किया है ।

सुभगोदय स्तुति [१]

गौडपादाचार्य की यह रचना तान्त्रिक तथ्यों के विश्लेषण तथा श्रीचक्र के विवरण के लिए नितान्त प्रख्यात है । इसमें ५२ पद्यों में शिखरिणी छन्द है । 'सौन्दर्यलहरी' की टीका में लक्ष्मीधर के कथनानुसार अनुष्टुप छन्दों में भी सुभगोदय नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है ।

देवीशतक [२]

ध्वनि सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक काश्मीर निवासी अवन्ति वर्मा आश्रित कवि श्री आनन्दवर्धन द्वारा रचित 'देवीशतक' नामक स्तोत्र 'काव्यमाला' में प्रकाशित हुआ । इनका समय ८५० ई० के लगभग माना जाता है । पूरे शतक में चित्रकाव्य शैली से पद्यों का संगठन है । इसमें आनन्दवर्धन ने शब्द-पाण्डित्य का अपूर्व चित्रण किया है । इसमें देवी की आराधना की गई है । 'देवीशतक' पर कैयट की टीका भी उपलब्ध है ।

चण्डीशतकम्

सप्तम शतक के प्रारम्भ में महाकवि बाण ने 'चण्डीशतक' नामक स्तोत्र की रचना की थी । इसमें १०८ पद्यों में चण्डी, महिष, क्या,

---

१- काव्यमाला के ११ गुच्छक में टीकायुक्त प्रकाशित (११ तथा ३८ श्लोक)।

२- काव्यमाला के ९ गुच्छक में प्रकाशित ।

विजया, शिव चण्डी चरण एवं नखों का वर्णन किया गया है । दुर्गा स्तुतिपरक इस स्तोत्र में कवि ने सौ स्त्रग्धरा छन्द लिखे हैं । कहीं-कहीं पर क्लिष्ट पदावली का प्रयोग है । स्तोत्र काव्यधारा में उत्तम कोटि का माना जाता है ।

मूकपञ्चशती -

सप्तम शतक में ही रचित एक स्तोत्र काव्य मूकपञ्चशती के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु इनके रचयिता का नाम अज्ञात है । शंकराचार्य ने `सौन्दर्यलहरी` में इनका `प्रकृत्यामूकानामपि च कविता कारणतया` कहकर उल्लेख किया है । ५०० पद्यों का उत्तम स्तोत्र काव्य है इसमें शिखरिणी, बसन्ततिलका, शार्दूल विक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग किया है । इसमें काञ्ची की कामाक्षा देवी की स्तुति की गई है । इसमें कुल पांच शतक हैं जो इस प्रकार हैं --

(१) कटाक्ष शतक ।

(२) मन्दस्मित शतक ।

(३) पादारविन्द शतक ।

(४) आर्या शतक ।

(५) स्तुति शतक ।

लक्ष्मीसहस्त्र -

१७ वीं शती में वर्तमान तमिलनाडु निवासी श्रीसम्प्रदायानुसारी वैष्णव भक्तकवि वेंकटाध्वरि ने `लक्ष्मीसहस्त्र` नामक स्तोत्र की रचना की थी । इसमें पाण्डित्य का प्रकर्ष और कवित्व की आलौकिक प्रतिभा का चित्रण है । सहस्त्र श्लोकात्मक है इस स्तोत्र में लक्ष्मी की स्तुति की गयी है ।

आनन्दमन्दिर स्तोत्र -

१६ वीं शती के प्रारम्भ में महाराष्ट्र के निवासी श्रीलल्ला दीक्षित ने इस स्तोत्र की रचना की थी जिसमें १०० पद्य हैं जो देवी की स्तुति से सम्बन्धित है ।

पण्डितराज जगन्नाथ -

स्तोत्र काव्यकारों में पण्डितराज जगन्नाथ का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका सुधालहरी (सूर्य स्तुति), अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी, गङ्गालहरी है। ये आन्ध्र ब्राह्मण तथा काशी निवासी और वैष्णव थे। इन्हें 'पण्डितराज' की उपाधि शाहजहां ने दी थी।

(१) करुणालहरी[१] - भगवान् श्रीकृष्ण की दया की प्रार्थना, ६० पद्य।
(२) अमृतलहरी[२] - यमुना की स्तुति, १० पद्य।
(३) लक्ष्मी लहरी[३] - लक्ष्मी की स्तुति, शिखरिणी में प्रणीत ४१ श्लोक।
(४) सुधा लहरी - सूर्य स्तुति, स्त्रग्धरा छन्द में प्रणीत ३० श्लोक।
(५) गङ्गालहरी - इसमें गंगा जी की स्तुति है।

गङ्गास्तव

'गीतिगोविन्द' के रचयिता प्रसिद्ध काव्यकार जयदेव ने इस स्तोत्र की रचना की थी। इसमें बड़े सरस पद्यों में गंगा जी की स्तुति की गई है।

त्रिपुरासुन्दरी मानसपूजन स्तोत्र[४]

१६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में मथुरा के निवासी कवि सामराज

१- करुणालहरी काव्यमाला के २ गुच्छक में प्रकाशित।

२- अमृतलहरी, काव्यमाला के प्रथम गुच्छक में प्रकाशित।

३- लक्ष्मी लहरी काव्यमाला २ गुच्छक में प्रकाशित।

४- काव्यमाला के ६ गुच्छक में प्रकाशित।

दीक्षित ने सप्तति पद्यात्मक इस स्तोत्र की रचना की थी । इसमें मानसिक पूजा की विधि द्वारा त्रिपुरासुन्दरी की स्तुति की गई है ।

अन्य देवी-देवताओं की स्तुति में अनेक स्तोत्र की रचना की जिसमें सूर्य, गणेश आदि देवों की स्तुति की गई है, वह इस प्रकार है :-

सूर्यशतक[१] -

सप्तम शतक में मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' नामक एक प्रसिद्ध स्तोत्र की रचना की है । इसमें भगवान् सूर्य की स्तुति की गई है । इसमें स्त्रग्धरा वृत्त में १०० श्लोक हैं । बलदेव उपाध्याय ने लिखा है --

'मयूर कवि शब्द कवि होने के कारण नोंक-फोंक के शब्दों को रखने में बेजोड़ है । कुष्ठरोग से मुक्ति के लिए इसको रचा था । आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में काव्य-प्रयोजनों के वर्णन के अवसर पर 'शिवेतरक्षतये' के लिए मयूर कवि का उल्लेख किया है ।'

ईश्वरशतक[२] -

काश्मीर निवासी अवतार कवि ने १७ वीं शती में 'ईश्वर-शतक' काव्य की रचना की थी । इसमें अलंकारों के चमत्कार के साथ पाण्डित्य भी है । समस्त शतक अवतार, एकाक्षर, अर्थत्रय वाचक गर्भबन्ध आदि चमत्कारों से परिपूर्ण है ।

वैराग्यशतक -

यह भर्तृहरि द्वारा रचित है । इसमें संसार की नि:सारता

१- सूर्यशतक - निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित,
बलदेव उपाध्याय 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'

२- रत्नकण्ठ कृत टीका सहित काव्यमाला में प्रकाशित ।

प्रतिपादित की गई है । वैराग्य भाव के साथ काव्यत्व भी दृष्टव्य है ।

सूर्यार्घ्यशतक [1] -

यह श्री जानी महापात्र द्वारा विरचित स्तोत्र है । इसमें १०० पद्य हैं । इसमें सूर्य की स्तुति की गई है ।

गद्यात्मक स्तोत्र [2] -

पद्यात्मक स्तोत्र के साथ गद्यात्मक स्तोत्र भी लिखे गये हैं । गद्य शैली में लिखे गये स्तोत्रों में भाषा एवं भाव का सुन्दर समन्वय है । इनमें रस का स्थान गौण होता है ।

'श्यामलदण्डक', सरस्वती स्तोत्र और मंगलाष्टक स्तोत्रों के प्रणेताओं के नाम अज्ञात रहे हैं । प्रमाणों के आधार पर इन्हें गद्यात्मक स्तोत्र की संज्ञा दी गई है ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत काव्य में स्तोत्र रचना की परम्परा अभी तक चल रही है । संस्कृत स्तोत्रों के अतिरिक्त जैन और बौद्ध स्तोत्रों की भी संख्या अधिक है जिनका नामोल्लेख करना सम्भव नहीं है । आज भी अनेक स्तोत्र लिखे जा रहे हैं जिनसे स्तोत्र साहित्य की परम्परा धीरे-धीरे व अविच्छिन्न प्रत्युत अधिकाधिक प्रशस्त और गतिशील भी हो सकेगी ।

-o-

१- सूर्यार्घ्यशतक, अनुवादक परमानन्दशास्त्री,
नेशनल प्रिंटिंग प्रेस, कनवरीगंज धनियाबाड़ा, अलीगढ़ ।

२- डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुवादक -
डा० ए० बी० कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २६२-६३ ।

द्वितीय अध्याय

सूर्य शब्द की व्युत्पत्तियां

सृष्टि का वैचित्र्य देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कल्पना कुण्ठित हो जाती है, मन की मनस्विता भी हार मानकर बैठ जाती है क्योंकि जिधर भी दृष्टि डालिए- कितना विशाल, विस्तृत, वैविध्यपूर्ण विचित्र प्रसार लक्षित होता है । कल-कल ध्वनि करते हुए झरने, पयस्विनी, सरिताएं, स्फटिकमणि सदृश पारदर्शी दीर्घकाय पर्वतमालाएं, शीतल, मन्द, सुगन्ध गुणों का वाहक समीर और उधर प्रकृति का अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रलयकारी रूप, जलप्लावन रूप, भूमि विघटन, भूचाल, विद्युत् प्रतारण आदि रूपों में देखा जाता है । यह सूर्य की महत्ता एवं उनके प्रभाव वैविध्य का परिचायक है । सृष्टि की विभिन्न शक्तियों में सूर्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और जीवन का नियमन, प्रलयन, विघटन, विस्फारण आदि उन्हीं की शक्ति पर निर्भर है । अत: लोकोपकारी, लोकनियन्ता, लोकोत्तर भगवान् सूर्य की प्रखर, प्रचण्ड, उद्दीप्त जीवनदायिनी सर्वपरि तीक्ष्णी आभा है ।

भारतीय संस्कृत वाङ्मय की सनातन परम्परा में भगवान् भास्कर का स्थान अप्रतिम है । भारतीय आध्यात्मिक जीवन का सूर्य उच्चतम् आदर्श है । सम्पूर्ण वेद, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ भगवान् भास्कर की महिमा से ओत-प्रोत हैं

'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेवतत् ।'[१]

अर्थात् पञ्चदेवों की उपासना में भी सूर्य ही ब्रह्म एवं परमात्मा है । वेदमाता गायत्री के मन्त्र में जहां निखिलान्तरात्मा, सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्री सर्वेश्वर का प्रतिपादन है । वहां सविता नाम से महाभाग सूर्य का परिबोध है । श्रुति, स्मृति, पुराण और सूत्रतन्त्र आदि शास्त्रों में, साहित्य एवं काव्यग्रन्थों में सूर्य स्वरूप, सूर्य प्रशस्ति, सूर्य स्तवन, सूर्य वन्दन आदि का

१- योगशास्त्र

सुन्दरतम रूप विद्यमान् है । भगवान् भास्कर को शास्त्रों में कहीं परमात्मा से उत्पन्न माना है, कहीं ब्रह्म के चक्षु से उद्भूत, तो कहीं स्वयं चक्षुष्स्वरूप ही माना गया है । सूर्य भगवान् ही संसार के समस्त ओजस तेजसदीप्ति और कान्ति के निर्माता एवं प्राणतत्व के मूलाधिष्ठान तथा प्रकाशतत्व के विधाता हैं । सूर्य आधिव्याधि का अपहरण करते हुए क्लेशों का शमन करते हैं और निर्मल, विमल, स्वस्थ्य एवं सशक्त जीवन प्रदान करते हैं ।

`सूर्य` शब्द की व्युत्पत्तियां —

ईश्वरीय ज्ञान स्वरूप अपौरुषेय वेद के शीर्षस्थानीय, परम-गुह्य उपनिषदों में भगवान् भास्कर के स्वरूप का मार्मिक चित्रण है । सूर्य आगमनिगम संस्तुत, और ज्ञान-विज्ञान समस्त शास्त्रों का आधार तथा देवाधिदेव परमदेवता है । वह लोकसाक्षी और जग चक्षु कहे जाते हैं । पुराणों में वर्णित महामहिम देवता सूर्य की उत्पत्ति न केवल विचित्र ही है अपितु इसमें वैज्ञानिक आयामों का रूपकात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है । सूर्य शब्द की व्युत्पत्तियां वैदिक काल में भिन्न-भिन्न की गयी उनमें से विशेष उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं —

(१) `सरति आकाशे सुवति कर्माणि लोकं प्रेरयतीति ।`[१]

आकाश में गमन करने से उदयकाल में लोगों को कर्म करने में प्रेरणा देने वाले सूर्य हैं । `सू` प्रेरणार्थक में `राजसूय सूर्येत्यादिना पाणिनीय सूत्रों के अनुसार ।

(२) `सू कयपि दिवाकरे अकंवृक्षे` के अनुसार शब्द वाचस्पति में ।[२]

१- अष्टाध्यायी - ३ । १ । ११४ ।

२- शब्द वाचस्पति - ६ भाग चौखम्भा प्रकाशन पुस्तकालय काशी २०१८, पृष्ठ ५३२७ ।

(३) 'सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्य तेर्वति ।'[१]

निरुक्त के अनुसार वही सूर्य है ।

(४) 'सरतीति सूर्यः'।[२]

जो अभिसरण करता है वही सूर्य है ।

(५) 'सुवति प्रेरयति कर्मसु चराचरं जगत्ससूर्यः ।'[३]

इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को कार्य (व्यापार) के लिए प्रेरित करता है वही सूर्य है ।

(६) 'सुष्ठु ईर्यते संचाल्यते स्वमण्डलमनेनेति सूर्यः ।'

जो अपने प्रकाश मण्डल से सृष्टि को भलीभांति प्रेरित और संचालित करता है, वही सूर्य है ।

(७) 'गतौ यस्मात परो नास्ति'।[४]

व्याकरण शास्त्र की दृष्टि में सूर्य शब्द 'सृ' धातु से बना है इसका अर्थ है जिसके प्रकाश के समान अन्यतम प्रकाश से इस भूतल पर नहीं है उसे सूर्य कहा गया ।

(८) 'स्वीर्यते उपताप्यते जगदनेनेति सूर्यः ।'

जो अपनी किरणों से इस जगत् को प्रतापित करता है, वही सूर्य है ।

१- निरुक्त - १२ । १४ ।

२- अष्टोत्तरशतनाम - मालिका विद्यासागर मिश्र, पृष्ठ ११५ ।

३- विष्णुसहस्त्रनाम - शांकरभाष्ये, श्लोक १०७, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

४- अष्टोत्तरशतनाम - मालिका विद्यासागर मिश्र, पृष्ठ ११५ ।

'सूपसर्गकिर् गतौ धातोर्यद्वा स्वृशव्दोपतापत्यो: धातो: सिद्धयति ।'

अर्थात् सु उपसर्ग के साथ गत्यार्थक केर् धातु से अथवा स्वृ शव्द से बो तपधातु के अर्थ में प्रयोग होता है, यही सूर्य शव्द की उत्पत्ति हुई है ।

(९) 'सरति बानाति व्याप्नोति सर्व जगदितिवा ।'

जो सरकता है, सर्व को बानता है, सम्पूर्ण जगत् को अपनी किरणों से व्याप्त करता है, वही सूर्य है ।

(१०) 'सुष्टु ईर्यन्ते कम्पयन्ते स्वीर्यन्ते उपताप्यन्ते वा दस्यत्वेऽनेनेति सूर्य: ।

जो भली प्रकार जगत् को प्रेरित करता है, प्रकाश को कम्पित करता है और संसार को ताप देता है, वही सूर्य है ।

(११) 'सूते श्रियमिति सूर्य: ।'[१]

जो कान्ति को उत्पन्न करता है वही सूर्य है । यहां पर 'सूर्य' शव्द का प्रयोग उत्पत्ति के अर्थ में किया गया है ।

(१२) 'स्वरति: आर्चति:कर्मा स्वीयते अर्च्यतेभक्तैरितिसूर्य: ।'[२]

स्वर् धातु का अर्थ अर्चना करना है जिसकी भक्तों के द्वारा अर्चना की जाती है, वही सूर्य है ।

(१३) 'सूर्य आत्मा जगतस्त स्थुषश्च ।'[३]

यजुर्वेद में सूर्य को जड़ चेतनात्मक जगत् की आत्मा कहा गया है ।

१- विष्णुसहस्त्रनाम - शांकरभाष्य श्लोक १०७, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२- निघण्टु - ३ । १ ।

३- यजुर्वेद - ७ । ४२ ।

(१४) 'तरणि-विश्व दर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य: विश्वमामासि रोचनम् ।'[1]

अथर्ववेद में सूर्य को ज्योतिष्कर और विश्वप्रकाशक के रूप में चित्रित किया गया है ।

(१५) 'चन्द्रमा: मनसोजातश्चक्षो: सूर्योऽजायत ।'[2]

यजुर्वेद में सूर्य को परम भगवान ब्रह्म के पुनीत नेत्र से उत्पन्न कहा गया है ।

(१६) 'सूर्य की निष्पत्ति वैदिक 'स्वर धातु से की जाती है जो ग्रीक के 'helios' से सम्बन्धित है ।'[3]

(१७) 'सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् ।
व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्य: यद्वा सुष्ठु ।।
ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादिव्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्य: । ।'[4]

ऋग्वेद में सायण द्वारा सूर्य उत्पत्ति इसी प्रकार वर्णित है ।

(१८) 'सुवीर्योमर्या यथा गोपायत तत्सूर्यस्य सूर्यत्वम् ।'[5]

तैत्तिरीय ब्राह्मण संहिता में शोभन और वीर कर्मों का सम्पादन करने वाले देव को सूर्य कहा गया है ।

१- अथर्ववेद - १३ । २ । १६ ।

२- यजुर्वेद - ३१ । १२ ।

३- मैकडालन - 'वैदिक देव शास्त्र', पृष्ठ ६६ ।

४- अथर्ववेद - ऋग्वेद की ऋचा ६। १९५ । ३ । पृष्ठ ४६

५- तैत्तिरीय ब्राह्मण - २। २। १० । ४ ।

(१६) 'दृशद्रैष्टुं चिरकालं जीवितुम् ।'[१]

सूर्यं सर्वेषां प्राणदातृत्वेन प्रेरकम् आदित्यम् ।

सायण ने अथर्वेद की व्याख्या में सूर्य को सभी को प्राण देने वाले प्रेरक के रूप में व्यक्त किया है ।

'सूर्य: मार्तण्ड: सर्वस्य प्रकाशको देव: ।'

सूर्य मार्तण्ड सभी को प्रकाश देने वाले देव के रूप में कहा गया है ।

(२०) 'शश्वच्चजायते यस्मात् शश्वच्चसन्तिष्ठते यत: ।
तस्मात्सर्वै: स्मृत: सूर्य: मर्मज्ञैर्मनीषिभि: ।।'[२]

साम्बपुराण के अनुसार जो शाश्वत उत्पन्न होता है और स्थिर भी रहता है, वही सूर्य है । सूर्य सभी वेदज्ञ देवताओं का स्मरणीय है ।

(२१) 'भवद्भूतस्य भव्यस्य जंगमस्थावरस्य च ।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदु: ।।'[३]

बृहद्देवता में भगवान् सूर्य को भूत भव्यात्मक जगत् के प्रवाह और प्रलय का स्रोत कहा गया है । वह तीन रूप धारण करके त्रिलोक में स्थित है । ब्रह्म सूर्य का ही रूप है । सूर्य देव सभी प्राणियों के हृदय में ज्वलनकर्ता के रूप में स्थित है उनके तेज से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ।

(२२) 'सूर्य: सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा ।
सुर्ययत्वाय योत्यैष सर्वकर्माणि सन्दधत् ।।'[४]

अथर्ववेद और साम्बपुराण के अनुसार सूर्य प्राणियों में प्रवेश करके

१- अथर्ववेद - १। ६। ३ व्याख्यायाम् ।
   तत्रैव - १।१।६।२
२- साम्बपुराण - ६। १८ ।
३- बृहद्देवता - १। ६१। ६३ । ६५ । ६६ ।
४- बृहद्देवता - १।६१।६३ ।६५ ।६६ ।

उनको कर्म के लिए प्रेरित करता है ।

(२३) `तं देवा अब्रुवन सुवीर्योभियर्या अथगोपायत इति तत्सूर्यस्य सूर्यत्वम् ।`[१]

तैत्तिरीय संहिता और वृहद्देवता में शोभन कर्म करने वाले प्राणियों के रक्षक के रूप में `सूर्य` शब्द की व्याख्या की गयी है ।

(२४) `एष वै सूर्यः य एष तपति ।
एष वै सूर्यः शुक्रो य एष सूर्यः तपति एष एव ब्रह्म ।`[२]

शतपथ ब्राह्मण और वृहद्देवता के अनुसार जो तपता है, वही सूर्य है । शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय संहिता के अनुसार जो सूर्य तपता है, वही ब्रह्म है ।

`एष वैवषट्कारः य एव सूर्यस्तपति ।
एष वैस्वाहाकारो य एष सूर्यः तपति ।`

शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को वषट्कार, स्वाहाकार आदि वाच्य शब्दों से सम्बोधित किया गया है ।

(२५) `एष वै ब्रह्मणस्पतिः`[३]

यजुर्वेद में सूर्य को ब्रह्मणस्पति का रूप कहा गया है ।

(२६) `अर्कचक्षुस्तदसौ सूर्यः ।`[४]

तैत्तिरीय संहिता में सूर्य को सभी प्राणियों का चक्षु कहा गया है ।

१- तैत्तिरीय - २।२।१०।१४ ।

२- शतपथ ब्राह्मण- ८।४।२।२३, ४।५।८।६, ११।२।२।५, १४ ।१ ।३। १६ ।

३- यजुर्वेद - ३७ । ७ ।

४- तैत्तिरीय - १। १। ७ । २ ।

(२७) `एष वै मख: ` ।[१]

`एष वै गर्भो देवानाम्`

`एष वै पिता `।

यजुर्वेद में सूर्य को यज्ञपिता और भर्तृ के रूप में माना गया है ।

(२८) `एष वै वसुरन्तिक्ष: सह`[२]

`एष वै यम: य एष सूर्यस्तपतिचक्षस्यैव ।`[३]

`सूर्य परिवत्सर: ` ।[४]

ऐतरेय, ऋग्वेद तथा ताण्ड्यन में आन्तरिक्ष, यम पारवत्सराब के रूप में `सूर्य ` शब्द की व्याख्या की गयी हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि सर्वत्र ही सूर्य को विभिन्न रूपों में व्याख्यायित किया गया है ।

`सूर्य ` के वाच्यनामों की व्याख्या —

वैदिक संहिताओं में सूर्य शब्द की व्याख्या के साथ-साथ सूर्य के वाच्यनामों की भी व्याख्या की गयी है जो निम्न-लिखित हैं --

(१) `सविता` शब्द की व्याख्या —

मैत्री उपनिषद् में प्रसवधर्म के कारण `सविता` नामक सार्थक हुआ । सवनात् सविता । सूर्य का यह दूसरा रूप है जिसका प्रयोग कई प्रकार से हुआ —

१- यजुर्वेद - ३७ ।१, ३७ ।५, ३७।१४ ।

२- ऐतरेय - ४ । २० ।

३- ऋग्वेद - ४ । ४० । ५ ।

४- ताण्ड्यन में - १७। १३। १७

(क) `सुवति स्व स्व व्यापारे जनान्प्रेरयतीति विग्रहे ।`

सविता मनुष्यों को अपने-अपने कार्यों में प्रेरित करता है । षु प्रेरणे धातु से तृच प्रत्यय लगाकर सवितृ शब्द की निष्पत्ति हुई है ।

(ख) `षु अभिषवे षूङ् प्राणिगर्भ विमोचने धातुभ्यां ।[१]
निष्पाद्यते एवं च सुनोति सूतेवा चराचरं जगत्सः ।।[१]

सविता शब्द अभिषव के अर्थ में षुञ् धातु तथा प्राणियों के गर्भ विमोचन के अर्थ में षूङ् धातु से निष्पन्न हुआ । यह शब्द चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाले देव के लिए प्रयुक्त होता है ।

(ग) `धी शब्दवाच्यं ब्रह्माणं प्रचोदयति सर्वदा ।
सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णुः सविता सतुकीर्तितः ।`
सर्वलोक प्रसवनात् सविता सतुकीर्त्यते ।
यतस्तद्देवता देवी सावित्रीत्युच्यते सदा ।।[२]

हलायुध कोश के अनुसार `सविता` धी शब्द का वाच्य है । यह वही ब्रह्म है जो सृष्टि के लिए स्वयं प्रेरित होता है ।

(घ) `सर्वस्य प्रसविता सवितेति ।`[३]

निरुक्त ग्रन्थ के अनुसार सविता भी प्रसविता अर्थात् जन्मदाता है ।

१- सत्यार्थ प्रकाश - प्रथम संस्करण - १८८५, पृष्ठ १० ।

२- हलायुध कोश - श्री जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी १८७६, पृष्ठ ७०२ ।

३- निरुक्त - १० । ३१

(ह०) आचार्य शंकर भी `सविता` को सम्पूर्ण जगत् का प्रसविता मानते हैं यथा —

`सर्वस्य जगत: प्रसविता सविता ।`[1]

(च) `प्रजानां प्रसवनात्सवितेति निगद्यते ।`[2]

विष्णुपुराण में भी प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले देव के रूप में सविता की व्याख्या की गयी है ।

(छ) `सवितारमेव स्वेनभागधेयेनोपधावति स एवास्मै सनिप्रसुवति ।`[3]

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार सभी उत्पन्न प्राणियों के प्रेरक देव के रूप में और अभिमत साधन के प्रदाता के रूप में `सविता` का चित्रण किया गया है ।

(ज) `स्त्रवन्ति स्यन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते ।
स्त्रवणाते यसोऽदा च तेनासो सविता स्मृत: ।।`[4]

साम्बपुराण के अनुसार स्त्रवण और स्यनन्दन के कारण भी `सविता` कहा गया है ।

(झ) `दिवाकरं प्रशोत्येक: सवितातेन कर्मणा ।
उदितो भासयंल्लोकान् इमांश्चैवस्वरश्मिभि: ।।`[5]

बृहद्देवता के अनुसार जब सूर्य उदित होकर अपनी किरणों के

१- विष्णुसहस्त्रनाम - १०७ श्लोक संख्या, गीता प्रेस गोरखपुर २०९६ ।

२- विष्णुपुराण - १ । ३० । १५

३- तैत्तिरीय संहिता - २। १। ६। ३

४- साम्ब पुराण - ६ । १२ क्षेमराज बाम्बे

५- बृहद्देवता - २ । ६२ ।

माध्यम से लोकों को प्रकाशित करता है । वह `सविता` कहलाता है ।

(जे) `सविता देवानां प्रसविता ।`[१]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार देवों को उत्पन्न करने वाले कारक को `सविता` कहा जाता है ।

(त) `सविता वै प्रसवानामीशे ।`[२]

ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसी अर्थ में `सविता` शब्द की व्याख्या की गयी है ।

(थ) `एताभिर्वै रत्निभिः सविता सर्वस्य प्रसवांगच्छत ।`[३]

ताण्डु यन ब्राह्मण भी उत्पन्न कर्ता के रूप में `सविता` शब्द की व्याख्या हुई है ।

(द) `असौ वैसविता य एष सूर्यस्तपति ।`[४]

शतपथ ब्राह्मण तपनशील सूर्य को ही `सविता` कहा गया है ।

(ध) `अग्निरेव सविता स प्रजापतिः ।`[५]

जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार अग्नि ही सविता और प्रजापति है ।

१- शतपथ - १ । १ । २ । १७ ।

२- ऐतरेय - १। ३० । ७ । १६ ।

३- ताण्ड्यन - २४ । १५ । २ ।

४- शतपथ - ३। २। ३। १८ ।

५- जैमिनीय - ४ । २७ । १

(न) 'यज्ञ एव सविता' ।

'विद्युत देव सविता ।'

'वेदा एव सविता'[1]

गोपथ ब्राह्मण के अनुसार विद्युत को भी 'सवितृ' शब्द का द्योतक माना गया है । गोपथ ब्राह्मण पूर्व खण्ड में वायु, चन्द्रमा, यज्ञ और वेद को 'सवितृ' शब्द के वाच्य के रूप में प्रयुक्त किया गया है । यथा --

(ट) 'स्तनयित्नुरेव सविता ।'[2]

जैमिनीय उत्तरीय खण्ड में 'शब्द करने वाले को सविता' कहा गया है ।

(ठ) 'इयं पृथवी सविता' ।[3]

शतपथ ब्राह्मण में पृथवी को ही 'सविता' के नाम से सम्बोधित किया है ।

(ड) 'सविता सर्वभावानां सर्वभावश्च सूयते ।
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेनचोच्यते ।।'[4]

वृहद्योगिया याज्ञवल्क्य मे वर्णित है।

(२) 'आदित्य' शब्द की व्याख्याएं --

'सूर्य सिद्धान्त' नामक ज्योतिषग्रन्थ में जगत् के आदि के कारण आदित्य कहा गया है ।

१- गोपथब्राह्मण - १। १३ ।

२- जैमिनीय उत्तरीय खण्ड - ४ । २७ । ६

३- शतपथब्राह्मण - १३ । १ । ४ । २ ।

४- वृहद्योगिया याज्ञवल्क्य - ६। ५५- ५६ ।

(क) 'आदितेरादित्यस्या वाङ्‌ पत्यपुमानित्यर्थेदित्यादित्य ।'[१]

अष्टाध्यायी के अनुसार 'आदित्य' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है । 'आदितै: अपत्यं पुमान्' इस विग्रह के अनुसार उत्पत्ति के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है ।

(ख) 'दो अवखण्डने धातोर्कि निदिति: सिद्ध्यति विनाश शीलेत्यर्थ: न सा व्यत् प्रत्यये चादित्य: ।'[२]

सत्यार्थ प्रकाश में दो अवखण्डन धातु जो विनाश के अर्थ में न हो और व्यत् प्रत्यय लगाकर 'आदित्य' शब्द की निष्पत्ति की गयी है ।

'न नियते विनाशो यस्यासावयमादित्यतस्य आदित्य: ।'

सत्यार्थ प्रकाश में 'आदित्य' शब्द की एक और व्याख्या मिलती है जिसके अनुसार जिसका कभी विनाश न हो, वही आदित्य है ।

(ग) 'आदित्य: कस्मात् आदत्ते रसान् आदत्ते मासम् ज्योतिषा आदिप्तो मासेति ।'[३]

निरुक्त के अनुसार 'आदित्य' शब्द की व्याख्या है जो रसों के प्रदाता प्रकाश के प्रदाता, ज्योति से दीप्त और प्रकाशयुक्त है, वही आदित्य है ।

(घ) 'य एषोऽन्तरादित्येहिरण्यमय: पुरुषो दृश्यते ।'[४]

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार जो मध्य में हिरण्यमय पुरुष के रूप में दिखाई देता है, वही आदित्य है ।

१- अष्टाध्यायी - ४ ।१। ८५

२- सत्यार्थ प्रकाश - पृष्ठ २६, पृष्ठ ५, स्त० २ ।

३- निरुक्त - २ । १३

४- छान्दोग्योपनिषद् - १।६।६० ।

(ङ०) 'सर्वं वा अत्तीति तददितेरादित्त्वम् सर्वस्यैवात्ता भवति ।[1]
सर्वमस्यान्नं भवति य एवमदिते रदितित्वम् ।।'

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो सभी का भक्षण करता है और सभी पदार्थ जिनके अन्न है, वही आदित्य है ।

(च) 'दितिर्विनाशो न विद्यते यस्यासादितिब्रह्मविद्या पुत्रस्तल्लभ्यत्वात् ।'[2]

वाल्मीकि बाल रामायण के आदित्य हृदय स्तोत्र के अनुसार अदिति, विनाशरहित ब्रह्म विद्या है उसके पुत्र रूप में उत्पन्न होने के कारण सूर्य को आदित्य कहा गया है ।

(छ) 'बरामहो असि सूर्यबआदित्यमहो असि ।
महस्तेसतो महिमा वनस्पते द्रादेव महो असि ।।'[3]

यजुर्वेद के अनुसार आदित्य परमात्मा का ही स्वरूप है ।

(ज) 'आदित्यो ह्यादिभूत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते ।'

जगत् के आदि है इस कारण आदित्य कहा गया है ।

(झ) 'अदनान्नित्यमादित्यस्तवसां तेजसामयम् ।
अदितेवासुतो यस्मात् निगमज्ञैरुदाहृत: ।।'[4]

साम्ब पुराण के अनुसार भी अदिति पुत्र होने के कारण सूर्य को आदित्य कहा है ।

(३) 'भग' की व्याख्या —

तैत्तिरीय के अनुसार 'भजनीय' भाग्य के प्रदाता

१- शतपथब्राह्मण - १०। ६। ५। ५
२- वाल्मीकि बाल रामायण- ७। ११५ 'आदित्यहृदय स्तोत्र'।
३- यजुर्वेद - ३३। १३
४- साम्ब पुराण - ६। १६

के रूप में `भग` की व्याख्या की गयी है। यथा —

`भगोह दाता भग इति प्रदाता।`[1]

(४) `चित्रराध` शब्द की व्याख्या —

निरुक्त में निरुक्तकार ने चित्रराध की व्याख्या इस प्रकार की है। यथा --

`राध: इति धननाम् राध्नुवन्ति अनेनेति राधा।`[2]
चित्रबहुविधं धनं राध: यस्य स रधुधातोरसुनिरूपम्।

अर्थात् जिसके पास विभिन्न प्रकार के धन है, वही चित्रराध है, सूर्य के पास बहुविधि धन है इसलिए वह चित्रराध है।

(५) `भानु` शब्द की व्याख्या —

साम्बपुराण के अनुसार प्रेरणार्थक `नुद` धातु और `भा` दीप्ति के अर्थ में भानु शब्द की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार `भानु` प्रेरक और जगत् के प्रकाशक देव है यथा —

`नुदिति प्रेरणे धातु र्भादीप्तौ च कथ्यते।
नोदनात्कारणद् भासा भानुरित्यभिधीयते।।`[3]

(६) `रवि` शब्द की व्याख्या —

वस्तुत: प्रणव या ॐकार, उद्गीथ ही सूर्य है ये नादब्रह्म हैं, निरन्तर र व करते हैं, इस कारण रवि नाम से विख्यात है।

१- तैत्तिरीय - ३। १। १। ८।
२- निरुक्त - ४। ४।
३- साम्बपुराण - ६। २०।

(७) 'चित्रभानु' शब्द की व्याख्या —

साम्बपुराण में चित्रभानु का अर्थ है जिसके प्रकाशक और प्रेरणा से चित्र, विचित्र वर्णादि होते हैं वही चित्रभानु नाम से विख्यात है। श्वेत आदि विविध वर्णों के कारण इसकी किरणें बहुरंगी है। यथा —

'चित्राहि मानवो यस्यवर्णैः शुक्लादिभियतः।
मानवोरश्मयः प्रोक्ता चित्रभानुस्ततः स्मृतः ।।'[1]

(८) 'अर्क' शब्द की व्याख्या —

साम्बपुराण में देवताओं द्वारा अर्चित के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। अथर्ववेद के अनुसार अर्चन्, साधनभूत, उदक, साधनभूतमन्त्र और स्तुत शमादि के लक्षण को अर्क कहते हैं यथा --

'उदीरयतमरुतस्त्वेषो अर्कः नमउतपात्याय।'[2]

(६) 'पूषन्' शब्द की व्याख्या —

साम्बपुराण में पुष धातु से पुष्टि के अर्थ में प्रयुक्त है। बृहद्देवता के अनुसार जो शक्ति इस जगत् का पोषण करती है और जो अपनी रश्मियों से अन्धकार का विनाश करती है, वह सूर्य की शक्ति है जिसे पूषन कहा गया है। यथा --

'पुष्णान् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिभिस्तमः।
तैनैनमस्तौत्पूषेति भरद्वाजस्तु पंचभिः ।।'[3]

१- साम्बपुराण - ६ । २१ ।

२- अथर्ववेद - ४।१५।५ ।, साम्बपुराण - ६ । २५

३- बृहद्देवता - २। ६३ ।, साम्बपुराण - ६ । ३३

(१०) `केशी` शब्द की व्याख्या --

वृहद्देवता और निरुक्त के अनुसार जो संध्या के समय अन्यत्र चला जाता है जो प्रात:काल में उदित तथा अपनी किरणों से जगत् को प्रकाशित करता है, वही केशी कहा जाता है। यथा --

`कृत्वा सायं पृथक्याति भूतेभ्यस्तमसोऽत्यये।
प्रकाशं किरणै: कुर्वन् तेनैनं कोशिन विदु: ।।`[१]

`केशा: रश्मयस्तैस्तद्वान भवति काशनात् प्रकाशनातवा।`[२]

(११) `विश्वानर` शब्द की व्याख्या --

निरुक्त और वृहद्देवता के अनुसार सूर्य को विश्वानर भी कहते हैं क्योंकि वह मनुष्यों को इस लोक में लाता है। यथा --

`सम्प्रत्येकशः कृत्वातेमायन्मनयन्तो पृथङ्नरान्।
विश्वे विश्वानर स्तेन कर्मणा स्तुतिष स्तुत: ।।`[३]

`विश्वान् नरानूनयति विश्व एननरामयतीतिवा।`[४]

(१२) `पतंग` शब्द की व्याख्या --

वृहद्देवता के अनुसार सूर्य को ही पतंग क्योंकि जब वह अधोगति से गमन करता है तो इसकी किरणें नीचे धरातल

१- वृहद्देवता - २ । ६५ ।

२- निरुक्त - ७ । २१ ।

३- वृहद्देवता - १।६६।

४- निरुक्त - ७।२१।

में चली जाती है । कुछ लोग उसको वीरत्व का द्योतक मानते हैं परन्तु कुछ लोग उसे केवल माया मात्र ही मानते हैं । यथा --

'ऋषिवर्गौं पतंगस्तु पतंगमितियत्परम् ।
तत्सौर्य मेके मन्यन्ते मायामेव तथा परे ।।'[1]

(१३) 'वृषाकपि' शब्द की व्याख्या --

निरुक्तकार के अनुसार सूर्य अपनी रश्मियों के साथ प्रकम्पित होता है अथवा वर्षणशील इसलिए होती है उसे वृषाकपि नाम से सम्बोधित किया गया है यथा --

'यद्रश्मिभि: अभिकम्पयन्न् इति तद्वृषाकपि: भवति वृषाकम्पन: ।'[2]

(१४) 'मित्र' शब्द की व्याख्या --

साम्बपुराण में स्नेह के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली त्रिमित् धातु से निष्पन्न है । तैत्तिरीय के अनुसार लोगों का मित्र होने के कारण तथा लोगों को मृत्यु से तारता है, इस कारण उसे मित्र संज्ञा से संज्ञित किया है । यथा --

'मीतेर्मरणात्त्रायते इति मित्र: प्रमीते: त्रायते: सर्वस्यमित्रत्वान्मित्र:।
सर्वस्याहं मित्र अस्मि ।'[3]

'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।'[4]

अर्थात् मित्र संज्ञक सूर्य लोगों को सत्कर्म में प्रवृत्त करने वाले हैं ।

१- बृहद्देवता - ८ । ७५
२- निरुक्त - १२ । २७
३- तैत्तिरीय - ६।४।८१ ।, साम्बपुराण ६ । २७
४- ऋग्वेद - ३।५९।०१ , साम्बपुराण ६। २३

(१५) `भास्कर` शब्द की व्याख्या —

भासृ धातु प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण भास्कर कहते हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट ज्ञात है कि सूर्य के वाच्य नामों की परिकल्पना एवं व्याख्या उनके कर्मानुसार की गयी है।

सूर्य का वैदिक स्वरूप —

वैदिक धर्म में जिस बहुदेवत्वाद की कल्पना की गयी वह सब उस सर्वशक्तिमान के असंख्य रूप के कारण ही है। सूर्य अपना प्रकाश विकीर्ण कर लोगों को सत्य का ज्ञान देने वाले एवं अचेतनों में चेतना का संचार करने वाले, सर्व प्रेरक एवं सर्वपूजित हैं। एक आत्मा के रूप में विश्व में सर्वत्र व्याप्त हैं। वह सभी रूपों में एक है यथा ऋग्वेद --

`रूपं प्रतिरूपं वभूव`[1]

`सूर्य` का वैदिक वाङ्मय में स्वरूप आध्यात्मिक व प्रतीकात्मक रूप निहित है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कार्य करते हैं, वही इनकी तत्सम कृति है। वेद में स्वयं ब्रह्म ने सूर्य से उपमा देते हुए कहा भी है। यथा --

`ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः`[2]

ऐसा ही अथर्ववेद में भी सूर्य को जगत्पिता के नाम से व्यवहित किया गया है। ब्रह्माण्ड में वह परमात्मा के रूप में निहित है। यथा --

स नः पिता जनिता स उतबन्धु धामिन वेदभुवनानि विश्वा।
योदेवानां नाम ध एक एवतंस प्रश्नं भुवनायन्ति सर्वा ॥[3]

१- ऋग्वेद - ३। ५३। ८

२- यजुर्वेद - २३। ४८

३- अथर्ववेद - २। १। ३

वेद में प्रयुक्त हुए देववाची नाम अन्त में परमेश्वर की स्तुति करते हैं क्योंकि प्रत्येक देव के गुण की अन्तिम पराकाष्ठा उसी में सार्थक होती है इसलिए किसी भी नाम से स्तुति की जाय तो वास्तव में वह परमेश्वर की ही स्तुति है । ब्रह्म के बाद सबसे अधिक वाच्य नामों वाले सूर्य ही विवस्वान् पूषा, त्वष्टा, सविता इत्यादि अलग-अलग देवों के होते हुए भी सूर्य के वाचक हैं । इसी कारण वेद में इन नामों से इन देवताओं के वर्णन के साथ सूर्य का भी स्तुति की गयी है । क्योंकि जब भग या सविता को भग का प्रसविता कहते हैं तो इसका अर्थ सूर्य स्वयं भगवान् है । यथा अथर्ववेद के अनुसार --

'भग एव भगवां अस्तुदेव:
सनो भगपुर स्तामनेव ।'[1]

सूर्य को चल-अचल अथवा जड़, चेतन दोनों प्रकार की सृष्टि की आत्मा कहा गया है । पृथवी, आकाश का रूप भी सूर्य स्वयं ही है । प्राण रूप होने से सबकी आत्मा के नाम से सम्बोधित किया गया है । यथा ऋग्वेद में वर्णित है --

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।'[2]

वेदों में अनेकों स्थलों में सूर्य को चक्षु रूप में वर्णन प्राप्य है तत्र सूर्य को मित्र, वरुण तथा अग्नि के नेत्र भी कहा गया है । यथा वर्णन निम्नलिखित है --

'ॐ चित्रं देवानामुदगानीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणयाग्ने: ।'[3]

१- अथर्ववेद - ३ । १६ । ५

२- ऋग्वेद - १ । ११५ । १

३- ऋग्वेद - १० । ६० । १३

पुरुष सूक्त में सूर्य का उद्गम विराट् पुरुष भगवान् के नेत्र से सम्पन्न है यथा वर्णित है --

'चक्षो: सूर्योऽजायत'।[1]

सूर्य भगवान् की शक्ति है और शक्ति शक्तिमान् में अभेद व्यक्त कर स्वयं वेद ने आदित्यस्थित पुरुष एवं ब्रह्माण्ड स्थित पुरुष में अभेद दर्शाया है। यथा - यजुर्वेद में वर्णित है —

'हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्य पुरुष: सोऽसावहम् ओम् खं ब्रह्म।।'[2]

वेदों में बहुधा 'मातृ' शब्द पृथवी के लिए तथा 'पितृ' शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। वह सूर्य, द्युलोक, पृथवीलोक का स्वामी है यथा ऋक् संहिता में वर्णित है —

'तिस्त्रोमातृंस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेक उर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति।'[3]

इन्हें सभी देवों में परमतेजस्वी देव के रूप में अभिव्यक्त किया है। यथा —

'सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि।'[4]

भुवन भास्कर स्वयम्भू है, सम्पूर्ण जगत् में श्रेष्ठ है। सम्पूर्ण जगत् को अपनी सहस्त्रमयी किरणों से प्रकाशित करते हैं, सबको वर्चस् और ज्योति प्रदान

१- यजुर्वेद - ४० । १७

२- तत्रैव - ४० । १७

३- ऋक संहिता - १० । ५ । ३

४- यजुर्वेद - ८ । ४०

करते हैं यथा ऋग्वेद में प्राप्य है --

'विश्वमाभासि रोचनम् ।'

'दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः ।'[1]

सूर्य ही कालचक्र का विभाजक तथा ऋतुचक्र का नियामक है । सूर्य सब प्राणी के मार्गदर्शक बनकर पाप-पुण्य कर्मों को देखता है । सबको समान रूप से प्रकाश एवं प्रेरणा देते हैं । सविता नाम से विख्यात देव नाना प्रकार के अमृत को प्रदान करते हैं यथा अथर्ववेद में वर्णित है --

'स धानो देवः सविता सा विषदमृतानिभूरि ।'[2]

वेदों में सर्वव्यापक विष्णु का परमपद द्युलोक में सूर्य सदृश विस्तृत है । यथा --

'तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः दिवीव
चक्षुराततम् ।'[3]

सूर्य की किरणों में मनुष्य के लिए उपयोगी सभी तत्व विद्यमान है सर्व रोगों का शमन और सर्व पापों से मुक्ति दिलाने की शक्ति है । यथा --

'विश्वानि देवसवितर्दुरितानिपरासुव ।'[4]

सूर्य की स्तुति; प्रार्थना में अपने को उपास्य के पास नहीं अपितु अपने

१- ऋग्वेद - १। ५०। ४ । ४। ५३ ।२

२- अथर्ववेद - ६। १ । ३ ।

३- ऋग्वेद - १।२२। २० ।

४- अथर्ववेद - १७ । १ । २२ ।

को उपास्य से अभिन्न अनुभव वेदों में किया गया है । उसकी तीन दिशाओं को नमस्कार भी किया गया है यथा अथर्ववेद में वर्णित है --

`उद्यते नम: उदायते नम: उदितायु नम: ।
अस्तं यते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नम: ।।`[१]

इस प्रकार ऋग्वेद में स्तुत्य सूक्तों में सूर्यनारायण की स्तुतियां की गयी हैं । इसमें सूर्य का विशद् गुणगान किया गया है । वैदिक देवों की रूपरेखा की धारणा में अनिश्चयता तथा वैयक्तिकता का अभाव प्राय: सर्वत्र परिलक्षित होता है । विद्यमान चेतन सूर्य देवता से सकामना पूर्ति के लिए प्रार्थनाएं भी करते हैं तत्पश्चात् उनमें एक रूपता का अनुभव करते हुए असीम् आत्मिक आनन्द के भागी होते हैं । अत: ऋषियों ने श्रद्धानत एवं विभोर होकर अनेक मन्त्रों में सूर्य स्तुति एवं उपासना की उद्भावना है । इस कारण सूर्य-महिमा का व्याख्यान् करते हुए कहा भी गया है । यथा --

`अर्चन्ते एके महिमान्वत नेनसूर्यमरोचयन् ।`[२]

<u>सूर्य का पौराणिक स्वरूप --</u>

स्तुतियों का मूल स्थान वेदों में निहित है किन्तु इसके अतिरिक्त पुराणों में भी सूर्य की स्तुतियां प्राप्य हैं । सूर्य नारायण प्रत्यक्ष देवमय होने के कारण सनातन, वैदिक धर्मावलम्बी सर्वदा भुवन् भास्कर की उपासना करता है क्योंकि यह सभी शुभाशुभ कर्मों के साक्षी हैं इसलिए अर्घ्य देते समय `आदित्य हृदय` में कहा भी गया है । यथा --

`नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रो शुचये नमस्ते कर्मसाक्षिणे ।।`[३]

१- अथर्ववेद - १७ । १ । २३

२- ऋग्वेद - ८ । २६ । १० ।

३- आदित्य हृदय स्तोत्र - वाल्मीकि रामायण

सूर्य की महिमा का वर्णन सर्वत्र प्राप्य है जो सूर्य की पूजा करता है वह आपत्ति से छूट जाता है । महान यश को प्राप्त करता है यथा मार्कण्डेय-पुराण में वर्णित है --

'विवस्वतस्तु जातानां श्रणुयाद् वा पठेद् यथा ।
आपदं प्राप्यमुच्यते प्राप्नुयोऽन्यमतृभरा ।।'[१]

विष्णुपुराण में ब्रह्म की इच्छा शक्ति से उत्पन्न तेजरूप सूर्य का विवेचन है । सूर्य को ही विष्णु का ही रूप माना गया है । देवों के आदि भूत विवस्वान है । यथा --

'नमः सवित्रेसूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ।।
हिरण्यमयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः ।
वहन्ति भुवनालोकं चक्षुषं नमाम्यहम् ।।'[२]

श्रीमद्भागवत् में सूर्य के सर्वरूप का वर्णन करते हुए साक्षात् नारायण का रूप कहा गया है । वह अनादि, अनन्त, अजन्मा है, भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्प में अपने स्वरूप में प्रकट होकर लोकों का पालन-पोषण करते हैं यथा श्रीमद्भागवत् में वर्णित है --

'एवं ह्यनादिनिधना भगवान् हरिरीश्वरः ।
कल्पे-कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकान् तपत्यजः ।।'[३]

कूर्मपुराण में भगवान् भास्कर की अमृतमयी रश्मियों का वर्णन तथा

१- मार्कण्डेयपुराण - १०३ । ६

२- विष्णुपुराण - ३। ५। १५, १८, २३, २४ सवितृ स्तोत्र ।

३- श्रीमद्भागवत - १२ । ११ । ५०

तथा नवग्रहों को रश्मियों से तृप्त होने का विवेचन प्राप्य यथा वर्णित है —

> 'न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तुपीयते ।
> एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमा : ।।'[१]

सरित, आकाश, कर्म में, लोक में प्रेरणा देने वाले सूर्य हैं । यह काल पुरुष की आत्मा, लाल, श्याम, अन्वित् तथा पीत नेत्र वाले हैं । पिता-स्वरूप वाले, प्रतापी, सत्वगुणों से युक्त, सम्पूर्ण दिशाओं के स्वामी, अपनी प्रजा पर अनुग्रह करने वाले तथा जाति से क्षत्रिय हैं जिसका वर्णन चिन्तामणि में यथा है --

> 'पित्रात्मकोऽयं समगायत्र्यष्टि प्रतापशुक्सत्वगुणोल्परोगी ।
> संचार युक्त संकुचितर्थ वाक्य स्वल्प प्रजः दैविक बुद्धियुक्तः ।।'[२]

सूर्य ही ज्योति, ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापति के रूप में, रुद्र तथा रुद्रात्मा, वायु, अग्नि के रूप में है यथा - भविष्यपुराण के आदित्य हृदय स्तोत्र में वर्णित है --

> 'त्वं ज्योतिस्त्वं द्युतिर्ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
> त्वमेव रुद्रो रुद्रात्मा वायुरग्निस्त्वमेव च ।।'[३]

सूर्य का देवरूप में विवेचन करते हुए कमलहस्त में धारण किये हुए, सुन्दर नेत्र वाले, सप्त अश्वों वाले, एक चक्रधारी कमल पर अवस्थित, नाना आभूषणों से विभूषित मस्तक वाले, द्विभुजाओं वाले, रथ पर आरूढ़ वर्णित है । यथा --

> 'रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ।
> सप्ताश्वैक चक्रं रथं तस्य प्रकल्पयेत् ।।'[४]

१- कूर्मपुराण - ४० अध्याय

२- ज्ञब्दवाचस्पति - ६ भाग - चौखम्बा संस्करण, पुस्तकालय काशी
सीताराकब्ध - २०१८, पृष्ठ ५३२७-२८

३- भविष्यपुराण - आदित्यहृदय स्तोत्र

भगवान् सूर्य का दीप्तमान् रूप तथा सकल जगत् को प्रकाशित करने वाला है। ऐसा ब्रह्मपुराण के सूर्य-स्तोत्र में वर्णित है यथा --

'प्रदीप्तं दीप्तं दिव्यं सर्वलोक प्रकाशम् ।
दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपन्तस्य ते नमः ।।'[1]

विभिन्न पुराणों में सूर्य भगवान् के अनेक रूपों का वर्णन किया गया है। वाराह पुराण में सूर्य जगत् की उत्पत्तिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, प्रलयकर्त्ता के रूप में है। देवकृत सूर्य स्तोत्र में वर्णित है यथा --

'भवान्प्रसूतिर्जगतः पुराणः प्रयासिविश्वं प्रलयं च हंसि ।
समुत्थितस्त्वं सततं प्रयासि विश्वम्भरं वा प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।'[2]

सूर्य की स्तुतियों का विवेचन करते हुए पुराणों में सूर्य की पूजा-विधि तथा फलश्रुति का विवेचन भी प्राप्य है। लिङ्गपुराण में वर्णित है-जो लोग एक बार देवाधिदेव भगवान् सूर्य का पूजन कर लेता है वह परमगति को प्राप्त करता है तथा सर्व पापों से मुक्त होकर ऐश्वर्य से युक्त, अप्रतिम तेजवाला हो जाता है यथा --

'सर्वपाप विनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः ।
सर्वैश्वर्य समोपेतः तेजसाप्रतिमश्च सः ।।'[3]

पद्मपुराण में सूर्य का जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदि का भोग को प्राप्त करता है। सूर्य की सर्वमूर्तों में स्थिति है।

१- ब्रह्मपुराण - ३१ । १६

२- वराहपुराण - २६ । १०

३- लिङ्गपुराण - २२ अध्याय

इसके बिना किसी की भी सत्ता नहीं है यथा वर्णित है --

> 'सर्वग: सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया बिना ।
> चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थित: ।।'[१]

इस प्रकार पुराणों में वर्णित सूर्य की सर्वज्ञता, सर्वाधिपता, सृष्टिकर्तृता, काल-चक्र प्रणेता आदि के रूप में उपासना का विधान किया गया है । अत: प्रत्येक आस्तिक जन के लिए उपास्य और नित्य ध्येय है ।

उपनिषदों में सूर्य का स्वरूप --

पुराणों के अतिरिक्त उपनिषदों में भी सूर्य उपासना का विशद् वर्णन है । उपनिषदों में सूर्य को ओंकार उपासना, त्रिकाल-सन्ध्योपासना और अद्वैत ब्रह्म के रूप में उपासना की गयी है । भिन्न-भिन्न उपनिषदों में सूर्य की व्याख्या की गयी है ।

सूर्य की प्राणरूपता का विवेचन प्रश्नोपनिषद् में व्याख्यित है । सूर्य भगवान् के द्वारा समस्त जड़ चेतन, जगत् को जीवन शक्ति और प्राणशक्ति प्राप्त होती है । इस कारण सूर्य को प्राणिमात्र कहा गया है । प्राण और प्रकाशपति सूर्य में तादात्म्य स्थापित है । आदित्य को प्राण और सोम की रयिसंज्ञा है । समस्त प्राणियों के शरीर में रवि एवं शशि की शक्तियां विद्यमान है यथा --

> आदित्यो ह्वै प्राण: ।
> प्राण: प्रजानामुदयत्येष: सूर्य: ।'[२]

१- पद्मपुराण - ७६ । ३१-३४

२- प्रश्नोपनिषद् - १ । ५-८

ऐतरेय ब्राह्मण में सूर्य सम्पूर्ण प्राणियों को प्राणदान देते हैं। मृत्यु के प्रवर्तक हैं इसलिए कहा भी है --

'उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्राणयति
तस्मादेनं प्राण इत्या चक्षते।'[1]

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् में आदित्य की ज्योति गोपाल की शक्ति ही है यथा वर्णित है --

'आदित्येषु ज्योतिः।'[2]

आदित्यत्वष्टा, परमेश्वररूप वर्णित है। आदित्य में परमेष्ठ ब्रह्मात्मा का निवास वर्णित करते हुए महानारायणोपनिषद् में कहा भी गया है यथा --

'य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा।'[3]

ज्ञानरूप अन्नदाता सूर्य ही ब्रह्म है। सम्पूर्ण जगत् को बुद्धि प्रेरित करने वाली क्रिया यथा --

विश्वारिहवाम हे वसोः कुविद् वनातिनः सवितारं नृचक्षसम्।'

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है। सूर्य के ब्रह्म होने के कारण उन्हें कर्ता, धर्ता एवं संहारकर्ता के रूप में विवेचित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में यथावर्णित है --

'आदित्यो ब्रह्म।'
तेजसो मेफत्रयम् तेजः आपः अन्नम्[4]।

१- ऐतरेयब्राह्मण - २५।८
२- गोपालोपनिषद् उत्तरीय खण्ड - २।१
३- नारायण उपनिषद् - ~~xxxxx~~ १२।६
४- छान्दोग्योपनिषद् - ३।१६।१

ऐसा ही कुछ भाव ब्रह्मरूप में उपासना करते हुए वह आदित्यरूप हो जाता है । सूर्य पंचमहाभूतों का जनक है । सम्पूर्ण जगत् का पालन करता है यथा सूर्योपनिषद् में वर्णित है --

'असावादित्यो ब्रह्म
सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।'[1]

पुराणों की भांति उपनिषदों में सूर्य ब्रह्मा के नेत्र हैं । समस्त प्राणियों के नेत्रों में मूलशक्ति सूर्य की है । हिरण्यगर्भ रूप पुरुष के नेत्रों से आदित्य प्रकट हुए । यथा ऐतरेयोपनिषद् में प्राप्य है --

'चक्षुष: आदित्य:'[2]

कृष्ण यजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद् में चाक्षुष्मती विद्या से अक्षिरोग का निवारण तथा सूर्यशक्ति का वर्णन है । सूर्य नेत्र को तेज एवं ज्योति प्रदान करते हैं । यथा बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है --

'सूर्यश्चक्षु:
यद् यद् इदं चक्षु: सोऽसावादित्य: ।'[3]

सूर्योपनिषद् में सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव और त्रिमूर्त्यात्मक, त्रिदेवात्मक, सर्वदेवमय हरि है । त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुं ' इत्यादि के द्वारा सूर्य को सर्वदेव रूप कहा गया है यथा --

'सर्वदेवमयो रवि: त्रिमूर्त्यात्मा :, त्रिदेवात्मा, सर्वदेवमयोहरि: ।'

१- सूर्योपनिषद् - पृष्ठ ४,१।६

२- ऐतरेयउपनिषद् - १।१।४

३- बृहदारण्यकोपनिषद् - १।१।१, ३।१।४ ।

सूर्य भगवान् स्वर्ग द्वार, मुक्तिपथ है । स्व: व्याहृति की प्रतिष्ठा आदित्य में और मह: की प्रतिष्ठा ब्रह्म में है । इनके द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति होती है । जिसका विवेचन तैत्तिरीयोपनिषद् में इस प्रकार प्राप्य है --

'मह: इति ब्रह्मणि आप्नोति स्वराज्यम् ।'[1]

श्रुति का वचन है जो उद्गीथ है वह प्रण है और जो प्रणव है वह उद्गीथ है । आकाश में विचरण करने वाले सूर्य ही उद्गीथ और प्रणव है । यहीं ॐ का उच्चारण करते हुए गमन करते हैं । भगवान् सूर्य परब्रह्ममय, सर्वदेवमय, सर्वजगन्मय और परमज्योतिर्मय है जो देवाऽदित्य सहस्त्र रश्मियों से सर्वकल्याण करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के विवस्वान् को कर्मयोग का उपदेश दिया । सूर्य को कर्मशीलता, कर्मठता, लोकसंग्रह के अद्वितीय उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया । भुवन भास्कर भ्रमण करते हुए, विश्व का प्रकाश एवं चैतन्य से निष्काम भाव होकर कल्याण करते हैं । यथा श्रीमद्भागवत् में वर्णित है —

'सूर्यस्य पश्य श्रेमाणां यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ।'[2]

योगशास्त्र में पतञ्जलि ने व्याख्यित किया है कि सूर्य में संयम ह करने से सारे संसार का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है यथा --

'भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात ।'[3]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से पूर्णतया स्पष्ट है कि संस्कृत वाङ्मय में सर्वत्र ही सूर्य का विशद् विवेचन जगतकर्ता, ब्रह्मत्व के रूप में व्याख्यित है ।

१- तैत्तरीय उपनिषद्   - १। ६। २

२- ऐतरेयब्राह्मण   - ३३ । ३ । ५

३- पतञ्जलि का योगशास्त्र   -

सूर्य गायत्री --

अन्य देवों के समान सूर्य की गायत्री का विवेचन विविध ग्रन्थों में विविध रूप में प्राप्त होता है । सूर्य गायत्री मन्त्र से सूर्य की दिव्य शक्ति और दिव्य तेज का भौतिक शरीर और अन्तरात्मा में आवाहन करते हैं । भगवतीगायत्री के ध्यान में पांच मुख और पांच रंगों का वर्णन सूर्यमण्डल मध्यस्थ शक्ति के पांच छन्द रंग ही है । गायत्री वेदों की जननी है ।

तथा च महानारायणोपनिषद् में वर्णित है --

(१) भास्कराय विद्महे महद्द्युति कराय च धीमहि तन्न आदित्य: प्रचोदयात् ।[१]

(२) आदित्याय विद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहितन्नो भानु: प्रचोदयात् ।[२]

(३) गरुण पुराण में वर्णित है --

ओं आदित्याय विद्महे विश्व भावाय धीमहि तन्न: सूर्य: प्रचोदयात् ।[३]

गायत्री और सूर्य के अभिन्न होने का एक प्रमाण निम्नलिखित ध्यान से भी मिलता है --

'हे माम्भोजप्रवालप्रतिमनि वरुचिं चारुखट्वाङ्ग पद्मौ ।
चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम् ।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद् वेदवक्त्राभिरामं ।
मार्तण्ड वल्लभार्द्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजाम: ।।'[४]

१- महानारायणोपनिषद् - १।३, पृष्ठ - ५३-५५ मैसूर

२- सूर्योपनिषद् - १। १५-१७

३- गरुणपुराण - १६ । १२ - पंडित पुस्तकालय, काशी

४- शारदातिलक - १४ । ७९

'हम भगवान् आदित्य को जानते हैं-पूजते हैं, हम सहस्त्र (अनन्त) किरणों से मण्डित भगवान् सूर्यनारायण का ध्यान करते हैं, वे सूर्यदेव हमें प्रेरणा प्रदान करें। (सूर्योपनिषद्)

सूर्य मन्त्र –

'ॐ घृणि: सूर्य: आदित्योम् ।'

स ॐ एकाक्षर मन्त्र ब्रह्म है, घृणि: यह दो अक्षरों का मन्त्र है सूर्य: दो अक्षरों का मन्त्र है। आदित्य: इस मन्त्र में तीन अक्षर हैं। यह सब मिलाकर सूर्यनारायण का अष्टाक्षर महामंत्र है। यही अथर्वाङ्गिरस सूर्य मन्त्र है। इस मन्त्र का जप प्रतिदिन करने वाले को परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य का स्वरूप --

ब्राह्मणग्रन्थों में सूर्य का विश्लेषण विशेष रूप से प्राप्त है। वेद के मन्त्र भाग में बीजरूप से जिस तत्व का उल्लेख है उसी का विशद् विवेचन ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है। विश्व के मूल में दो तत्व सम्मिलित किये गये अग्नि और सोम। अग्नि का सत्य रूप सूर्यमण्डल और ऋत् रूप दिक् अग्नि जो सर्वत्र व्याप्त है। सोम का सत्यरूप चन्द्रमण्डल और ऋत् रूपदिक् सोम है, जो सर्वत्र व्याप्त है। ऋत् अग्नि और ऋत् सोम दोनों रूप ऋतुओं के प्रवर्तक हैं।

(१) ब्राह्मण ग्रन्थों ने सूर्य स्वरूप को श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य, और अनुमान इन चारों के आधार से किया है। सूर्य उत्पत्ति, ताप, प्रकाश, सप्त किरणें भूमण्डल पर प्रभाव आदि का विवेचन है।[१]

(२) सोम की आहुति से ही सूर्य का उदय हुआ है अर्थात् सूर्यपिण्ड

१- सौरादित्यमण्डलं सर्वैर्वेदविद्यास्वी।

अग्नि और सोम दोनों की समष्टि है। सूर्य एक प्रज्वलित पिण्ड है उस अग्नि में ब्राह्मणपति सोमाहुति होती है जिससे सूर्य का स्वरूप बना है। इस आहुति के कारण सूर्यपिण्ड में स्थिर है।[1]

सूर्य के अग्निपिण्ड को काला कहा गया जब सूर्य और सोम मिलते हैं तो उस संयोग से वह सोम जलने लगता है और प्रज्वलित सूर्यमण्डल पृथ्वी को प्रकाशमय करता है। सूर्य की अनन्तरश्मियों में सप्तरश्मियाँ मुख्य हैं। सप्तरस, सप्तरूप, सप्तधातु आदि सभी सप्तरश्मियों के आधार पर प्रतिष्ठित है।[2]

शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को त्रयीमय माना है अर्थात् ऋक् यजु एवं साममय। न केवल सूर्य ही अपितु पदार्थ मात्र त्रयीमय है। पदार्थ में उपलब्ध नियमन भाग ऋग्वेद है। प्रकाशभाग सामवेद और पुरुष भाग यजुर्वेद है।[3]

प्राणियों के रात्रि एवं प्रातः का उद्भूत कारण सूर्य प्रत्यक्ष है क्योंकि रात्रि के समय सूर्य पार्थिव अग्नि में गर्भ स्वरूप से प्रविष्ट होता है।

'अथ यद् अस्तमेति तदग्नावेव यो नौ गर्भोभूत्वा प्रविशति।
तं गर्भं भवन्तमिमाः सर्वाः प्रजा अनुगर्भा भवन्ति ॥[4]

ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्यमण्डल ब्रह्मा, विष्णु, महेश है। क्योंकि उत्पादक होने से वह ब्रह्मा, सब का आश्रय या अधिष्ठाता होने से इन्द्र और यज्ञमय होने से विष्णु कहलाता है। यथा वर्णित है --

'एकमूर्तिस्त्रयो देवाः ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।'

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सर्वत्र सूर्य का विवेचन मिलता है।

१- आहुतेः (सोमाहुतेः) उक्थ (सूर्यः) ।

२- आकृष्णेन रजसावर्तमानः (यजुर्वेद) ।

३- यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम् ।
   ता ऋचः स ऋचां लोकः ॥ -- शतपथब्राह्मण

४- शतपथब्राह्मण -

अन्य पुस्तकों में सूर्य का स्वरूप —

(लीकी) की पुस्तक `कि आवो तेहसैंग` में सूर्य को स्वर्गपुत्र कहा गया है और दिन का प्रदाता भी कहकर उसकी अभ्यर्थना की गयी है । बौद्ध धर्म जातकों में सूर्य के प्रसंग में उन्हें वाहन के रूप में मान्यता प्राप्त है । इसकी अजवीथि, नागवीथि, और गोविथीनाम के मार्गों पर तीन गतियां मानी गयी हैं । इस्लाम धर्म में सूर्य को इल्म, अहकाम, अननबूम कहा गया । ऐसी मान्यता है कि सूर्य आदि चेतन इच्छा शक्ति का उपभोग करते हैं । उनके पिण्ड में व्याप्त अन्तरात्मा से प्रेरित होते हैं । ईसाइयों के `न्यूटेस्टामेन्ट`, में सेन्टपाल के अनुसार —

`सूर्य द्वारा पवित्र किया गया रविवार दान की अपेक्षा करता है इसे प्रभु का दिन माना गया है । इसलिए रविवार उपासना का प्रमुख दिन है ।`

इस तरह सूर्य के स्वरूप की पूर्ण व्याख्या हो जाती है जिससे इसकी मान्यता सम्पूर्ण विश्व में रही है ।

सूर्य के विशिष्ट स्तोत्रों का विवेचन —

सूर्य का सृष्टि की विभिन्न शक्तियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । जीवन का नियमन प्रलयन, विघटन और विस्फारण आदि उन्हीं की शक्ति पर निर्भर है । इस कारण सूर्य स्तुतियां अधिक प्रचलित रही है । सूर्य के विभिन्न एवं विशिष्ट स्तोत्रों और कवचों का वर्णन पुराणों में इस प्रकार वर्णित है --

(१) आदित्य स्तोत्रम् —

आदित्य भगवान् की स्तुति में अनेक स्तोत्र प्राप्त हैं ।

१- `आइना अकबरी` कामिल का अंग्रेजी अनुवाद, हिन्दी अनुवादक - मोतीलाल गुप्त १९६१, पृष्ठ २०८-२१० ।

मार्कण्डेयपुराण में १०७ अध्याय के ५ श्लोक से प्रारम्भ द्वादश श्लोकों में स्तुति की गयी है । इसके रचयिता ब्रह्मा ने उच्च-निम्न स्तर पर तप्यमान रवि को देखकर अपने द्वारा रचित सृष्टि के विनाश की आशंका करते हुए भगवान् सूर्य की आराधना की । तब सूर्य ने अपने तेज को समेट लिया जिसका वर्णन यथावत् है :—

इत्येवं संस्तुतोभास्वान् ब्रह्मणासर्ग कर्तृणा ।
उपसंहृत वां स्तेज: परं स्वल्पमधारयन् ।।[1]

(२) आदित्य स्तोत्रम् --

इसमें आदित्य के २१ नामों का कीर्तन किया गया है । यह ब्रह्मपुराण के २९ अध्याय में २९ से ३९ तक १० श्लोकों में वर्णित है । इसके प्रवक्ता ब्रह्मा जी है । इसके पठन् से मनुष्यों का उपद्रव शान्त होते तथा शरीर में उत्पन्न विभिन्न रोगों का शमन भी होता है ।[2]

(३) आदित्य हृदयम् —

इसमें भगवन् सूर्य का स्तवन् हृदयरूप में किया गया है । यह स्तोत्र कूर्मपुराण के उत्तरार्ध के अट्ठारहवें अध्याय में ३३-४६ श्लोक तक है । इसके उपदेष्टा व्यास जी हैं । श्रोता ऋषिगण हैं । इस स्तोत्र के पठन् मात्र से सम्पूर्ण रोगों का शमन होता है । मनुष्य के सभी पापों की निवृत्ति भी हो जाती है । यथा —

'प्रोक्तं सूर्यहृदयं ब्रह्मणातु प्रदर्शितम् ।
सर्वपाप प्रशमनं वेदसार समुद्भवम् ।।[3]

१- मार्कण्डेयपुराण - १०७।५-१२ - मनसुख राय मोर क्लाइव रोड, कलकत्ता, १९६२ ।

२- ब्रह्मपुराण - २९। २९-३९

३- कूर्मपुराण उत्तरार्द्ध - १८ । ३३-४६

(४) आदित्य हृदय स्तोत्रम्--

आदित्य हृदयम पुण्य प्रद, जयद और सर्वशत्रु विनाशक है । यह वाल्मीकि रामायण के ६ अध्याय में लंकाकाण्ड के १०७ सर्ग में १- ३१ श्लोकों में वर्णित है । इसके प्रवक्ता अगस्त्य ऋषि तथा श्रोता श्रीरामचन्द्र जी हैं यथा वर्णित है --

'आदित्यहृदय पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षयं परमं शिवम् ।।'[1]

(५) आदित्य हृदय स्तोत्रम् --

भविष्योत्तरपुराण में श्रीकृष्णार्जुन सम्वाद के प्रसंग में १०० श्लोकों में शतानीक सुमन्तु सम्वादात्मक स्तोत्र है । यह शतानीक के प्रति सुमन्तु का कथन है । इसके पढ़ने से समस्त पापों का शमन और सभी मङ्गलों को देने वाला है यथा वर्णित है --

'सर्वमंगल मांगल्य सर्वपाप प्रणाशनम् ।
सर्वरोगप्रशमनमायुवर्धनमुत्तमम् ।।'[2]

(६) दिवाकर स्तोत्रम् --

दिवाकर भगवान् के नाम से अभिहित यह स्तोत्र है । मार्कण्डेयपुराण के १०४ अध्याय में १८ से २६२ श्लोकों में वर्णित है । ३५ से ४६ श्लोकों में इस स्तोत्र के कर्त्री देवमाता अदिति है । अदिति ने दैत्यों से पराजित अपने पुत्रों को देखकर विधिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ किया । इस

१- वाल्मीकि रामायण - ६ अध्याय, १०७ सर्ग में १-३०

२- भविष्योत्तरपुराण - १-१००, बृहत्स्तोत्र रत्नाकर काशी, पृष्ठ १०६ ।

स्तोत्र के ध्यान से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है यथा वर्णित है --

'ध्यायन्तो विनम्र चेतसो भवन्तं ।
योगस्था: परमं पद पयान्ति योगमूला: ।।'[1]

(७) देवकृत सूर्य स्तोत्रम् --

यह स्तोत्र वाराह पुराण के २६ वें अध्याय में १० से १८ श्लोक तक है । इस स्तोत्र के कर्ता देवता लोग हैं । इस स्तोत्र का पाठ करने से सम्पूर्ण इष्ट की प्राप्ति हो जाती है यथा वर्णित है --

'एतां य: पुरुषोभक्त्या उपास्ते सूर्यमर्चयते ।
भास्करश्चैवतस्यासौ फलमिष्टं प्रयच्छति ।।'[2]

(८) ब्रह्माविष्णु शिवकृत सूर्य स्तोत्रम् --

यह स्तोत्र भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व के १५३ अध्याय से २०-८० श्लोक तक है । इस स्तोत्र के पढ़ने से मनुष्य को अचल भक्ति की प्राप्ति होती है यथा स्तोत्र में वर्णित है --

'यदि तुष्टोमम विभोऽनुग्राह्योऽस्मिते यदि ।
अचलां देहि मे भक्तिमात्मनश्चरणे ।।'[3]

(९) ब्रह्मकृत सूर्य स्तोत्रम् --

भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व के सप्तम कल्प के १७४ अध्याय के ३५ वें श्लोक से ४० तक यह ६२ श्लोकों का स्तोत्र है । इस

१- मार्कण्डेयपुराण - १०५ । १८-२९
१०८ । ३५ - ४६

२- वाराहपुराण - ६ । १०- १७ ।

३- भविष्यपुराण - १५३ । २०-८० ।

स्तोत्र के श्रवण तथा पठन से मनुष्य को कीर्ति प्राप्त होती है और जीवनोपरान्त सूर्यलोक में निवास करता है । यह स्तोत्र ब्रह्मा के द्वारा स्तुत्य होने के कारण ब्रह्मकृत सूर्य स्तोत्र नाम पड़ा यथा वर्णित है --

'य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्त स्तवं परम् ।
सहि कीर्तिं परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं ब्रजेत् ।'[1]

(१०) ब्रह्मप्रोक्त सूर्य स्तोत्रम् —

भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व के ७२वें अध्याय के १-१६ तक यह स्तोत्र है । इस स्तोत्र के कर्ता ब्रह्मा जी हैं । इस स्तोत्र के पढ़ने एवं श्रवण से मनुष्य की सभी मनोकामनाओं की पूर्ति होती है । इस स्तोत्र के जपमात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है यथा स्तोत्र में वर्णित है —

'एतज्जप्यं रहस्यं च सन्ध्योपासनमेव च ।
एतेन जपमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते ।।'[2]

(११) ब्रह्मभाषित स्तव —

साम्बपुराण में १४ अध्याय के ५ से ३४ श्लोकों में यह स्तोत्र वर्णित है । इस स्तोत्र के ऋषि ब्रह्मा जी है । जो मनुष्य इस स्तोत्र से भास्कर देव की स्तुति करता है वह अवश्य ही सूर्यलोक को प्राप्त करता है यथा वर्णित है --

'ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवं ये नमस्यन्ति भास्करम् ।
सर्व किल्बिषनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं ब्रजन्ति ते ।।'[3]

१- भविष्यपुराण सप्तकल्पे - १७४ । ३५-४० ।

२- भविष्यपुराण - ७२ । १- १६ ।

३- साम्बपुराण - १४ । ५- ३४ ।

(१२) भानु स्तोत्रम् —

मार्कण्डेय पुराण के १०६ अध्याय में ४८ से आरम्भ होकर ५२ श्लोकों तक यह स्तोत्र वर्णित है । इस स्तोत्र के कर्ता ब्रह्मादि देव हैं । यथा --

'त्वन्नाथ मोक्षिणां मोक्षः ध्येयस्त्वं ध्यानिनां पुर ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डोपवर्तिनाम् ॥'[१]

(१३) महेश्वर कृत सूर्य स्तोत्रम् —

साम्बपुराण के १७वें अध्याय में १ से २२ श्लोकों में यह स्तोत्र वर्णित है । यह २१ श्लोकों का महेश्वर कृत सूर्य स्तोत्र है । इस स्तोत्र के पाठ और ध्यान से कलुषता के भय से मुक्ति मिलती है । यथा स्तोत्र में वर्णन प्राप्य है :—

'चक्षुः पीडां मनः पीडां ग्रहपीडा तथैव च ।
शमयेदेक जप्येन दुःस्वप्नं शमयेत्ततः ॥'[२]

(१४) मित्र कृत सूर्य स्तोत्रम् —

साम्बपुराण के ५ वे अध्याय में १३ से ३७ तक यह स्तोत्र है । इस स्तोत्र का पाठ नित्य करने से वह सूर्यलोक को प्राप्त करता है तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है । यथा --

'य श्चैतद् श्रावयेन्नित्यं यश्चैतच्छृणुयान्नरः ।+
स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥'[३]

१- मार्कण्डेयपुराण - १०६ । ४८- ५२ ।

२- साम्बपुराण - १७ । १ - २२ ।

३- साम्बपुराण - ५ । १३- ३७ ।

(१५) सवितृ स्तोत्रम् —

विष्णुपुराण के तृतीय अंश के ५ वें अध्याय में १४ से २४ तक यह श्लोक है । इसके कर्त्ता याज्ञवल्क्य हैं । इस स्तोत्र की रचना सूर्य से यजुर्वेद के ज्ञान की प्राप्ति के लिए की थी । इस स्तोत्र के पाठ से मनुष्य मेधावी होता है, यथा —

ऋग्यजुः साममूताय त्रयीधाम्ने च ते नमः ।
विभर्ति यः सुरगणानाप्यायेन्दुं स्वरश्मिभिः ।।[१]

(१६) साम्बकृत सूर्यस्तोत्रम् —

साम्बपुराण के २४ वें सर्ग के सप्तम् श्लोक से ३७ तक यह स्तोत्र है । कुष्ठ रोग से आक्रान्त कृष्ण के द्वारा अनुज्ञापित होकर तथा मित्र वन में जाकर साम्ब ने इसी स्तोत्र से सूर्य को प्रसन्न कर कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त की थी यथा —

'पठेदि इव इमं स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नरः ।
नारी वा दुःख शोकक्षमुच्येत शोक सागरात् ।।[२]

(१७) सूर्य कवचम् —

देवी रहस्य के ३३ वें पटल में १- ४५ तक सूर्य कवचात्मक स्तोत्र है । इस स्तोत्र के वक्ता भैरव जी हैं । इस स्तोत्र के पठन से मनुष्य सभी कामनाओं की पूर्ति करता है तथा वैभव को प्राप्त कर मुक्ति पाता है यथा —

'भक्त्या यः प्रपठेत दिव्यं कवचं प्रत्यहं प्रिये ।
इहलोके श्रियं भुक्त्वा देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ।।[३]

१- विष्णुपुराण - तृतीय अंश ५ । १४- २४
२- साम्बपुराण - २४ । ७- ३७
३- देवीरहस्य - ३३ । १- ४५, पृष्ठ ६८३

(१८) त्रैलोक्यमंगल सूर्य कवचम् —

शाक्त प्रमोद के पृष्ठ ८४ में सूर्य कवच है। कवच के वक्ता सूर्य तथा श्रोता साम्ब है। यह बीज मन्त्र कवच है। इससे भूतप्रेतबाधादि की निवृत्ति होती है यथा —

त्रिसन्ध्यमस्यपाणात्कुष्ठादिरोगा: शमं यान्ति।
श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्य विवर्द्धनम् ।।[1]

(१९) सूर्य कवच स्तोत्रम् —

ब्रह्मवैवर्तपुराण के तृतीय खण्ड में के १९ अध्याय में १४ - ४८ तक यह कवच स्तोत्र है। इस स्तोत्र को सुमालिमालि कहें यह कवच स्तोत्र ब्रह्मा ने कहा था। इस स्तोत्र से सभी विघ्नों तथा व्याधियों से मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है, यथा —

सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशं विघ्ननाशनम्।
स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वामुच्यते नात्र संशय: ।।[2]

(२०) सूर्यकवच स्तोत्रम् —

याज्ञवल्क्य रचित बृहत्स्तोत्र रत्नाकर काशी संस्करण के पृष्ठ २ में यह ७ श्लोकों का स्तोत्र है। इसका पाठ करने से मनुष्य रोग मुक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त करता है। यथा --

'सुस्नातोयो जपेत्सम्यग्यो धीते स्वस्थमानस: ।
सरोग मुक्तो दीर्घायु: सुखं पुष्टिं च विन्दति ।।[3]

१- शाक्तप्रमोद बाम्बे सं० २००८,५३१ श्लोक नं०, पृष्ठ ८४

२- ब्रह्मवैवर्तपुराण - पृष्ठ ८ १९। १४- ४८।

३- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, काशी संस्करण, पृष्ठ २, ७ श्लोक ।

(२१) अष्टोत्तरशतसूर्यनाम्ना स्तोत्रम् —

यह स्तोत्र ब्रह्मपुराण में स्वयम्भू ऋषि सम्वाद में ३१ अध्याय में ८ से ४६ तक यह स्तोत्र है । इस स्तोत्र के कर्त्ता ब्रह्मादि ऋषि हैं जो मनुष्य समाहित चित्त वाला होकर सूर्य उदय के समय इस स्तोत्र का पाठ करता है वह पुत्र, पत्नी के साथ धन को प्राप्त करता है । यथा —

'सूर्योदयेय: सुसमाहित: पठेत्सपुत्रदारान्धनरत्न संचयान् ।
लभेत् जातिस्मरतां नर: सदा स्मृतिं च मेधां च सविन्दते पराम् ।।'[1]

(२२) सूर्यमूलमन्त्र स्तोत्रम् —

रुद्रयामलतन्त्र में देवी रहस्य के ३३ वें पटल में ४- २२ तक यह स्तोत्र है । वक्ता भैरव जी हैं । इसका पाठ करने से मनुष्य-सिद्धि प्राप्तकर भूमि पर सभी भोग करता है । यथा --

'भवेद्भोगीभूमौ विभव सहित: कीर्तिं सहित: ।
चरमान्ते विष्णोर्व्रजति परमं धाम सवितु: ।।'[2]

(२३) सूर्यसहस्रनाम स्तोत्रम् —

रुद्रयामलतन्त्र में देवीरहस्य के ३४ पटल में १- १७९ तक श्लोक हैं । वक्ता भैरव जी हैं । इस स्तोत्र के पढ़ने एवं श्रवण से सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है यथा --

श्रृणुयात् य: परं दिव्यं सूर्यनाम सहस्रकम् ।
सभवेत् भास्कर: साक्षात् परमानन्द विग्रह: ।।[3]

१- ब्रह्मपुराणे पृष्ठ १ खेमराजकृष्णदास वाम्बे संस्करण ३१।८ - ४६
२- देवीरहस्य पृष्ठ २०१ श्रीरामचन्द्र काक सम्पादित १९४१ श्रीनगर ३३।४-२२।
३- देवीरहस्य में ३४ । १- १७९

(२४) सूर्यसहस्त्रनाम स्तोत्रम् --

भविष्यपुराण के सप्तम कल्प और शाक्त प्रमोद में १२३ श्लोकों का यह स्तोत्र है। यह स्तोत्र सुमन्तु और शतानिक के मध्य सम्वादात्मक है। इस स्तोत्र के प्रवक्ता सुमन्तु हैं। यथा --

'धन्यं यशस्यमायुष्यं दुष्ट दुःस्वप्न नाशनम्।
बन्धमोक्षकरंचैव भानोर्नामानुकीर्तनम्॥'[1]

(२५) सूर्य स्तवराज स्तोत्रम् --

साम्बपुराण के २५ सर्ग में १२ से २४ तक यह स्तोत्र है। जो मनुष्य प्रातःकाल इसका पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शरीर से आरोग्य और धन, ऐश्वर्य को प्राप्त करता है यथा --

'शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः।
स्तवराजः इतिख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥'[2]

(२६) सूर्य स्तोत्रम् --

भविष्यपुराण के १२८ अध्याय में ३-१४ तक यह ११ श्लोकों का स्तोत्र है। दुर्वासा के शाप से संतप्त हुए साम्ब ने अपने कुष्ठ रोग की विमुक्ति के लिए इस स्तोत्र का पाठ किया था। प्रवक्ता स्वयं सूर्य है। इससे शारीरिक आरोग्य और धन की वृद्धि होती है। यथा --

'साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम्।
प्रीतात्मा भीरुवः श्रीमानः तस्माद्रोगाद्विमुक्तवान्॥'[3]

१- भविष्यपुराण के सप्तम् कल्प और शाक्त प्रमोद में १-१२३ तक
गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित।

२- साम्बपुराण - २५। १२-२४

३- भविष्यपुराण - १२८। ३- १४

(२७) सूर्य स्तोत्रम् —

ब्रह्मवैवर्तपुराण के १२३ अध्याय में ४३ से ५२ तक यह सूर्य स्तोत्र है । कर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु महेश हैं । सकल रोग नाशक, मूक वधिर, कुष्ठरोग के शमनार्थ यह सिद्ध स्तोत्र है । यथा —

नमोनम: सुखर तिग्मतेजसे,
नमोनम: सुखर तेजसाय वै ।
जडान्धमूकान्वाधरान्स कुष्ठान् ।
साश्वि त्रिध्नोध्मान्विविध्नव्रणाकृतान् ।।[१]

(२८) सूर्य स्तोत्रम् —

भविष्यपुराण में १२७ अध्याय के ८-३६ तक सूर्य स्तोत्र है । कर्त्ता साम्ब है, फल सूर्यलोक की प्राप्ति है । यथा --

'यं इदं पठते स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नर: ।
त्रिसप्त शतमावृत्य होमैं वा सप्त रात्रकम् ।।[२]

(२९) सूर्यस्तोत्रम् —

भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व १२३ अध्याय में ६५ से ८३ तक यह स्तोत्र है । कर्त्ता देवता लोग हैं । यथा --

'नमोस्ते रविरूपाय सोमरूपाय तेनम: ।
नमोयजु: स्वरूपायार्थवांगिर से नम: ।।[३]

१- ब्रह्मवैवर्तपुराण - १२३ । ४३- ५२ ।

२- भविष्यपुराण - १२७ । ८ - ३६ ।

३- भविष्यपुराण ब्रह्मपर्व- १२३ । ६५ - ८३ ।

(३०) सूर्य स्तोत्रम् —

मार्कण्डेयपुराण १०७ में १-११ तक है । इस स्तोत्र के सूर्य महात्म्य तथा स्वरूप के श्रवण, पठन से रात्रि एवं दिवाकृत सम्पूर्ण पापों का शमन होता है । यथा —

'आपदं प्राप्य मुच्यते प्राप्नुयाच्च महायश: ।
अहोरात्रकृतं पापमेवच्छमयते श्रुतम् ।।'[१]

(३१) सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् —

महाभारत के वनपर्व में धौम्य युधिष्ठिर के संवाद में यह स्तोत्र समाप्त होता है । इस स्तोत्र को सूर्योदय के समय पठन से मनुष्य धन और रत्न की प्राप्ति होती है । यथा —

'सूर्योदये य: सुसमाहित: पठेत सपुत्रदारान्धनरत्न संचयान् ।
लभेत् जातिस्मरतान्तत: सदावृतिं च मेधां व सन्विन्दते पुमान् ।।'[२]

इस प्रकार सूर्य के विशिष्ट स्तोत्र के अतिरिक्त कुछ सामान्य स्तोत्र भी हैं जिसका परिचय मात्र इस प्रकार है :—

सूर्य के सामान्य स्तोत्र :-

सूर्य के सामान्य स्तोत्रों का संक्षिप्त परिचय निम्न-लिखित है —

१- आदित्य स्तोत्र रत्नवृत्ति:[३] —

अप्पयदीक्षिताचार्य द्वारा रचित यह दुर्लिनाशक है । वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय में पुस्तक संख्या १८१५६ है ।

१- मार्कण्डेयपुराण - १०७ । १- ११
२- महाभारत के वनपर्व - १ - १६
३- अप्पयदीक्षिताचार्य द्वारा रचित वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय

२- रविगणेशचण्डिका स्तोत्रम्[१] —

इस स्तोत्र में एक मात्र सूर्य का ही संकलन है । रोगनाशक है । वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तक संख्या १६७६४ है ।

३- रविस्तोत्रम्[२] —

यह वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तक संख्या १६६६ स्कन्द काशी खण्ड में उपलब्ध है । दु:ख रोगादि का शमन करने वाला है ।

४- सूर्यकवच स्तोत्रम्[३] —

बृहत्स्तोत्र रत्नाकर के काशी संस्करण में श्रीयाज्ञवल्क्य द्वारा रचित है । स्नान के पश्चात इसका जप करने से रोग दूर हो जाते हैं । मनुष्य दीर्घायु होता है ।

५- सूर्य द्वादशनाम स्तोत्रम्[४] —

यह स्कन्द में ४ अध्याय के ४६ सर्ग के ४५-४७ तक श्लोक है । यह सर्वरोग को हरण करने वाला है ।

६- सूर्यनाम सप्तति: स्तोत्रम्[५] --

वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय की पुस्तक संख्या १६२१५ के स्कन्द में ४। ३। ७८-६६ श्लोक हैं । यह सूर्य भगवान् के नामों की सप्तति है जो सभी इष्टों को प्रदान करने वाली है । इसमें सूर्यलोक का वर्णन है ।

१- संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, पुस्तक संख्या १६७६४ ।

२- स्कन्द काशी खण्ड, पुस्तक संख्या १६६६ है ।

३- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, काशी संस्करण

४- स्कन्द - ४। ४६ ।४५-४७

७- सूर्य शतकम्[1] —

मयूर भट्ट द्वारा रचित १०० श्लोकों का यह संग्रह है । यह कुष्ठरोग निवारक है । इसमें सूर्य-रश्मियों तथा रथ के वर्णन के साथ सूर्य माहात्म्य का प्रतिपादन किया गया है ।

८- सूर्य शतकम्[2] —

श्रीकोदण्ड शर्मा कृत `स्तोत्रार्णव` के ५६६ पृष्ठ पर १०७ श्लोक यह स्तोत्र है । इसके पढ़ने से पुत्र, कलत्र का सुख प्राप्त होता है ।

९- सूर्यस्तवराज[3] —

यह भविष्योत्तरपुराण से उद्धृत है तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में पुस्तक संख्या १७७०४ के बंगला लिपि में है । यह सर्व सुखकर है ।

१०- सूर्यस्तव[4] —

वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय की पुस्तक संख्या १७६६४ है । महाभारत से उद्धृत है । यह रक्षाकारक स्तोत्र है ।

११- सूर्यस्तोत्रम्[5] —

ऐतरेय कृत स्कन्द में १। ४३। १७-४४ तक यह स्तोत्र है तथा सर्व अरिष्ट प्रशमन हेतु है ।

१- मयूर भट्ट विरचित - `सूर्यशतकम्` १- १०० ।

२- श्रीकोदण्डशर्मा कृत - `स्तोत्रार्णव`, पृष्ठ ५६६ पर - १०७ श्लोक ।

३- भविष्योत्तरपुराण - वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय १७७०४

४- वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तक संख्या १७६६४, महाभारत से उद्धृत ।

५- ऐतरेय कृत स्कन्द - १। ४३ । १७ -४४ ।

१२- सूर्य स्तोत्रम्[१] —

अर्जुन कृत स्कन्द में ५। ४३ ।५५-६३ तक ३६ श्लोकों का यह स्तोत्र है । सर्व रोग हरण के लिए है ।

१३- सूर्यस्तोत्रम्[२] —

श्रीवासुदेव सरस्वती रचितम् `वृहत्स्तोत्ररत्नाकर` के काशी संस्करण २६८ पृष्ठ में है । इससे इष्ट की प्राप्ति होती है ।

१४- सूर्याष्टकम्[३] —

यह स्तोत्र ११ श्लोकों का है । वृहत्स्तोत्र रत्नाकर के काशी संस्करण में संकलित है । स्त्रियों को तेल, मधुमासादि का परिहार कर रविवार के दिन इस स्तोत्र का पाठ करने से सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।

१५- सूर्याष्टकम्[४] —

श्री पं० रघुनाथ शर्मा के द्वारा रचित वृहत्स्तोत्र रत्नाकर के काशी संस्करण में मुद्रित है । यह स्तोत्र त्रैकालिक सन्ध्याओं में पठनीय है ।

१६- सूर्याष्टकम्[५] —

आचार्य शंकर द्वारा रचित १ से ६ तक है । पाठ करने से सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो जाती है ।

१- अर्जुन कृत स्कन्द ५ । ४३ । ५५-६३

२- श्रीवासुदेव सरस्वती रचित वृहत्स्तोत्ररत्नाकर

३- `वृहत्स्तोत्र रत्नाकर` काशी संस्करण

४- रघुनाथ शर्मा द्वारा `वृहत्स्तोत्ररत्नाकर`, काशी संस्करण ।

५- शंकर द्वारा रचित `वृहत्स्तोत्ररत्नाकर`, काशी संस्करण ।

(१७)-सूर्याष्टकम्[१] --

वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तक संख्या २०५१८ में संगृहीत है ।

१८- सूर्याष्टोत्तरशतनाम्[२] --

स्कन्द ५। ४६ । १-१६ नारायण कृत यह १६ श्लोकों का संग्रह है । यह इष्ट सिद्धियों की प्राप्त हो जाती है ।

१६- सूर्याष्टोत्तरशतनाम्[३] --

महाभारत के अरण्य पर्व में संगृहीत है । वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय की पुस्तक संख्या १६६८४ है । यह सभी पापों का शमन करने वाला है ।

२०- सूर्यार्थिवशीकम्[४] --

यह स्तोत्र नवीनाह्निक सूत्रावल्यामन्त्र से मुद्रित है । इस स्तोत्र में सूर्य की महिमा का वर्णन किया गया है,जो व्यक्ति तीनों कालों में पढ़ता है वह सौभाग्यवान, धन और पुत्र को प्राप्त करता है ।

२१- सूर्यार्यास्तोत्रम्[५] --

१२ श्लोकों का यह स्तोत्र है । श्रीयाज्ञवल्क्य रचित बृहत्स्तोत्ररत्नाकर १११ पृष्ठ में है । इसके पाठ से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।

१- वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तक संख्या २०५१८ ।

२- स्कन्द ५। ४६ । १-१६ नारायण कृत ।

३- महाभारत के अरण्यपर्व, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय १६६८४ है ।

४- नवीनाह्निकसूत्रावल्यामन्त्र मुद्रित है ।

५- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, १११ पृष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्य रचित ।

२२- सूर्य चन्द्रमसौ स्तोत्रम्[१]—

वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तक संख्या १६६४७ में है । यह सम्पूर्ण रोगों का हनन करने वाला है ।

२३- सूर्यप्रातः स्मरण स्तोत्रम्[२] --

स्तोत्ररत्नावली गीता प्रेस, गोरखपुर से मुद्रित पृष्ठ संख्या २८५ पर है । यह ४२ श्लोकों का स्तोत्र है । सर्व व्याधियों का हरण करने वाला है ।

२४- सूर्यमण्डलाकाष्टम्[३] —

स्तोत्ररत्नावली के पृष्ठ संख्या २४८ पर १३ श्लोकों का स्तोत्र है । इसी स्तोत्र के पाठ से सभी पापों का नाश हो जाता है ।

२५- सौरसप्तार्या स्तोत्रम्[४] —

वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तक संख्या २०११५ में है । यह स्तोत्र सभी सिद्धियों को देने वाला है ।

२६- सूर्योपनिषद् - गायत्री छन्द है, आदित्य देवता है, ब्रह्मा ऋषि हैं।
२६- चाक्षुषोपनिषद् - गायत्री छन्द है, सूर्य देवता है, अहिर्बुध्न्य ऋषि है। नेत्ररोग की निवृत्ति के लिए इसका जप किया जाता है।

१- वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तक संख्या १६६४७

२- स्तोत्ररत्नावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ २८५

३- स्तोत्ररत्नावली, पृष्ठ २४८

४- वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तक संख्या २०११५

तृतीय अध्याय

सूर्य की विशिष्ट स्तुतियां

धर्म के अन्तर्गत एक ओर तो दिव्य तथा अलौकिक शक्तियों के प्रति मनुष्य की धारणाएं बनती रहीं वहीं दूसरी ओर इन शक्तियों पर निर्भर मानव कल्याण की भावनाएं जो विभिन्न उपासना पद्धतियों द्वारा व्यक्त हुईं। यह अभिव्यक्ति समस्त प्रकृति की चेतन सत्ताओं का स्रोत सूर्य भगवान् है। पौराणिक साहित्य में सूर्य अत्यन्त प्रभावशाली देव कहे गये हैं। क्योंकि सूर्योपासना की विभिन्न पद्धतियों ने पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण किया है। इस कारण सृष्टि के नियामक रूप में अनेक देवी-देवताओं के प्रति त्रिलोक में अपने को समाहित करके त्रिलोक की नियन्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करने की उत्कट अभिलाषा से उपास्य अनुकम्पा के लिए सूर्य स्तुति एवं सूर्योपासना की गई।

इन स्तुतियों में सूर्य की निर्गुण निराकार के रूप में एवं सगुण रूप में उपासना की गई है। भगवान् भुवन भास्कर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अचिन्त्य शक्तियों के प्रवर्तक हैं। इन कतिपय स्तुतियों और प्रार्थनाओं के माध्यम से भी मानव समुदाय के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए सूर्य की महिमामयी गाथा का बखान है। त्रैकालिक संध्या में, आचमन में, सूर्य की बल-बलि में, सूर्यार्घ्यदान में तथा सूर्य के प्रणाम आदि में सूर्य की उपासना ओत-प्रोत है। इस प्रकार परमात्म स्वरूप सब का बीजरूप और सर्वजगत् का उत्पादक ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्य देव हैं।

<u>सूर्य की विशिष्ट स्तुतियों का विवेचन —</u>

पुराणों में वर्णित सूर्य की स्तुतियों का विवरण विशद है क्योंकि इनमें वर्णित महामहिम भुवन भास्कर की उत्पत्ति न केवल विचित्र ही है अपितु स्तुतियों के माध्यम से वैज्ञानिक आयामों का रूपात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है। इन स्तुतियों में आरोग्य कामना, निर्धनतानिवारण और यश, मोक्ष की प्राप्ति आदि का वर्णन है। परमप्रिय, इष्टदेव भगवान्

सूर्य के प्रति की गयी स्तुतियां इस प्रकार वर्णित हैं —

(१) आदित्य हृदयस्तोत्र

वाल्मीकि रामायण के 'युद्धकाण्ड' के छठें अध्याय के १०७ वें सर्ग में सूर्य देव के प्रभाव का वर्णन श्री अगस्त्यमुनि ने युद्ध में शत्रुओं के विनाश के लिए चिन्तित रामचन्द्र से इस प्रकार कहा । अनुष्टुप छन्द में निबद्ध इस स्तोत्र का देवता सूर्य भगवान है अगस्त्य ऋषि हैं ।

'महाबाहो राम ! प्राचीन सनातन गोपनीय श्रेष्ठ स्तोत्र सुनो, जिसके जप से तुम युद्ध में अपने समस्त शत्रुओं पर विजय पाओगे । यह आदित्य हृदय, शत्रु का नाशक, विजय प्रदान करने वाला, सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला, आयुवर्धक है । यह समस्त देवताओं के आत्मा हैं, यह तेजस्वी देव या असुर समस्त लोकों को अपनी किरणों से रक्षा करने वाले हैं । यह सृष्टि कर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु, प्रलयकर्ता शिव, वायु को उत्पन्न करने वाले प्रजापति, कर्म साक्षी, काल सर्वान्तियामी यम, चन्द्रमा, सृष्टिमूल जल के स्वामी वरुण हैं । प्रजा को धारण करने वाले ऋतु कर्ता, प्रभा के आकार, आदिति के पुत्र, किरण धारण करने वाले गभस्ति, प्रकाशक, सुवर्ण सदृश भानु हैं ।

सूर्य भगवान् स्वर्णिम रंग वाले, सप्ताश्व वाले हैं । अन्धकार को दूरकरने वाले, कल्याण के उद्गम स्थान, मार्तण्ड, अंशुमान् हैं । रीति का नाश वाले, आकाश के स्वामी, अज्ञान के नाशक, ऋग् , यजुर्, साम वेदों के ज्ञाता हैं एवं तद्रूप हैं । समस्त सृष्टि के प्रवर्तक, चैतन्यता प्रदान करने वाले हैं । जगत् निर्माण के संकल्प वाले, किरणों के मण्डल वाले, सबको मृत्यु तक पहुंचाने वाले त्रिकालदर्शी, सबके उत्पत्ति के कारणभूत हैं । नक्षत्र, ग्रह तारागणों के स्वामी हैं ।

१- वाल्मीकि रामायण, छठां अध्याय - १०७ ।१-३१ तक ।

ऐसे सर्वशक्तिमान देवता की अनेकधा स्तुति कर नमस्कार करते हुए ऋषि का कथन है --

'आकाश के ज्योतिगणों के स्वामी, जयस्वरूप तथा विजय और कल्याण के दाता, आनन्दस्वरूप, सहस्त्रकिरणों से सुशोभित आदित्य को नमस्कार है । अभक्तों के लिए उग्रस्वरूप वाले, वीर, शीघ्रगामी, कमलों को विकसित करने वाले, प्रचण्ड तेजधारी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव के स्वामी सूर्य को नमस्कार है । अज्ञान एवं अन्धकार के नाशक, शत्रु का नाश करने वाले, कृतघ्नों के नाशक, तपाये हुए स्वर्ण के समान, तम के नाशक, प्रकाशस्वरूप, जगत् के स्वामी को नमस्कार है । नमस्कार करने के पश्चात् श्रीराघव जी के प्रति इस स्तुति की फलश्रुति का कथन है —[1] ' हे राघव । विपत्ति में, कष्ट में, दुर्गम मार्ग में तथा और किसी भय के अवसर पर जो कोई पुरुष इन सूर्य देव की स्तुति करता है उसे दु:ख नहीं भोगना पड़ता है । इसलिए देवाधिदेव जगत्पति सूर्य की एकाग्रचित्त होकर पूजन करो । इस आदित्य हृदय का तीन बार पाठ करने से युद्ध में विजय मिलेगी ।'

ऋषि के आज्ञानुसार श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के वधार्थ, सूर्य को देखकर आदित्य हृदय का तीन बार आचमन करके तीन बार जप किया ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन में सूर्य देव की सर्वशक्तिसम्पन्नता एवं स्वरूप का वर्णन है ।

१- एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कांतारेषु भयेषु च ।

कीर्तयं पुरुष: कश्चिन्नावसीदति राघव ॥

- वाल्मीकि रामायण १०७ । २५

(२) मित्रकृत सूर्य स्तोत्र

अनुष्टुप् छन्दोबद्ध इस स्तोत्र के देवता श्री सूर्य नारायण हैं। साम्बपुराण के ५ वें अध्याय में १३ से ३७ श्लोकों में विश्वा मित्र ऋषि द्वारा वर्णित स्तोत्र इस प्रकार है --

`भगवान् भुवन भास्कार अत्यन्त सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल रूप वाले, ध्रुव के समान हैं, यह आत्मारूप में सत्, रजस्, तमस् गुणों से पृथक् पुरुष हैं। ब्रह्माण्ड उत्पत्ति स्थल होने से हिरण्यगर्भ नाम वाली हैं। प्राणधारी जीव के साक्षीभूत अन्तरात्मरूप हैं। सूर्य - सगुण, निर्गुण, विश्वरूप ज्ञानरूप सर्वज्ञ हैं। प्रलय काल में एक रूपवाले, सृष्टिकाल में बहुसंख्यक रूप वाले हैं। यह आत्मा रूप अक्षय न नापने योग्य असीमित सर्वगामी हैं। त्रिगुणात्मक सृष्टि के उद्भूत, अव्यक्त और व्यक्त भावों में व्याप्त रहने वाले हैं। इन्द्रियों और इन्द्रिय विषयों से परे हैं, बुद्धि रूप में स्मरणीय, एकात्मा द्वारा त्रैलोक्य में प्रवासी जीवों के विश्वास कर्मों में कभी लिप्त न रहने वाले हैं। सर्वतोमुख विश्वाक्ष ~~विश्वकर~~, विश्वशिरस, विश्वश्रोत होने के कारण सर्वत्र व्याप्त है। इन्द्रिय गुणों को उद्भूत करने वाले, समस्त जीव, स्थावर जंगम चराचर जीवों में नित्यता का उद्बोध न करने वाले हैं। देव और पितृ सम्बन्धी धर्म कार्यों में प्रथम पूजित हैं।`

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन में अनेकधा स्तुत्य वचनों में <u>सूर्य की सर्वशक्तिमयता एवं स्वरूप</u> का वर्णन है। अन्त में फलश्रुति का वर्णन करते हुए विश्वामित्र ऋषि का कथन है --

`सूर्य देव की नित्य पूजा करने वाले को गति और ज्ञान प्राप्त होता है। सूर्योपासक ~~स्वर्गलोक~~ मृत्युपरान्त स्वर्गलोक को जाता है। राग से विमुक्त होता है उसकी सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण होती हैं।`[1]

१- जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गति मिष्टांतथैव च।
रोगेण मुच्यते ध्यानमिदं च पठते यदि।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशय: ॥ - साम्बपुराण-५।३५-३६

(३) सूर्याष्टक स्तोत्र

साम्ब पुराण में साम्ब द्वारा वर्णित १ से ११ पद्य में यह स्तोत्र है । यह स्तोत्र अनुष्टुपछन्द में निबद्ध है । इनके देवता भगवान् सूर्य हैं ।

सूर्य भगवान् आदिदेव, दिवाकर, प्रभाकर, कश्यपात्मज, सर्वलोक के पितामह, महान् तेज के प्रकाशक, जगत् कर्ता, महापापहारी, ज्ञान, विज्ञान तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं, सम्पूर्ण लोकों के अधिपति, जगत् के स्वामी इत्यादि रूप वाले सूर्य को नमस्कार है ।[१]

यह भगवान् प्रचण्ड तेजस्वी, त्रिगुणमय, ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप वाले हैं । वायु और आकाश के स्वरूप वाले, बढ़ते हुए तेज के पुञ्ज वाले हैं, वीर सूर्य को प्रणामाञ्जलि समर्पित है ।

इनके ध्यानरूप का वर्णन करते हुए साम्ब ऋषि का कथन है —

सूर्य भगवान् बन्धूक, पुष्प के समान रक्तवर्ण वाले, हार तथा कुण्डल से विभूषित, एक चक्रधारी, वेगवान् सप्ताश्वों वाले रथ पर आरूढ़ हाथ में श्वेत कमल धारण करने वाले हैं ।

इस प्रकार स्तुति व ध्यान के द्वारा सूर्य को नमस्कार करते हुए फलश्रुति को पाठक स्तोता के लिए फलश्रुति का विधान किया गया है --

सूर्याष्टक का नित्य पाठ एवं जप करने से व्यक्ति को ग्रहपीड़ा से मुक्ति तथा पुत्र की प्राप्ति होती है । दरिद्र को धन प्राप्त होता है, जो

१- आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते ।।
-- साम्बपुराण, श्लोक १ ।

तैल, मधु, मांस का रविवार के दिन प्रयोग नहीं करता वह रोग, शोक, दारिद्रय से रहित होकर सूर्य लोक को जाता है और जो रविवार के दिन मधुपान तथा मांस का भोग करता है वह जन्म-जन्मान्तर तक दारिद्रय और सप्त जन्मों तक रोगी होता है।[1]

(४) ब्रह्मकृत सूर्य स्तोत्र

भविष्यपुराण में ब्रह्म पर्व के सप्तमी कल्प मे १७४ वें अध्याय में ३५ से ४० श्लोकों में ब्रह्मा द्वारा प्रोक्त यह स्तोत्र वर्णित है। इस स्तोत्र के देवता भगवान् श्री सूर्य हैं यह अनुष्टुप छन्द में निबद्ध है।

भगवान् भुवन भास्कर षडैश्वर्य सम्पन्न, भग नाम वाले, शान्त चित्र से युक्त, देवों के मार्ग प्रणेता, देवदेवेश, शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु, दिवाकर नाम वाले तथा ईशों के ईश हैं। ये अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, देवेश्वर, देवरत, और विभावसु नाम से अभिहित हैं।

देवों के स्वामी भगवान् विष्णु ने विष्णुत्व पद को प्राप्त किया, शंकर भी दिवाकर के पूजन से जगन्नाथ व महादेवत्व पद को प्राप्त किया। सहस्त्र नेत्रों वाले इन्द्र ने इन्द्रत्व को प्राप्त किया।[2] मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व,

---

१- सूर्याष्टक पठेन्नित्यं ग्रहपीडा प्रणाशनम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान्भवेत ।।
- साम्बपुराण, श्लोक ६

२- पूजयित्वार विभकस्त्वा ब्रह्माब्रह्मत्वमागत: ।
गोपतिं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।
देव मार्ग प्रणेतारं प्राणतो स्मिरविसदा ।
अत्र भगवान्सूर्यो ब्रह्मविष्णु शिवादीनां प्रेरकिता ।।
- भविष्यपुराण ब्रह्म पर्व के सप्तमी कल्प में
१७४। ३५-३६

पिशाच, उरग तथा राक्षस वर्ग सभी ने भगवान सूर्य का पूजन किया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन में अनेकधा स्तुति करते हुए सर्वदेवमय रूप वाले सूर्य को नमस्कार किया गया है । इस स्तोत्र की फलश्रुति का वर्णन इस प्रकार किया है --

आपत्तिग्रस्त होने पर सूर्य की पूजा करने वाले को मुक्ति प्राप्त होती है । सूर्य की पूजा करने वाले परोपकारपरायण, विषयों में रहित, ब्रह्मत्व एवं कीर्ति को प्राप्त करता है ।

(५) सवितृ स्तोत्र -

विष्णुपुराण में तृतीय खण्ड के ५ वें अध्याय में १४ से २४ श्लोकों में वर्णित है । याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद के ज्ञान की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र से सूर्य का स्तवन किया । यह अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है । इस स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् हैं ।

सूर्य भगवान् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के कर्त्ता, त्रिधाम वाले, कला काष्ठनिमेषादिकाल का ज्ञान देने वाले, जल वृष्टि करने वाले भूत भविष्यत् वर्तमान जगत् के कारणरूप हैं । जगत् के पति हैं तिमिर का नाश करने वाले, त्रिकाल रूप वाले, सत्व धाम वाले, सत्कर्म के लिए जीवों को प्रेरित करने वाले, उदित होकर लोक में योग क्रिया का ज्ञान देने वाले, शुद्धात्मा, पवित्र रूप वाले, संसार द्वार से विमुक्ति दिलाने वाले हैं ।

सु सौषुम्ण किरण से परम तेज रूप वाले भास्कर अग्नि, सोम, विष्णु, परमाक्षर रूप वाले, सुर और गणों के पति, अपनी रश्मियों से जगत् को प्रकाशित करने वाले, अपनी रश्मियों से चन्द्रमा को रोशनी देने वाले, मृत पितृ को तर्पण करने वाले, उदित काल में देवों को ज्ञान देने वाले सूर्य भुवलोक के वरुण के समान सूर्य को नमस्कार किया है ।

सविता, सूर्य, भास्कर, विवस्वान आदित्य आदि नामों से

स्तुत्य हैं । सूर्य भगवान् हिरण्यमय रथ पर आरूढ़ होकर जगत् का कल्याण करते हैं ।[1] इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है -

'जो इस स्तोत्र का नित्य पाठ करता है वह परम तेजस्वी, मेधावी व सर्वज्ञ होता है ।'

ऐसे सर्व देवमय सूर्य की अनेकधा स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया है ।

(६) आदित्य हृदय स्तोत्र[2]

कूर्मपुराण के उत्तरार्द्ध में १८ वें अध्याय के ३३ से ४६ तक श्लोकों में सूर्य भगवान् की स्तुति है । अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं । सूर्य भगवान् इसके देवता हैं । व्यास ऋषि ने इस स्तोत्र का वर्णन इस प्रकार किया है । इसके श्रोता ऋषिगण हैं ।

सूर्य भगवान् स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, भर्गरूप, सनातन रूप वाले हैं । हिरण्य बाहु वाले, हिरण्यपति, अम्बिकापति, ब्रह्म ज्योतिरूप हैं । रस, गन्ध

१- नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ।। २३
हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः ।
वहन्ति भुवनालोकं च सूर्य तं नमाम्यहम् ।। २४
- विष्णुपुराण ५ । २३-२४

२- त्वमेव ब्रह्मपरमभापो ज्योति रसोऽमृतम् ।
भूर्भुवःस्व स्त्वमोंकारः शर्वो रुद्रः सनातनः ।। ३७
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः ।
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् ।। ४३
- कूर्मपुराण १८ । ३३ -४६ ।

रूप वाले, वज्र को हाथ में धारण करने वाले, त्र्यम्बरूप वाले, विरूपाक्ष हैं। यह सूर्य महान् परमेश्वर, ऊँ, भू, भुवं के स्वामी विश्व को सदा सत् का मार्ग दिखाने वाले हैं। शरणागतों को शरण में लेने वाले, नित्य अन्धकार का नाश करने वाले, परम अमृत के समान, विश्वरूप वाले, पिनाकी, पशुपति, भीम,नर, नारी सभी का सृजन करने वाले, उग्र रूप वाले परमनिष्ठावान्, नीली गर्दन वाले सूर्य की अनेकधा स्तुति करते हुए नमस्कार किया है। इस स्तोत्र की फलश्रुति यथा वर्णित है --

जो व्यक्ति पूर्व दिशा में स्थित होकर उदयकाल में इस स्तोत्र को जपता है वह सम्पूर्ण रोगों से विमुक्त हो जाता है तथा उसकी सम्पूर्ण पापों की निवृत्ति होती है।

(७) <u>सूर्य कवच स्तोत्र</u> -

बृहत्स्तोत्ररत्नाकर में याज्ञवल्क्य विरचित यह सूर्य कवच स्तोत्र इस प्रकार है --

यह सूर्यकवच स्तोत्र शरीर के रोग को दूर करने वाला, सर्वसौभाग्य-दायक, दिव्य एवं शुभदायक है।

इस स्तोत्र में प्रथम सूर्यस्वरूप का वर्णन और सूर्य के देदीप्यमान तेजस से सर्वाङ्ग की रक्षा और विश्रुत नामों का कीर्तन है।

देदीप्यमान मुकुट और सुशोभित कुण्डल वाले, सहस्त्र किरणों की राशि वाले, प्रचण्ड तेज वाले सूर्य भगवान् का आह्वान किया है।

यह भगवान् सूर्य शिर में विराजमान, मस्तक को कान्ति प्रदान करने वाले हैं। द्युतिमान् भुवन भास्कर नेत्रों की रक्षा करने वाले, घ्राण की रक्षा करने वाले, जिह्वा में प्रसन्नतापूर्वक निवास करने वाले, कण्ठ में सुर देने वाले, स्कन्ध, कलाइ पैरों तथा सर्वाङ्ग की रक्षा करने वाले हैं।

भास्कर, वासरेश्वर, दिनकर, वेदवाहन, प्रभाकर, जनप्रिय, द्वादशात्मा वाले, सकलेश्वर इत्यादि नामों वाले भगवान् सूर्य स्तुत्य हैं।

इस स्तोत्र को करने की विधि इस प्रकार वर्णित है —

सूर्यरक्षात्मक स्तोत्र को भोजपत्र में लिखकर दाहिनी भुजा में धारण किया जाता है। सर्व सिद्धियां उसके वश में हो जाती हैं।

इस स्तोत्र में फलश्रुति यथा वर्णित है --

स्नान करके स्वस्थ मन से जो सूर्य के सम्मुख अधिष्ठित होकर जप करता है। वह रोग से मुक्त होकर, दीर्घायु, सुख और सन्तुष्टि को प्राप्त करता है।[१]

(८) सूर्य स्तोत्र -

भविष्यपुराण के सप्तम कल्प में १६० से १७० श्लोकों में श्रीकृष्ण ने इस स्तोत्र का वर्णन इस प्रकार किया है। इस स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् हैं।

द्वादशादित्य नाम वाले भगवान् सूर्य स्वयं आदि रूप होने के कारण आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, दिनकर इत्यादि नामों से अभिहित हैं।

१- सूर्यरक्षात्मकं स्तोत्रं लिखित्वा भूर्जपत्रके।
दधाति यः करेतस्य वशगाः सर्वसिद्धयः॥ ६
सुस्नातोयोजपेत्सम्यग्योऽधीते स्वस्थमानसः।
सरोगमुक्तो दीर्घायुः सुखं पुष्टिं च विन्दति॥ ७

- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, पृष्ठ १४४

त्रिमूर्ति, त्रिलोचन, सहस्त्रकिरणों के राशि, अपनी किरणों से जगत्प्रकाशित करने वाले, हरित एवं वेगवान अश्वों से सुशोभित रथ वाले, द्वादशात्मा वाले सूर्य को नमस्कार किया है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है --

द्वादशादित्य के नाम वाले सूर्य स्तोत्र का नित्य जप करने वाले का दु:खों का नाश, कुण्ठ, दरिद्रता का हरण, सर्वकामनाओं का प्रवर्धन होता है । सर्व प्रकार के सौख्य, आयु, आरोग्यता तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ।

(६) सूर्यस्तवराज स्तोत्र[१] -

साम्बपुराण के २५ वें सर्ग में १२ श्लोक में सूर्यनारायण के इक्कीस नामों वाला यह पवित्र एवं शुभ स्तोत्र को साम्ब ने इस प्रकार कहा है । यह अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है । वशिष्ठ ऋषि हैं । सूर्य भगवान् इस स्तोत्र के देवता हैं ।

यह स्तवराज कल्याणमय, परम सनातन, गोपनीय नामों वाला, सर्व स्तुतियों का सारभूत है ।

सूर्य भगवान् स्वयं महेश्वर, त्रिलोक के स्वामी, ब्रह्मरूप वाले, श्रीमान् हैं । कल्याण के उद्गम स्थान, शत्रुओं का नाश करने के लिए मार्तण्ड

१- गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेव नमस्कृत: ।
एकविंशतिरित्येष स्तव: इष्ट: सदा मम ।।
श्रीरारोग्यकरश्चैव धनवृद्धियशस्कर: ।
स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुत: ।।
- साम्बपुराण, २५ अध्याय में । १२

के रूप में उद्भूत, भासित होने वाले भास्कर, लोगों में रव करने वाले रवि नाम से विख्यात, विकर्तन करने वाले विवस्वान् हैं ।

सूर्य भगवान् अन्धकार का नाश करने वाले, संसार के नेत्र के समान, अपनी दीप्तिमान किरणों से जगत् को प्रकाशित करने वाले हैं । लोक में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहने वाले, सर्वलोक को ऊष्मा प्रकाश प्रदान करने वाले, किरण धारण करने वाले गभस्तिमान्, सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करने वाले, दु:खों को दूर करने वाले हैं ।

ऐसे सर्वशक्तिमान् सूर्य देवता की अनेकधा नामों से स्तुति कर सर्वदेवताओं ने नमस्कार किया है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है --

सूर्य के उदय एवं अस्त दोनों संध्याओं में सूर्य के समक्ष जप करने से शारीरिककर्मजनित पापों का नाश हो जाता है । यह अभिलषित फल को देने वाला, शरीर को आरोग्य करने वाला, धन व ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला स्तोत्र है ।

(१०) <u>त्रैलोक्य मङ्गल कवच स्तोत्र</u>[१] -

शाक्त प्रमोद में १८ श्लोकों में वर्णित इस स्तोत्र को कृष्ण पुत्र

---

१. त्रैलोक्य मंगल कवच स्तोत्र --

१- त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।
यज्ज्ञात्वा मंत्रवित्सम्यक् फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।।
कुष्ठादिरोग शमनं महाव्याधि विनाशनम् ।
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान्भवेत् ।।

- बृहत्स्तोत्र रत्नाकर में पृष्ठ संख्या १४३ ।

साम्ब को सूर्य भगवान ने स्वयं इस प्रकार कहा । यह अनुष्टुप् छन्द में प्रणीत है । सर्वदेव नमस्कृत सूर्य इसके देवता हैं ।

सूर्य भगवान् का अद्भुत, श्रेष्ठ तथा अत्यन्त गोपनीय अभिलाषाओं का फल देने वाला यह त्रैलोक्य मङ्गल कवच स्तोत्र है ।

इस कवच को धारण कर शिव जी गणों के पति हुए । पढ़ने और धारण करने वाले विष्णु जी प्रजाओं के पालक हुए । इसको धारण कर इन्द्र आदि सभी देव सर्व ऐश्वर्य को प्राप्त हुए । इस अष्टाक्षर वाले बीज मन्त्र वाले कवच से नेत्र, शरीर, मुख, पाद, हृदय, मस्तक तथा उदर इत्यादि की रक्षा की जाती है । शिवाग्नि है वामाक्षी बिंदु से भूषित है ।

इस कवच की विधि यथा वर्णित है --

इस कवच के मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर रविवार, संक्रान्ति के दिन विशेषकर सप्तमी तिथि को तीन धातु से बने हुए कवच को दाहिनी भुजा में या गले में धारण करने से सूर्यवत् प्रभावशाली व रक्षा होती है ।

त्रैलोक्य मङ्गल कवच की फलश्रुति इस प्रकार व्याख्यायित है --

इस कवच का तीन संध्याओं में जप करने से पिशाच, यक्ष भूत-प्रेतादि की निवृत्ति होती है । यह लक्ष्मी, यश, धन, आयुवर्धक है तथा कुष्ठादि रोगों का शमन करने वाला, संकट में रक्षा करने वाला है ।

(११) <u>महेश्वर कृत सूर्य स्तोत्र</u>[१] -

साम्बपुराण के १७ वें अध्याय में १ से २२ श्लोकों

१- चक्षुः पीडां मनः पीडां कुष्ठपीडां तथैव च ।
शमयेदेकवर्षेन दुःस्वप्न शमयेत्तः ॥
- साम्बपुराण १७। २१-२२

में महेश्वर भगवान् कृत सूर्य की स्तुति इस प्रकार वर्णित है। अनुष्टुप् छन्द में प्रणीत इस स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् हैं। यह स्तोत्र शिव और सूर्य की एकात्मकता को प्रकट करता है।

समस्त पापों का नाश करने वाले, देवताओं, दानव, यक्षों, ग्रहों, नक्षत्रों का विधान करने वाले, तेज के पुंज भगवान सूर्य की स्तुति शंकर भगवान् ने इस प्रकार की —

सूर्य नारायण द्युलोक में स्थित, किरणों के अग्रभाग से सर्व दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, अपनी मरीचियों से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करने वाले, चार युगों का अन्त करने वाले कालाग्नि रूप वाले, दुष्प्रेक्ष्य, प्रलय करने वाले योगेश्वर रूप वाले, अरूपी आकाश में विचरित छन्दरूपी अश्वों द्वारा अस्त और उदय की क्रिया में प्रवीण, सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करने में रत रहने वाले, प्रदीप्त किरणों से जीवों को प्रकाशित करने वाले हैं। ऋषियों के अग्निहोत्र को प्राप्त करने वाले, यज्ञों का विधान करने वाले, वेदों को संरक्षित करने वाले सूर्य को बारम्बार नमस्कार है।

सूर्य स्वयं ही आदित्य, भास्कर, सूर्य, सविता, दिवाकर, पूषा, भानु, स्वर्भानु नामों से अभिहित हैं। इनका रूप अविनाशी, गोपनीय, अनन्त है। यह मोक्ष के द्वार हैं। अमृत तुल्य पवित्र तीर्थ हैं। सत्य रूप वाले तेजों के तेज हैं। इस स्तुति में सूर्य को सर्वत्र सर्वदेवमय कहकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, प्रजापति कहा गया है। सम्पूर्ण विश्व की रचना के कारणभूत, देवताओं, दानव, यक्ष, ग्रह, नक्षत्रों की उत्पत्ति स्थल वाले, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी पर्वत, समुद्र, नवग्रहों की रचना वाले, चन्द्रमा को कान्ति प्रदान करने वाले, महौषधि के उत्पत्ति स्थान वाले सूर्य की अनेकधा स्तुति की है।

इस प्रकार सूर्य का प्रकाशमय, विश्वस्वरूपमय, व्यक्त जीवों में धर्म के प्रवर्तकमय रूप, ईश्वरीमय विभूति को धारण करने वाले सूर्य को प्रणाम किया है।

इस स्तोत्र में फलश्रुति यथावर्णित है --

एकबार जप करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है, नेत्रपीडा, मनपीडा, ग्रहपीडा का नाश, दु:स्वप्नों का शमन होता है। इस स्तोत्र के पढ़ने या सुनने मात्र से ही पाप एवं महान संकट से मुक्त हो जाता है।

(१२) साम्बकृत सूर्य स्तोत्र[१] -

साम्बपुराण के २४ वें अध्याय में ७ से ३४ श्लोकों में सूर्य स्तुति के प्रणेता कृष्ण पुत्र साम्ब हैं। कुष्ठ रोगी साम्ब ने शाप से विमुक्ति के लिए इस स्तोत्र का स्तवन किया। अनुष्टुप् छन्द में बद्ध सूर्य स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् हैं। यथा --

सूर्य नारायण त्रैलोक्य के नेत्र वाले, परमात्म स्वरूप, प्रजापति, देदीप्यमान पुरुष हैं। मण्डल में व्याप्त अग्नि रूपवाले, तेजस्वी, सहस्त्र-किरणों से जगत् को प्रकाशित करने वाले, द्वादशरूप वाले दिवाकर नाम से विख्यात, संहार और उत्पत्ति के कारण, महायोगी, मण्डलाकार कुम्भ रूपी प्रकाश से जगत् का कल्याण करने वाले हैं। जन्म, मरण से मुक्त लक्षण वाले स्वयं धाता रूप में स्थित हैं। तीव्र दृष्टि के कारण श्रेष्ठतम देवतारूप में वर्णित, स्वधामृत से समस्त जीवों का पोषण करते हुए विभावसु, अपनी करुणा से सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं। जीवों के उद्गम बिन्दु होने के कारण आदित्य नाम से अभिहित हैं।

१- का मे शक्तिः तव स्तोतुं आर्तोऽहं रोगपीडितः।
स्तूयसे त्वं सदादेव ब्रह्मा विष्णु शिवादिभिः ॥

- साम्बपुराण २४। ७-३४

सूर्य अजर, अव्यय, शुक्ल, दिव्य, ब्रह्मरूप, हरितवर्ण वाले तथा मन के समान वेगगामी अश्वों से युक्त हैं। सूर्यमण्डल की तीव्र रश्मियां पृथवी को पूर्णता प्रदान करती है। सूर्य भगवान् स्वयं अचिन्त्य रूप वाले विष्णु हैं, रुद्र, महेन्द्र, वरुण, कुबेर तथा साक्षात् महादेव रूप से सर्वत्र व्याप्त है। ऋक्, यजुष्, साम, समूह में स्थित रूप वाले हैं। आकाश, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य के उत्पत्तिस्थल हैं। भिन्न-भिन्न म्लेच्छ जातियों और पशुयोनि में उत्पन्न जीवों का पोषण करने वाले हैं। ऐसे सूर्य को बारम्बार नमस्कार है।

भुवन भास्कर की ब्रह्मा, विष्णु, महेश स्तुति करते हैं। महेन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराएं द्वारा स्तवन किये जाते हैं। वायु द्वारा पवित्र स्तुतियों से पूजित मण्डलध्वनियों के लिए सर्वश्रेष्ठ ध्यान वाले तथा मुमुक्षु के लिए मोक्ष-द्वार हैं।

इस प्रकार अनन्त्य, अचिन्त्य, अव्यक्त और निर्मल तेज वाले सूर्य की अनेकधा स्तुति की गई है। इस स्तोत्र में फलश्रुति यथा-वर्णित है —

त्रिकाल सन्ध्या में सूर्य की उपासना से दु:ख, शोक, रोग से विमुक्ति हो जाती है, नेत्र-पीड़ा, मन पीड़ा तथा भयङ्कर कारागार बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है। राज्य चाहने वाले को राज्य, धन चाहने वाले को धन की प्राप्ति होती है।[१]

१- पठेद् द्विज इमं स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नर: ।
नारी वा दु:खशोकार्ता मुच्यते शोकसागरात् ।।
चक्षु: पीडा मानपीडा ग्रहपीडाभ्यं एव च
बन्धने निगडे घोरे काष्ठागार गृहेषु च ।

— साम्बपुराण २४ । ३५-३६

(१३) दिवाकर स्तोत्र -[1]

मार्कण्डेय पुराण में १०४ अध्याय में १८ से २६ श्लोकों में अदिति द्वारा वर्णित सूर्य की स्तुति इस प्रकार है । इस स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् हैं । अनुष्टुप् छन्द में यह स्तोत्र निबद्ध है ।

सूर्य भगवान् अत्यन्त सूक्ष्म, सुनहरी आभा से युक्त, दिव्य शरीर धारण करते हैं । तेजस्वी स्वरूप वाले, तेजस्वियों के ईश्वर, तेज के आधार एवं सनातन पुरुष हैं । जगत् का उपकार करने के लिए पृथ्वी का जल ग्रहण करते हुए तीव्र रूप प्रकट करने वाले हैं, आठ महीनों तक सोममय रस को ग्रहण करने के लिए अत्यन्त तीव्र रूप धारण करने वाले सूर्य को नमस्कार है । रस को जल रूप बरसाने के लिए उक्त सूर्य तृप्तिकारक मेघरूप में प्रकट होते हैं । जल की वर्षा से उत्पन्न हुए अन्नों को पकाने वाले भास्कर रूप धारण करते हैं । शरद् ऋतु में शीतल धारण करने वाले, वसन्त ऋतु में सौम्य रूप में प्रकट होने वाले, समशीतोष्ण ऋतु वाले सूर्य को बारम्बार नमस्कार है । देवताओं और पितरों को तृप्त करने वाले, लताओं और वृक्षों के एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय हैं । सोम रूप वाले, विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करने वाले अग्नि, गुणात्मा वाले, ऋक् यजुष् साममय तेजों की एकतावाले, वेदत्रयीसंज्ञक विश्व में तपन करने वाले, सर्वोत्कृष्ट ॐकारमय, अस्थूल, अनन्त और निर्मल स्वरूप सूर्य को बारम्बार नमस्कार करके अनेकधा स्तुति द्वारा सर्वशक्तिसम्पन्नता प्रतिपादित की है ।

१- नमस्तुभ्यं परंसूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम् ।
धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ।।
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् ।
अस्थूलं स्थूलमक्षं नमस्तस्मै सनातन ।।
- मार्कण्डेयपुराण, १०४ । १८-२९ ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार है --

पापों और शत्रुओं का नाश करने वाले सूर्य की स्तुति करने से दैत्य, दानवों का नाश होता है । योगनिष्ठ पुरुष योगमार्ग से ध्यान कर परमपद को प्राप्त करता है तथा उसकी सब प्रकार से रक्षा होती है ।

(१४) भानु स्तोत्र[१] -

मार्कण्डेय पुराण में १०६ वें अध्याय में ४८ से ५४ श्लोकों में ब्राह्मणादि देवों ने सूर्य स्तुति इस प्रकार की है । इस स्तोत्र के देवता भुवन भास्कर हैं ।

सूर्य भगवान् देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रों में सर्वाधिक तेजस्वी रूप वाले हैं । देवेश्वर भगवान् आकाश में स्थित होकर सर्वत्र प्रकाश को अपनी किरणों से पृथवी पर विकीर्ण करने वाले हैं । आदित्य, भास्कर,भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वभानु तथा दीप्त-दीधिति आदि नामों से अभिहित हैं । चारों युगों का अन्त करने वाले कालाग्नि, अदृष्टव्य,जिनकी प्रलय के अन्त में गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं । ऋषियों के अग्निहोत्रों तथा यज्ञ के देवताओं में जिनकी स्थिति है,अक्षर, परमगुह्य तथा मोक्ष के उत्तम द्वार वाले, उदयास्तमन रूप रथ में छन्दोमय अश्व से युक्त, सुमेरु की प्रदक्षिणा करने में रत, आकाश में विचरण करने वाले, अनंत और ऋत दोनों ही स्वरूप वाले, पुण्य तीर्थ रूप में विराजमान, विश्व की रक्षा करने वाले, अचिन्त्य भगवान् सूर्य की शरण में जाते हैं । स्वयं ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, भास्कर हैं, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत,

---

१- संप्राप्योऽस्तुदेवेश शन्नोऽस्तु जगताम्पते ।
शन्नोऽस्तु द्विपदेनित्यं शन्नोऽस्तु चतुष्पदे ।।
- मार्कण्डेयपुराण १०६ । ५४

समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और औषधियों के उत्पत्तिस्थल, अव्यक्त, और व्यक्त प्राणियों में स्थित होने वाले हैं, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु के जो रूप हैं । त्रयीस्वरूप वाले, अजन्मा, जगदीश्वर के अङ्क में सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जगत् के अत्यन्त सौम्य रूप वाले जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है ऐसे परम प्रकाशमान्, प्रभा के पुञ्ज सूर्य भगवान् प्रसन्न होकर सबका कल्याण करें ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार है :—

सूर्य की उपासना करने वाले को गति प्राप्त होती है । मोक्ष चाहने वाले को मुक्ति, ध्यानियों को ध्यान व परमपद प्राप्त होता है ।[१]

(१५) आदित्य स्तोत्र -[२]

मार्कण्डेय पुराण के १०३ वें अध्याय में ५ से १२ श्लोकों में प्रचण्ड रूप वाले सूर्य को अवलोकय कर ब्रह्मा जी ने सृष्टि के विनाश की आशंका से सूर्य की स्तुति इस प्रकार की । इस स्तोत्र के देवता आदित्य भगवान् हैं ।

१- त्वन्नाथ मोक्षिणां मोक्षः ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डोपवर्तिनाम् ॥
- मार्कण्डेयपुराण - १०६ । ५४

२- नमस्ते देवरूपाय ब्रह्मरूपाय ते नमः ।
परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ।
[illegible] ।
त्वं पंचधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ॥
- मार्कण्डेयपुराण १०३ । ५-१२ ।

आदित्यरूप वाले सूर्य सर्वमय हैं विश्व ही जिनका शरीर है, परम ज्योति: स्वरूप वाले, योगियों के ध्यान स्थल वाले, ऋग्वेदमय, यजुर्वेद के अधिष्ठान, सामवेद की योनि वाले हैं । अचिन्त्य शक्ति वाले, स्थूलरूप में वेदत्रयी वाले, सूक्ष्मरूप में प्रणव की अर्धमात्रा वाले, गुणों से परे एवं पर ब्रह्म-स्वरूप वाले हैं । सर्वकारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञानातीत स्वरूप वाले, देवतारूप में स्थूल तथा परे से परे सबके आदि एवं प्रभा का विस्तार करने वाले सूर्य भगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।

आद्याशक्ति द्वारा पृथ्वी ,जल, अग्नि, वायु देवता, प्रणवादि से युक्त, सृष्टि की रचना करने वाले हैं । पालन और संहार की शक्ति वाले, अग्निस्वरूप वाले हैं । आपका सर्वव्यापी, आकाशस्वरूप, पांच भौतिक जगत् का पूर्णरूप से पालन करने वाले हैं । परमात्म तत्व के ज्ञाता पुरुष, सर्वयज्ञमय, विष्णुस्वरूप वाले, यज्ञों द्वारा यज्ञ न करने वाले हैं । मुक्ति की इच्छा रखने वाले जितेन्द्रिय सर्वेश्वर, परमात्मा सूर्य का ही ध्यान करते हैं । देवरूपवाले, यज्ञरूपवाले, योगियों के ध्येय, परब्रह्मरूप वाले सूर्य को नमस्कार है । चराचर को गति देने वाले सूर्य की सर्वशक्तिसम्पन्नता इस स्तोत्र में व्यक्त की गयी है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार है --

इस स्तोत्र का पाठ करने से अनुपम तेज की प्राप्ति होती है तथा सप्त रात्रि में किये हुए पापों से मुक्ति प्राप्त करता है ।

(१६) अष्टोत्तरशतनाम सूर्य स्तोत्र[1] -

ब्रह्मपुराण के ३१ वें अध्याय में ८ से ४१ श्लोकों में सूर्य के शत-नामों से ब्रह्मा जी ने स्तुति की है । इस स्तोत्र के देवता भगवान् सूर्य हैं । यह

१- आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः ।
आदिकर्तासि भूतानां देव देवो दिवाकरः ।।
देवं देवविदां नित्यं सर्वज्ञान समन्वितम् ।
सर्वदेवादिदेवस्य वपुष तस्य ते नमः ।
- ब्रह्मपुराण ३१।८-४१ ।(खेमराज श्रीकृष्णदास बाम्बे) ।

स्तोत्र अनुष्टुप् छन्द में प्रणीत है । इसके स्वयम्भू ऋषि हैं ।

सूर्य भगवान् आदिदेव, ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण देवताओं के ईश्वर, सम्पूर्ण भूतों के आदिकर्त्ता हैं । देवाधिदेव दिवाकर, साक्षात परमेश्वर रूप वाले हैं । सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किन्नरों, सिद्धों, नागों तथा पक्षियों को जीवन प्रदान करने वाले हैं । सूर्य स्वयं ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् एवं वरुण हैं । सृष्टि के कर्त्ता, कालचक्र के निर्माता, धर्त्ता, संहर्त्ता, प्रभु हैं । नदी, समुद्र, पर्वत, विद्युत, इन्द्रधनुष, प्रलय, सृष्टि की रचना वाले व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष हैं । हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख सर्व ओर हैं । आप सहस्त्रों किरणों वाले, सहस्त्रों मुखों वाले, सहस्त्रों चरणों और सहस्त्रों नेत्र वाले हैं । सम्पूर्ण भूतों के आदिकारण, भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: और सत्यम् ये सब सूर्य के ही स्वरूप हैं । सूर्य भगवान् का स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सर्वप्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकों में प्रकाश विकीर्ण करने वाले, देवेश्वरों के द्वारा कठिनता से देखे जाने वाले हैं, देवता और सिद्ध द्वारा सेवित, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि द्वारा स्तुत्य, अव्यक्त स्वरूप सूर्य को बारम्बार नमस्कार है । सम्पूर्ण देवताओं में उत्कृष्ट रूप वेदवेत्ता पुरुषों के द्वारा ज्ञेय, नित्य और सर्वज्ञान-सम्पन्न है । विश्व की सृष्टि करने वाला, विश्वमय, अग्नि एवं देवताओं द्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्व में व्यापक और अचिन्त्य, अविज्ञेय, अलक्ष्य, अव्यय अनादि और अनन्त हैं, यज्ञ, वेद, लोक, द्युलोक से भी परे परमात्मा नाम से विख्यात उस स्वरूप को नमस्कार है । कार्य के कारण रूप वाले सूर्य को अनेकानेक नमस्कार है ।

ऐसे सर्वशक्तिमय एवं सर्वदेवमय सूर्य की अनेकधा नामों से स्तुति करते हुए उसकी फलश्रुति का वर्णन इस प्रकार है --

पापों से मुक्त कराने वाले, दैत्यों को पीड़ा देने वाले, रोगों से छुटकारा देने वाले उनको धर, सुख, धन और उत्तमबुद्धि प्रदान करने

२- सूर्योदये: य: सुसमाहित: पठेत्सपुत्रदारान्धनरत्न संचयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नर: सदास्मृतिं च मेधां च सविन्दते पराम् ।
– ब्रह्मपुराण ३१-३८ ।

वाला है। जो समाहित चित्त से सूर्योदय काल में स्तोत्र का पाठ करता है वह मेधावी तथा शोकरूपी दावाग्नि से विमुक्त हो जाता है ।

(१७) सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र[१] -

महाभारत के वन पर्व में ३ अध्याय १६ श्लोकों में वर्णित है । अनुष्टुप् छन्द में प्रणीत इस स्तोत्र के देवता सूर्यभगवान् हैं धौम्य ऋषि हैं । यथा —

ब्रह्मा जी द्वारा कहे गये एक सौ आठ नाम वाले सूर्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं । यह सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान, अज, प्रभाकर हैं ।

यही काल, मृत्यु, धाता, पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु, शरण देने वाले, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक आदि नक्षत्रों के नाम से अभिहित, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, पवित्र, सूर्य पुत्र मनु के कारण सौरि नाम से विख्यात, शनैश्चर, ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्कन्द (कार्तिकेय) वैश्रवण(कुबेर) यम, अग्नि रूप वाले हैं । यहीं वैद्युत, जठराग्नि, ऐन्धन, तेजपति, धर्मध्वज वेदकर्ता, वेदाङ्ग और वेदवाहन हैं । सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलि की रचना

१- सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च, रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणोयमः ॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथोप्सितान् ॥
- महाभारत में वन पर्व के ३। १, ३, १६ ।

करने वाले, सर्वमिराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, रात्रि, प्रहर, क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ रूप वाले हैं। काल चक्र, विभावसु नाम वाले, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा रूप वाले हैं। यह अन्धकार को भगाने वाले, वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ) जीवन, शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। भूताश्रय, भूतपति, स्रष्टा, संवर्तक, प्रलयकालीन अग्नि, सर्वादि, निर्लोम करने वाले, अनन्त, कपिल, भानु रूप वाले सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले, सर्व ओर मुख वाले, जय, विशाल, वरद, सर्वभूत निषेवित हैं। यही मन, गुरु, भूतादि के कारण, शीघ्र चलने वाले, प्राण के धारक, धन्वन्तरि, धूमकेतु हैं। सूर्य भगवान् आदिदेव, अदितिपुत्र, बारह मास में बारह रूप वाले द्वादशात्मा, रवि के नाम से विख्यात, दक्ष, पिता, माता, पितामह सूर्य ही हैं। यही प्रशान्तात्मा वाले, विश्वात्मा वाले, विश्वतोमुख वाले, चराचरात्मा वाले, सूक्ष्मात्मा वाले, मैत्रेय तथा करुणा के आगार भगवान् सूर्य सर्वलोक के द्वारा नमस्कृत है।

ऐसे सर्वरूप वाले सूर्य की अनेकधा नामों से स्तुति करते हुए फलश्रुति का विवेचन इस प्रकार किया है --

जो व्यक्ति सूर्योदयकाल में सूर्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह पुत्र, कलत्र, धन, रत्नसमूह, पूर्वजन्म की स्मृति, धैर्य एवं धारणाशक्तिवाली बुद्धि को प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य स्नानादि से पवित्र होकर मनोयोग से देव-श्रेष्ठ सूर्यदेव का स्तोत्र पाठ करता है, वह शोक रूपी दावानल के सागर से पार हो जाता है तथा स्वाभिलषित मनोरथों को प्राप्त करता है।

(१८) <u>आदित्य हृदय स्तोत्र</u>[१] -

भविष्योत्तरपुराण में सप्तमी कल्प के १ से १७०

१- नमः त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः।
नमः कैवल्यनाथाय नमस्ते दिव्य चक्षुषे॥
त्वं ज्योतिस्त्वं धुतिर्ब्रह्मा त्वं विष्णुः त्वं प्रजापतिः।
त्वमेव रुद्रो रुद्रात्मा वायुरग्निस्त्वमेव च॥
-भविष्योत्तरपुराण ७ कल्प। १-१७०

श्लोकों में सुमन्तु और शतानीक का सम्वादात्मक स्तोत्र वर्णित है। अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध, ऋषि श्रीकृष्ण, सूर्य भगवान इस स्तोत्र के देवता है यथा —

'हरितहृयस्थं दिवाकरं घृणि:' इस स्तोत्र का बीज मन्त्र है।

'ऊं नमो भगवतेजितवैश्वानर जातवेदसे' इस स्तोत्र की शक्ति है।

'ऊं नम: भागवते आदित्याय नम:' कीलक है।

'ऊं अग्निगर्भदेवता' यह मन्त्र है।

श्री सूर्यनारायण के प्रत्यर्थ जप विनियोग इस प्रकार वर्णित है —

'ऊं नमो भगवते तुभ्यादित्याय नमोनम:'।

सूर्य भगवान् सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वेश, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सर्व-कर्ता, सृष्टि व जीवन का पालन करने वाले हैं। अनन्तशक्ति के विभूषण, मुक्ति के प्रदाता हैं, काम-क्रोध, कृतपापों का विनाश करने वाले, सर्वभयों से मुक्त कराने वाले, संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाले, संकट को दूर करने वाले, तीव्र ज्वर, शिररोग, नेत्र रोग को दूर करने के कारण इन्हें सर्वव्याधि विनाशक कहे जाते हैं। कुष्ठ रोगों को दूर करने वाले,दरिद्रता को दूर करने वाले हैं।

सूर्य की आराधना सर्वप्रथम ब्रह्मा, शिव ने की। आदित्य ही सविता, सूर्य, स्फटिक मणि को प्रदान करने वाले, भानु, रवि, इत्यादि नामों से विभूत है।

विश्वतापक, पूषा, अंशुमानु ऋग्वेद, सामवेद व यजुर्वेद के ज्ञाता, बुद्धिवर्द्धन करने वाले, बुद्धि-प्रदाता,बुद्धिरूप होने के कारण बृहस्पति नक्षत्र नाम से विख्यात हैं। यह धूमकेतु, महाकेतु तथा सर्वकेतुओं से उत्तम है। आदि-अनादि रूप वाले, तेज के स्वामी, तिमिर का अपहरण करने वाले, दुष्टों का नाश करने वाले मार्तण्डरूप वाले हैं।

सहस्त्रांशु किरणों से विश्व को प्रबोधित करने वाले त्रैलोक्यनाथ, भूतपति, केवल्यनाथ एवं दिव्य चक्षु वाले हैं। सूर्य की दिव्य ज्योति ही ब्रह्मा,

विष्णु, प्रजापति, रुद्र, रुद्रात्मा, वायु, अग्नि हैं। ऐसे सूर्य को अग्रत:, पृष्ठत:, पार्श्वत: सर्वत: नमस्कार है।

वेदान्त विज्ञ, सर्वकार्य के साक्षी, हरित एवं सुवर्ण वाले हैं। विभिन्न विभिन्न मासों में सूर्य की स्तुति विभिन्न नामों से करते हुए कहा —

माघ मास में अरुण रूप वाले, फाल्गुन में सूर्य नाम वाले, चैत्र मास में भानु नाम वाले, वैशाख में तापन रूप वाले, ज्येष्ठ मास में तपेन्द्र नाम से विख्यात, आषाढ में रवि नाम वाले, श्रावण में गभस्तिमान् नाम से विश्रुत, भाद्र में यम नाम से अभिहित, कार्तिक में दिवाकर नाम वाले, मार्गशीर्ष में मित्र नाम वाले, पौष मास में विष्णु नाम से विख्यात होने के कारण द्वादशात्मा नाम से विश्रुत हैं।

सूर्य भगवान् ही देवों के पति, भूतों के कर्ता, संहर्ता, और रक्षक हैं, सप्त द्वीप्त, सागर, पाताल में स्थित रहने वाले, दैत्य, दानव, राक्षस का संहार करने वाले हैं। यज्ञ, स्वाहा, ह्रीं श्रीं और पुरुषोत्तम हैं। त्रिगुण रूप वाले, त्रिदेव, त्रितत्व वाले, त्रिमूर्ति आदि रूपों में सूर्य की प्रणामाञ्जलि की गयी है।

इस स्तोत्र में पूजा का विधान इस प्रकार वर्णित है —

शुद्ध होकर गोबर से लिप्त भूमि पर, पद्म के अष्ट पत्र पर सूर्य, अग्नि, रवि लिखकर न्यास किया जाता है। उसके पश्चात् तिल, तंडुल, कुश, गंध, रक्तचन्दन व ताम्र पात्र को शिर से धारण कर धरती पर रखकर मंत्र से पवित्र अर्घ्य को लेकर, पद्ममुद्रा में सूर्य की पूजा करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

ॐ, श्रीं, ह्रीं, हूं, हंस:, सूर्याय नम: स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से यज्ञ में आहुति दी जाती है।

१- ॐ ह्रीं दिवाकराय स्वाहा,

सूर्य के स्वरूप का ध्यान इस प्रकार कहा गया है --

एक चक्र धारण करने वाले, सप्ताश्वों से सुशोभित दिव्य रथ पर आरूढ़, कनक आभूषणों से भूषित, सुवर्ण रूप वाले, श्वेत पद्म धारी सर्व देवमय सूर्य का ध्यान किया जाता है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति का विवेचन यथा --

एक सन्ध्या और द्विसन्ध्या में पूजित होने पर सर्व पाप का विनाश होता है किन्तु त्रिसंध्या में जप करने वाला परमपद को प्राप्त करता है । इस स्तोत्र का जप करने वाले को पुत्रबान्धव से सम्पन्न, सर्वसिद्धि की प्राप्ति, विशुद्धात्मा बाल, धन को प्राप्त करने वाला तथा कुष्ठरोग से रहित होता है ।[१]

(१६) देवकृत सूर्य स्तोत्र -[२]

वाराहपुराण में २६ वें अध्याय में १० से १८ श्लोकों

ॐ ह्रीं मिलीदं स्वाहा,

ॐ ह्रीं वालीदं स्वाहा

ॐ श्री ह्रीं स्वं स: लोकाय सर्वभूताये स्वाहा

ॐ श्रीं विद्याकिलिकिलिकटकेष्टसर्वार्थसाधनाय स्वाहा ।

- भविष्योत्तरपुराण में १०७-१०८ ।

१- आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वंति दिने दिने ।
जन्मांतरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोप जायते ।।
दद्रु कुष्ठ हरं चैव दारिद्र्यं हरते ध्रुवम् ।
सर्वतीर्थं प्रदं चैव सर्वकामप्रवर्धनम् ।।
- भविष्योत्तरपुराण ७।१६४-६६ ।

२- भवान प्रसूति जगत: पुराणां प्रयाहि विश्वं प्रलयं च हंसि ।
समुत्थितस्त्वं सततं प्रयाहि विश्व सदात्वां प्रणतास्मनित्यम् ।।
स्तां य: पुरुष्च भक्त्या उपास्ते सूर्यम् अर्चेत् ।
भास्करश्चैव तस्यासौ फलमिष्टं प्रयच्छति ।।

- वाराहपुराण - २६ । १०-१८

में देवों ने सूर्य की स्तुति की गई है । इस स्तोत्र के देवता भगवान् सूर्य हैं ।

भगवान् सूर्य ही परब्रह्म रूप वाले परमात्मा जगत् के उत्पादक, वेगवान् सप्ताश्व से युक्त रथ से सुशोभित हैं, वरुण, भास्कर, रवि, प्रभाकर, स्वयम्भू इत्यादि इसी के अंश से उद्भूत हैं । सूर्य भगवान् विश्व का प्रलय करने वाले, ह्रास कर्त्ता, विश्व की रक्षा करने वाले हैं । जगत् के कारण, लोकों में जीवों को प्रेरणा देने वाले हैं, निरन्तर कर्म प्रयास में लीन रहने वाले, विश्व को समुत्थित करने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है । लोक में तेज प्रदान करने वाले, कालरूपी धुरी वाले, ब्रह्मा यम भूत भविष्य आप हैं, वेदत्रयी, यज्ञों में हवन वाल रूप हैं ।

उपरोक्त स्तोत्र में सूर्य की महिमा का वर्णन करते हुए फलश्रुति को वर्णित किया है --

इस स्तोत्र का पाठ करने से सम्पूर्ण इष्टफल की प्राप्ति होती है । सर्व रोग से मुक्ति होती है ।

इस प्रकार इस स्तोत्र में सूर्य के कार्यों का कीर्तन है ।

(२०) सूर्योपनिषद् में सूर्य स्तवन[१] -

अथर्ववेद में सूर्योपनिषद् संगृहीत है । इस सूर्य स्तोत्र के ब्रह्मा

१- आदित्योऽन्त: करण मनोबुद्धिचित्ताहङ्कारा: ।
आदित्यो वै व्यान: समानोदानोऽपान: प्राण: ।
आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्य: ।।
नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि ।।
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि
त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि ।
आदित्याज्ज्योतिर्जायते ।।

ऋषि है । गायत्री छन्द में प्रयुक्त इस स्तोत्र के आदित्य देवता हैं । यथा --

'हंसः सो हम्' अग्नि नारायण युक्त बीज है ।
हृल्लेखा शक्ति है ।
वियत् आदि सृष्टि से संयुक्त कीलक है ।
चारों प्रकार के पुरुषार्थों की सिद्धि ही इस स्तोत्र का विनियोग है ।

छः स्वरों पर आरूढ़ बीज के साथ, छः अङ्गों वाले, लाल कमल पर स्थित, सात घोड़ों वाले रथ पर सवार, हिरण्यवर्ण, चतुर्मुख तथा चारों हाथों में क्रमशः दो कमल तथा वर और अभयमुद्रा धारण किये हुए कालचक्र के प्रणेता श्री सूर्य का यह रूप सर्वत्र ज्ञेय है ।

जो प्रणव के अर्थभूत सच्चिदानन्दमय तथा भूः भुवः और स्वः स्वरूप से त्रिभुवनमय एवं सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले हैं ऐसे सर्वश्रेष्ठ सूर्य का ध्यान करने से बुद्धियों को प्रेरणा मिलती है । भगवान सूर्य नारायण सम्पूर्ण जंगम तथा स्थावर जगत के आत्मा हैं, सूर्य नारायण से ही ये भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य से यज्ञ, मेघ, अन्न और आत्मा का आविर्भाव होता है । आदित्य ही प्रत्यक्ष कर्त्ता, प्रत्यक्ष रुद्र, प्रत्यक्ष ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद है । समस्त छन्दः स्वरूप वाले हैं ।

आदित्य से वायु, भूमि, जल, ज्योति आकाश दिशाएं उद्भूत है । आदित्य से देवता और वेद उत्पन्न हैं । ये आदित्य देवता इस ब्रह्माण्ड मण्डल को तपन प्रदान करते हैं । आदित्य ब्रह्म है । आदित्य ही अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप हैं । आदित्य ही प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान-इन पांचों प्राणों के रूप में विराजित है । श्रोत, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण - इन पांच इन्द्रियों के रूप में कार्यरत हैं । आदित्य ही वाक्, पाणि पाद, पायु और उपस्थ - ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं । आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - ये पांच ज्ञानेन्द्रियां के विषय हैं । आदित्य ही वचन, आदान, गमन, मल त्याग और आनन्द -- ये कर्मेन्द्रियों के पांच विषय हैं । आनन्दमय,

ज्ञानमय और विज्ञानमय आदित्य ही है । ऐसे स्वरूप वाले, मित्र देवता नाम से विख्यात, दीप्तिमान् तथा विश्व के कारणरूप वालों को अनेकानेक नमस्कार है ।

सूर्य ही चराचर जीव के पालनकर्ता, सूर्य में ही वे लय को प्राप्त कराने वाले हैं । सूर्य नारायण स्वयं ब्रह्म है, सविता देवता नेत्र है । पर्व के द्वारा पुण्यकाल का आख्यान करने के कारण पर्वत नाम से प्रसिद्ध सूर्य ही वसु हैं । सबको धारण करने वाले धाता नाम से विश्रुत आदित्यदेव नेत्रों को दृष्टि शक्ति प्रदान करने वाले हैं ।

सूर्य गायत्री रूप में स्तुत्य है यथा[१] —

'भगवान् आदित्य ज्ञेय होने के कारण पूज्य हैं, सहस्र किरणों से मण्डित भगवान् सूर्य नारायण का ध्यान करने से प्रेरणा प्राप्त होती है ।' सर्वत्र व्याप्त रहने वाले पृष्ठ भाग सविता रूप में, अग्रत: सविता रूप में, बायें भाग में सविता रूप में दक्षिण भाग में सविता देवता रूप में प्रतिष्ठित है । यह प्रसव उत्पन्न करने वाले, सभी अभीष्ट फल को प्रदान करने वाले सूर्य सब का कल्याण करें ।

सूर्य मन्त्र इस प्रकार है —

'ॐ घृणि: सूर्य आदित्योम्' यह सूर्य नारायण का अष्टाक्षर मन्त्र है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है —

सूर्यनारायण की ओर मुख कर जप करने से महाव्याधि के भय से मुक्त, व दारिद्र्य का नाश होता है तथा व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो

१- सूर्य गायत्री — आदित्याय विद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहि ।
तन्न: सूर्य: प्र चोदयात् ।

जाता है । मध्याह्न में सूर्यमुख की ओर जप करने से पांच महापातकों से निवृत्ति हो जाती है । त्रिकाल संध्या में पाठ करने से गौ आदि का लाभ व भाग्यवान् हो जाता है । महामृत्यु से तर जाता है ।[1]

(२१) सूर्य स्तोत्र -[2]

श्रीमद्भागवत के १२ वें स्कन्ध के छठवें अध्याय में ६७ से ६९ श्लोक याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा रचित है । इस स्तोत्र के देवता सूर्य भगवान् है । इसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है --

ॐकार रूप भगवान् सूर्य, जगत् के आत्मा और कालरूप रूप वाले हैं । ब्रह्मा से तृणपर्यन्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज -- चारों प्रकार के प्राणी सूर्य ही है, सबके हृदय देश में, बहिः आकाश रूप व्याप्त रहते हुए उपाधि के धर्मों से असङ्गत रहने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है । सूर्य ही क्षण, लव, निमेष आदि अवयवों से संघटित संवत्सरों के द्वारा जल के आकर्षण-विकर्षण (आदान-प्रदान) से सम्पूर्ण लोकों की जीवन-यात्रा को

१- फलश्रुति -

सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते ।
अलक्ष्मीर्नश्यति, अभक्ष्यभक्षणात् पूतोभवति ।
मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत् ।
सद्योत्पन्न पञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते ।।

- सूर्योपनिषद्

२- ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिल जगतात्मस्वरूपेण
कालरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्तानामन्त
र्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिना व्यवधीयमानो
भगवानेक एव क्षणलव निमेषावयव योपचितं
संवत्सरगणेनापामादान विसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति

- श्रीमद्भागवत १२।६।६७-६९ ।

चलाने वाले हैं । सम्पूर्ण सृष्टि के मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं । तेजोमय मण्डल वाले सूर्य का सभी लोग ध्यान करते हैं । सूर्य ही सबकी आत्मा और अन्तर्यामी हैं, जगत् में सभी चराचर प्राणी सूर्य के आश्रित हैं । सूर्य ही अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणों के प्रेरक हैं ।

ऐसे सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य की अनेकधा स्तुति करते हुए नमस्कार किया है ।

इस स्तोत्र की फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है --

जो लोग त्रिकाल संध्या में वेदविधि से सर्वशक्तिमान कल्याणकारी सूर्य की उपासना करता है, उसके सम्पूर्ण पाप और दुःखरूपी बीज का नाश हो जाता है ।

स्तुतियों में प्राप्य सूर्य के विभिन्न स्वरूप -

स्तुतियों में सर्वत्र सूर्य के प्राचुर्य गुणों का वर्णन प्राप्य है । ऋषि - महर्षियों ने श्रद्धाविभोर होकर सूर्य स्तुति की प्रार्थना और उपासना के अनेक मन्त्रों की उद्भावना की । उसमें भगवान् आदित्य निर्गुण निराकार परब्रह्म परमात्मा की सगुण साकार अभिव्यक्ति है । विश्व के कण-कण के नित्यात्मक प्रत्यक्ष देव भगवान् दिवाकर का शुभागमन अत्यन्त आह्लादकारी है । इन कतिपय स्तुतियों में भगवान् सूर्य उभय लोक संरक्षक, साधकों के मार्गदर्शक, लोकयात्रा के पालक एवं जगत् के प्राणियों के लिए कल्याणस्वरूप रूप वाले हैं । इस स्तुतियों में सूर्य की महिमामयी रूप की व्याख्या है जिसके आधार पर अव्याकृतस्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियों के जीवन का हेतु, सचराचर जगत् के उत्पादक सूर्य का ध्यान करने पर अनेक फलों की प्राप्ति होती है । यथा वर्णित है --

"मैं आदित्यस्वरूप वाले सूर्यमण्डलस्थ महानपुरुष, जो अन्धकार से सर्वथा परे, पूर्ण प्रकाश देने वाले और परमात्मा है, उनको जानता हूं । उन्हीं को जानकर मनुष्य मृत्यु को लांघ जाता, मनुष्य के लिए मोक्ष प्राप्ति का दूसरा

कोई अन्य मार्ग नहीं है ।[१]

पूर्वोक्त स्तुतियों के आधार पर सूर्य के विभिन्न स्वरूप का विवेचन इस प्रकार है —

सूर्य की साक्षात रूपता -

इन स्तुतियों में सर्वत्र ब्रह्म समन्वयात्मक प्रवृत्ति का प्राचुर्य है । इनमें सर्वत्र कहीं परमात्मा से समुत्पन्न, तो कहीं चक्षु से उद्भूत और कहीं चक्षु वाले सूर्य कहा गया है । इन स्तुतियों में साक्षात् परब्रह्म परमात्मा के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के उपास्य कहे गये हैं । व्यक्त, अव्यक्त, अविज्ञेय, अलक्ष्य, अक्षय अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्तरूप जिस परमात्मा की कल्पना की गई वह सब सूर्य है । इन्हें सत्व, रजस, तमस् गुणों से पृथक् पुरुष माना । यह सूर्य ब्रह्मरूप शुक्ल दिव्य तथा पर ज्योति: स्वरूप वाले हैं । सूक्ष्म में प्रणत की अर्धमात्रा वाले सूर्य को परमाक्षररूप, आदित्य ही ब्रह्म है । गहन संसार से उपरत होकर उस परमात्मा रूप वाले ब्रह्म के रूप सूर्य की उपासना की गई है ।

वेदों में `एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म` रूप में वर्णित है । `आदित्यो ब्रह्म` `असावादित्यो ब्रह्म` शब्द विवेचन से सूर्य ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है । ब्रह्मरूप उपासना

१-(क) ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय ।
- शुक्लयजुर्वेद ३१। १८

(ख) चक्षो: सूर्यो अजायत ।
- यजुर्वेद ३१ ।१२

(ग) स एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते भ्याशो ह यदेनं ।
-छान्दोग्योपनिषद में ३।१९।१-४

सूर्य चक्षु: ऋ० १०७। १। १

चक्षुष आदित्य - ऐ० ३०। १। १। ४

करने वाले आदित्य रूप हो जाता है । ज्योतिर्मय ब्रह्म व्यक्तावस्था में वाहन युक्त सूर्य है अव्यक्त रूपी ज्योतिर्मय में सगुण ब्रह्म का द्योतक है । परमात्मरूप ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही है ।[१]

सूर्य का एकत्वज्ञान ही परमकल्याण व मोक्ष का कारण है । स्वयं भगवान् सूर्य ने कहा --

`त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात परमात्मन: ।`

अर्थात् परमात्मा के पूर्ण होने के कारण कोई भेद नहीं है । तुम और मैं एक ही हूं ।

निर्गुण, सगुण निराकार ब्रह्म से भगवान् सूर्य के अभिन्न ज्ञान का अनुभव होता है । भू: स्व, भुर्व: इत्यादि अव्ययों के अङ्ग और अङ्गी सूर्य हैं। `मैं ही ब्रह्म हूं` यह जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है ।`

गीता में उस अनन्त रूप का वर्णन है --

`ज्योतिषामपि तज्ज्योति:`

निदान पर ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति है । वह माया से परे परमात्मा

१-(क) `असावादित्यो ब्रह्म, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि`

- सूर्योपनिषद ।

(ख) अविज्ञेयमनाख्येयमध्यानगतमव्ययम् ।
अनादिनिधनं चैव वपुं तस्येते नम: ।।

- आदित्य स्तोत्र -१३ ।

(ग) पुरुष शाश्वतो योनी व्यक्ताव्यक्त: सनातन: ।।

-सर्वेश्वर शतनाम - ६

(घ) ब्रह्मास्मीति कृतकृत्योभवति-मण्डलब्राह्मणोपनिषद ३।२

बोध स्वरूप, ज्ञेय एवं तात्त्विक ज्ञान से प्राप्त करने योग्य है । अहं भाव से उत्पन्न मायामोह को नष्टकर जिसने परमात्मा रूप वाले सूर्य से एकत्व स्थापित कर लिया वह पाप पुण्य से मुक्त होकर कर्म एवं फलों से ऊपर उठकर आत्मप्रकाश को प्राप्त करता है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में सूर्य एक विराजमान प्रेरक दिव्य शक्ति रूप परब्रह्म परमात्मा है ।

प्रणव या ॐकार या उद्गीथ सूर्य है । यह नादब्रह्म है । ये निरन्तर रव करते हैं ।[1]

'इस ॐ अक्षर के द्वारा परम पुरुष के अभिध्यान के प्रभाव से तेज सूर्य उत्पन्न होता है । यह ॐकार ही पर और अपर ब्रह्म है ।'[2]

मूल बीजरूपी ब्रह्म अलिङ्ग अव्यक्त, प्रकृति का आत्मभूत और नित्य है । बीज विकारोन्मुख नहीं होता है । इस परमेश्वर गुण, रूप वाले सूर्य की अन्तिम पराकाष्ठा उसी में सार्थक है । उस परमात्मा को सर्वोत्पादक सर्व प्रेरक सूर्य नाम से अभिहित किया है ।

ब्रह्म के बिना ब्रह्माण्ड की कल्पना असम्भव है । उस ब्रह्ममण्डल पर स्थित सूर्य में ब्रह्मशक्ति है । शक्ति और शक्तिमान् में अभेद मानकर आदित्य स्थित पुरुष और ब्रह्माण्ड स्थित पुरुष में अभेद दर्शाया है --

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहम् ओम् खं ब्रह्म ।।[3]

१- खलु य उद्गीथः सप्रणवो यः प्रणवः सउद्गीथ
इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ।
- छान्दोग्य उपनिषद् १। ५। १-५

२- प्रश्नोपनिषद् ५।१-७

३- यजुर्वेद - ४० ।१७

नारायणोपनिषद् में आदित्य में परमेष्ठी ब्रह्मात्मा का निवास बताया है —

'य एष आदित्ये पुरुष: स परमेश्ठी ब्रह्मात्मा ।'[1]

कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार भी आदित्य का प्रकाश ब्रह्म की ही दीप्ति है -

'एतद् वै ब्रह्म दीप्यते यदादित्यो दृश्यते ।'

इस ज्योति: पिण्ड सूर्य को प्रकाशित करने वाले परमात्मा हैं यथा --

सर्वव्यापि निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ अयो ध्रुव:
एष ब्रह्ममयो ज्योतिं ब्रह्म शब्देन शब्दित: ।।[2]

इस प्रकार सूर्य रूप ब्रह्म की ओंकार उपासना, अद्वैत ब्रह्म की उपासना है।
सूर्य सत्यरूप, आदित्य मण्डलस्थ पुरुष रूप है । यही ब्रह्म है, आत्मा है
आदित्य है अन्य देवता इसके अङ्ग हैं । आदित्य से सारे लोक महिमान्वित हैं ।
यही आधिदैविकी सूर्यशक्ति मण्डल में संस्थित है । आदित्य की ज्योति के भी
भीतर रहने वाली आधारभूता परमा, शाश्वती ज्योति ।[3]

(२) <u>सर्वदेवमय</u> —

सूर्य को इन स्तुतियों में अनेक नामों से अभिहित किया गया है । सूर्य को विष्णु, शिव, प्रजापति तथा त्रिमूर्त्यात्मक, त्रिदेवात्मक रूप में संज्ञित किया है । इन सभी देवताओं का मूल स्थान सूर्य में माना है । सूर्य का विभिन्न देवों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है । सूर्योपनिषद् के

१- नारायण उपनिषद, कौ० ब्राह्मण - १२ अध्याय ।

२- हरिवंशपुराण ३ । १९ । ११ ।

३- यदन्तं परमं सूक्ष्मं ब्रह्मज्योति: सनातनम - ना० पु० रा० १।१२। ४८

अनुसार —

'एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्कर: ।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो हरि: ।।'[1]

भगवान् विष्णु की लोकपालिनी शक्ति का लोकलोचन के समक्ष प्रतिनिधित्व करने के कारण स्तुतियों में यत्र-तत्र सूर्यदेव को विष्णु के नाम से अभिहित किया है, यथा आदित्यहृदय में वर्णन है -

'यन्मण्डल सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परंधामं विशुद्धतत्त्वम् ।'[2]

यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मा की शक्ति से व्याप्त है इस कारण विष्णु कहलाते हैं । सूर्य तेज ही विष्णु तेज है । यथा -

यस्माद्विष्ट-मिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मन: ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेधातो: प्रवेशनात् ।।[3]

ऋग्वेद के कथनानुसार बहुदेवत्ववाद की कल्पना उस सर्वशक्तिमान सूर्य के असंख्य रूप हैं --

रूप रूपं प्रतिरूपं बभूव ।[4]

सूर्य की सर्व रूप प्रतिरूप है । इन स्तुतियों में शिव और सूर्य की एकात्मक प्रवृत्ति का उद्बोध करती है । शिव और सूर्य अभिन्न हैं यथा --

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम् ।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च ।।[5]

१- सूर्योपनिषद १। ६

२- आदित्यहृदय

३- विष्णुपुराण - ३। १। ४५

४- ऋग्वेद - ३।५३ ।८

निरुक्तभगवान् ने सूर्य के सब रूपों में शक्ति का भाव होने के कारण कहा भी है --

'महाभाग्याद् देवताया: एक आत्मा बहुधास्तूयते ।'[१]

इन स्तुतियों में सूर्य का वैभव अध्यात्म-अधिदेव, अधिभूत रूप से अपरिच्छिन्न सत्ता में स्पष्ट किया । गीता में विष्णुमयी सूर्य का भाव इस प्रकार व्यक्त है —

'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।'[२]

भविष्योत्तरपुराण के कृष्णार्जुन संवादात्मक आदित्यस्तोत्र में त्रिकाल रूप सूर्य ही है यथा वर्णित है --

उदये ब्रह्मणोपिनं मध्याह्ने तु महेश्वरम् ।
अस्तकाले भवेद्विष्णु: त्रिमूर्तिश्च दिवाकर: ।।[३]

भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर, जङ्गम तथा सत् असत् इन सबके उत्पादन क्षेत्र एकमात्र सूर्य प्रजापति है । सूर्य शिव जगन्नाथ और सोम है । यथा --

रुद्र वैवस्वत: साक्षात् ।[४]

एकेश्वर ही ब्रह्मवाद में वर्णित हुआ है । सूर्य ब्रह्म रूप में सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी चार-अचार नाशवान् और अव्यय की मूल सत्ता व्यवस्थित है । यथा साम्बपुराण के स्तोत्र में वर्णित है —

'आदिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च ।
सृष्टा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्टाश्च विविधा: प्रजा: ।।'[५]

१- निरुक्त - ७ ।१।४
२- गीता - १० ।२१
३- भविष्योत्तरपुराण - आदित्यहृदय स्तोत्र
४- वायुपुराण - अध्याय ५३ ।
५- साम्बपुराण -

यह सूर्य सभी देवों में परमतेजस्वी है । सूर्य के अन्य सहचारी देव वरुण, मित्र, अर्यमा, भग एवं पूषा है । ये सभी परमसत्य सूर्य परमेश्वर के सक्रिय सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता के मूर्त विग्रह हैं । प्रकाश और दिव्यानन्द की प्राप्ति वाले अर्यमा हैं । सूर्य के नामों की स्तुति में इन देवों का वर्णन है --

महेन्द्रो धनद: कालोयम: सोमो ह्यपांपति: ।
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावन: ॥[1]

सूर्य ही ब्रह्मरूप में उदयोन्मुख, महेश्वरूप मध्याह्न तथा विष्णुरूप अस्तोन्मुख है । सगुण साकार पञ्चदेवोपासना में विष्णु, शिव, सूर्य, देवी गणपति हैं । इनमें सूर्यनारायण अन्यतम् हैं । यथा वर्णित है --

'विष्णुश्चिता यस्तु सता शिव: सन् ।
स्वतेजसार्क: स्वधिया गणेश: ॥
देवी स्वशक्त्या कुशलं विधत्ते ।
कस्मैचिदस्मै प्रणति: सदास्ताम् ॥'

अर्थात् जो परमात्मा चित् भाव से विष्णुरूप होकर, सत्भाव से शिवरूप होकर, तेजरूप से सूर्यरूप होकर, बुद्धिरूप से गणेश रूप होकर और शक्तिरूप से देवीरूप होकर जगत् का कल्याण करते हैं, ऐसे परब्रह्म रूप वाले सूर्य को नमस्कार है ।

वैदिक मन्त्रराज ब्रह्मगायत्री में भगवान् सूर्य को त्रिभुवन के उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा माने गये हैं । स्थावर जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले, निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर के तेज से बुद्धियां सत्कर्मों में तथा आत्मचिन्तन में रत रहती है । ऐसे सूर्य ही देव, भूलोक, स्वर्लोक रूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म है यथा --

ॐ भू भुर्व: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योन: प्रचोदयात् । - ऋग्वेद ३६ ॥२

१- आदित्यहृदय - वाल्मीकि रामायण ।

सूर्य को उपनिषदों तथा पुराणों में विष्णु का परमपद कहा है यथा --

'तद्विष्णोः परमं पदम्'

अग्निरूप देव होने के कारण यज्ञ की आहुति, अग्निहोत्र के फलों के देने वाले सूर्य हैं यथा --

एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ।
देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ॥[1]

प्रलय करने वाले योगेश्वर, अचिन्त्यरूप वाले होने के कारण देवों में अधिष्ठित देव हैं । प्रलयकाल में एक रूप वाले ब्रह्म तथा सृष्टिकाल में बहुसंख्यक रूप वाले ब्रह्म सूर्य ही हैं । देव और पितरों सम्बन्धी धर्म कार्यों में प्रथम पूजित है । त्रिगुणात्मक, देवों के मार्ग प्रणेता, देवताओं में विश्वात्मा कहा है यथा --

'यथा देवेषु विश्वात्मा'[2]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य सर्वदेवों में प्रथम पूज्य है सभी देवता या तो इनके अंश हैं या इन्हीं के रूप हैं ।

(३) विश्व के आधार -

इन स्तुतियों में भगवान् भुवनभास्कर विश्व के आधार हैं । सूर्य समस्त लोकों के आत्मा तथा आदिकर्ता हैं । सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रतिदिन प्रकाश से अनुगृहीत करते हैं । विश्वात्मा होने के कारण स्थावर जङ्गम सभी उनकी विकसित शक्ति को प्राप्त करते हैं । सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि

१- आदित्य हृदय स्तोत्र - वाल्मीकि रामायण

२- सूर्योपनिषद् में २। ३ ।

तथा उसका पालन सूर्य ही करते हैं, सूर्य में ही उन सबका अवसान होता है। यथा सूर्योपनिषद् में वर्णन है --

> सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
> सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति य: सूर्य: सोऽहमेव च ।।[१]

सर्वात्मा, सर्वकर्ता, सर्वेश, सर्वेश आदि नामों से अभिहित है। सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, समस्त शक्तियों के अधिष्ठान, जगन्नियन्ता, सर्वेश एवं विश्व के प्राणाधार हैं। यथा सूर्यगीता में वर्णित है --

> 'विश्वप्रकाशक: श्रीमान् सर्वशक्तिनिकेतन ।
> जगन्नियन्त: सर्वेश विश्वप्राणाश्रय प्रभो ।।'

सूर्य सर्वदृष्टा और जगत् के संवेदक हैं। संसार के अन्धकार को चर्म के समान लपेटते हुए उसका विध्वंस करते हैं। सत्कर्म के लिए जीवों को प्रेरित करते हैं। लोक में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहने वाले हैं। यथा आदित्य हृदय में वर्णन है --

> नमस्तमोऽभि निघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ।
> नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभु: ।।[२]

ऋग्वेद में सूर्य मानव जाति के लिए उद्बोधक तथा चराचर विश्व सभी की आत्मा तथा उनके रक्षक हैं --

> 'उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णव सूर्यस्य ।
> एष मे देव: सविता चच्छन्द: य: समानं न प्रमिनाति धाम ।।[३]

सूर्य की किरणों से ही सम्पूर्ण जगत् में प्राण तत्व का संचार होता है। जहां प्राण वहां जीवन है। उदय होते ही प्राणपूर्ण किरणों से सभी

१- यज्ञावल्क्य शिक्षा - पृष्ठ ५२, श्लोक १ ।

२- आदित्यहृदय - वाल्मीकि रामायण ।

३- ऋग्वेद - ७। ६३।२.१ ।

दिशा-उपदिशाओं को व्याप्त कर देते हैं और सर्वत्र अपनी अद्भुत प्राणशक्ति से सबको प्रदान करते हैं यथा प्रश्नोपनिषद् में वर्णित है --

आदित्यो ह वै प्राण: ।
यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ।[1]

सूर्य जगत् के आदि हैं, कारण आदित्य, जगत् को प्रसव करते हैं । दैनिक कार्यों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्राप्त है । इसलिये सूर्य को चल और अचल अथवा चेतन और जड़ दोनों प्रकार की सृष्टि की आत्मा कहा गया है --

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।'[2]

सूर्य के विशाल रूप का विश्व में, शरीर में आत्मा के समान स्थान है । पृथवी, पर्वत, जल पानी, औषधियों का उत्पत्ति स्थल सूर्य ही है । सूर्यमण्डल की तीव्र रश्मियां पृथ्वी को पूर्णता प्रदान करती है । इनका स्वरूप विश्वमय है । सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किन्नरों को जीवन प्रदान करने वाले हैं ।

सूर्य द्वारा प्राणन, विकसन, वर्धन, विपरिणमन आदि क्रियाएं होती हैं । सूर्य में उसका लय है । सूर्य प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, जीवन, भूताश्रय, भूतपति, सर्वधातु, निषेचिता, भूतादि, प्राणधारक, प्रजा द्वार, देहकर्ता और चराचरात्मा नाम से अभिहित है । यथा महाभारत की अष्टोत्तरशतनाम में वर्णित है --

कालाध्यक्ष: प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुद: ।[3]
भूताश्रयो भूतपति: सर्वलोक नमस्कृत: ॥

१- प्रश्नोपनिषद् - १। ६, १।५

२- ऋग्वेद - १। ११५ ।१

३- सूर्याष्टोत्तरशतनाम् - वनपर्व - ६-७

सूर्य सबसे अधिक उपकारक है । संसार में प्रकाश और उष्णता आदि प्रदान करते हैं । इसलिए सूर्य को समस्त प्राणियों का जीवन कहा गया है --

`जीवनं सर्वभूतानाम`[1]

इस प्रकार सूर्य विश्वात्मा के रूप में विश्रुति है जिनसे सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है ।

(४) सर्वोपकारी गुण --

इन स्तुतियों में फलश्रुति के माध्यम से सूर्य का सर्वोपकारी गुण परिलक्षित होता है । क्योंकि बिदुवादी, जडवादी, देहवादी, ज्ञानी और विज्ञानी भक्तजन सूर्य के रहस्यों एवं गुणों से परिचित होकर समुत्सुक साधना में रत रहते हैं । इन स्तुतियों में एकमात्र ध्येय तम का निवारण, आयु की वृद्धि, रोगों का निदान, आत्मरक्षा एवं मोक्ष की प्राप्ति है ।

यद्यपि श्रीमद्भागवत् में `तेजस्कामो विभावसुम्` कहकर, स्कन्दपुराण में सूर्य से सुख `दिनेश सुखार्थी` तथा वाल्मीकि रामायण के आदित्य-हृदय स्तोत्र में `सर्वशत्रु विनाशकम्` कहकर सूर्य से अरि विजय की कामना की है । सूर्य से आरोग्य लाभ का डिण्डिमघोष मयूर कवि ने का नकाय होकर `सूर्यशतक` में सूर्य की आराधना कुष्ठ रोगों से मुक्ति के लिए की है । पुराणों में परम तत्व सूर्य का वर्णन कुष्ठ रोग निवारण, भक्तों की रक्षा, धर्म की स्थापना और दुष्टों के दमनार्थ चन्द्रमण्डल से आविर्भूत रूप में प्राप्य है ।

दिग्दर्शित प्रभा वाले सूर्य की भक्ति किंवा आराधना करते हुए भक्तजन ऐहिक अभ्युन्नति `प्रेय` और पारलौकिक उत्कर्ष `श्रेय` को प्राप्त किया है । यह उपासकों के लिए कामधेनु के समान है । आपत्ति के समय

१- कूर्मपुराण - २३ । ६ ।

भयङ्कर विषम परिस्थिति, जनशून्य अरण्य में, अत्यन्त भयदायी घोर समय अथवा महासमुद्र में इनका स्मरण, कीर्तन और स्तुति करने से प्राणी सभी विपत्तियों से छूट जाता है । यथा - वाल्मीकि रामायण के आदित्यहृदय स्तोत्र में वर्णित है --

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ।।[1]

सूर्य केवल विश्व के प्रकाशक, प्रवर्तक, धारक, प्रेरक मात्र ही नहीं अपितु आरोग्यकारक भी हैं । सूर्य की उपासना से दुःस्वप्न से जनित अनिष्ट एवं नवग्रहजन्य पीड़ा का परिहार होता है एवं व्रत के विघातक राक्षसों से भी रक्षा करने वाले हैं । महाभारतोक्त सूर्य स्तोत्र में मुक्तिपथ व मोक्षद्वार रूप यथा स्पष्ट है --

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् ।
सपुत्रदारान् धनरत्नसंचयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा ।
धृतिं च मेधां च सविन्दते पुमान् ।[2]

इस प्रकार का भाव पद्मपुराण में भी परिलक्षित है --

शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः ।
जायते नात्र संदेहो यस्तुष्येद्दिवाकरः ।।

इन स्तुतियों में विभिन्न देवताओं के अधिष्ठा सूर्य प्राणियों के नेत्रों तक सीमित नहीं अपितु नेत्र की ज्योति की वृद्धि करते हैं । नेत्र-जनित रोगों का नाश हो जाता और नेत्र तेजयुक्त हो जाते हैं । अक्षि-उपनिषद् में

१- वाल्मीकि रामायण - आदित्य हृदय स्तोत्र

२- महाभारतोक्त सूर्यस्तोत्र - ३ ।३ ।२०-२१ ।

इसकी फलश्रुति इस प्रकार वर्णित है --

य इमां चक्षुष्मती विद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते ।
न तस्याक्षिरोगो भवति, न तस्यकुलेऽन्धोभवति ।।[1]

इतना ही नहीं सूर्य की उपासना मात्र से ही दरिद्रता का नाश होता है । परब्रह्ममय, सर्वदेवमय, सर्व जगन्मय ज्योति होने के कारण अपने दिव्य सहस्त्र रश्मियों से सभी का कल्याण करते हैं यथा आदित्य स्तोत्र में वर्णित है --

आदित्यस्यनमस्कारं ये कुर्वंति दिने दिने ।
जन्मांतर सहस्त्रेषु दारिद्रं नोप जायते ।।[2]

सूर्य की कतिपय स्तोत्रों में रक्षा करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । सूर्य कवच में मूलत: रक्षात्मक प्रवृत्ति का ही उद्घोष है । यथा त्रैलोक्य मङ्गल कवच स्तोत्र में वर्णित है --

त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।
त्रिसंध्यं य: पठेन्नित्यमरोगी बलवान्भवेत ।।[3]

सूर्य भगवान् भक्तों के लिए यज्ञानुष्ठानों की उपादेयता व फलप्रदायक शक्ति, स्वान्त:सुखाय के लिए एकमात्र ध्येय । ध्यानियों के ध्यान, मुमुक्षों के मोक्षमार्ग प्रणेता हैं । निरन्तर ध्यान में रत बुद्धि एवं आत्मा को तेजयुक्त करने वाले हैं । यथा वर्णित है --

विज्ञानमुत्तमो ज्ञानं गतिमिष्टांतथैव च ।
तेजसेणाप्नोत्यध्यानमिदं च पठते पथि ।।

1- अक्षि-उपनिषद् -

2- भविष्योत्तरपुराण - ७ । १४५-४६ ।

3- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर - पृष्ठ संख्या १३८ ।

यं यं कामयते कामं सतं प्राप्नोत्य संशय ।।[1]

सूर्य कुष्ठ रोगों को दूर करने वाले हैं। सूर्य स्तुतियां अधिकांशत: इसी ध्येय से की गई। साम्बकृत स्तुति एकमात्र उदाहरण है। शरीरजन्य समि रोगों का नाश होता है। सूर्य की किरणें, पीलिया रोग तथा हृदय रोगों का लाभ होता है। यथा सूर्य स्तोत्र में वर्णित है --

सुस्नातोयोजपेत्सम्यग्योऽधीते स्वस्थ मानस: ।
सरोग मुक्तो दीर्घायु: सुखं पुष्टिं च विन्दति ।।[2]

इसी तरह ऋग्वेद में अनेक सूक्त प्राप्त हैं जिनमें सूर्य देवता से रोगों के विनाश के लिए प्रार्थना की गई है। यथा --

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।।[3]

सूर्य गायत्री के द्वारा लोकों में प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् आदित्य ज्ञेय होने के कारण पूज्य हैं। यथा --

आदित्यविद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहि
तन्न सूर्य: प्रचोदयात् ।[4]

इन स्तुतियों में सर्वत्र अन्धकार का नाश करने वाले हैं। अपने तेजोमय प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करते हैं। सूर्य की सहस्त्र किरणें जगत् में अपने दिव्य-रूप को विकीर्ण करती हैं। सूर्याग्नि देव हैं। सम्पूर्ण अमित पापों को नष्ट कर देते हैं। अन्धकार को दूर कर विश्व का कल्याण करते हैं। इसके लिए अनेक

१- साम्बपुराण - ५ । ३५-३६

२- सूर्यकवच स्तोत्र -

३- ऋग्वेद - १। ५०। ११ ।

४- सूर्योपनिषद् -

वाच्य नामों का उल्लेख प्राप्त होता है । यथा —

नमोभगवते सूर्य कुष्ठ रोगान्विखण्डयं ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं देवि देव नमोऽस्तु ते ।।[१]

सवितृस्तोत्र—
यो हन्ति तिमिराण्येको जगतो स्य जगत्पति: ।।

श्रीमद्भागवत में वर्णित है कि अदिति पुत्रों अर्थात् आदित्यों या देवों की उपासना का फल स्वर्ग प्राप्ति है । तेजस्वी बनाते हैं यथा --

'स्वर्गकामोऽदिते: सुतान्'[२]

इन्हीं फलश्रुतियों के माध्यम से सूर्योपासना की महत्ता को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि जो सूर्य की उपासना नहीं करता वह अज्ञानमय, प्रकाशहीन, असूर्यलोक (असुरों के लोक) को प्राप्त करता है । यथा --

असुर्या नाम ते ते लोका अन्धेन तमसावृता: ।
तां स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना: ।।[३]

भक्तिभाव और विशुद्ध चित्त से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देते हैं । वे मनोवांछित भोगों का उपभोग कर परम गति को प्राप्त करता है । यथा --

भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना ।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ।।[४]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिव्यमय-रूप वाले सूर्य की स्तुतियां अनेक प्रकार के कार्यों के लिए की गई हैं । यही स्तुतियां का एकमात्र ध्येय रहा है ।

१- आदित्यहृदय - ११६ पद्य ।
२- भागवत् - २।३।४
३- शुक्ल यजुर्वेद - ४० ।३
४- ब्रह्मपुराण - २८।३७-३८

(५) सूर्य के विभिन्न नामो का उल्लेख --

सूर्य की अधिकांश स्तुतियाँ उनके नामों के कारण उल्लेखनीय हैं । सर्व कल्याण वाले सूर्य के प्रत्यक्षरूप नामों को सभी सहर्ष स्वीकार्य कर उनकी आराधना करते हैं । सूर्य के दिव्यमय स्वरूप ही द्वादशनाम, अष्टोत्तरशतनाम, सहस्त्र नाम वाले स्तोत्र हैं । यह भगवान् सूर्य के कल्याणमय सनातन एवं सारभूत स्तोत्र हैं । यथा २१ नामों वाले सूर्यस्तवराज में वर्णित है --

विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रवि: ।
लोकप्रकाशक: श्रीमाल्लोक चक्षुर्महेश्वर: ।।[१]

सूर्य हिरण्यगर्भ है । तत्वदर्शी ने जल समूह को ही नार संज्ञा दी उसी जलसमूह का आश्रय होने के कारण नारायण कहा गया । ब्रह्मा की प्रथम उत्पत्ति के कारण, हिरण्य अण्ड में रहने से हिरण्यगर्भ नाम दिया गया । देवताओं द्वारा अर्चित होने से अर्क नाम, प्रकाश विकीर्ण करने के कारण भास्कर । प्रथम देवता होने के कारण आदित्य, अजन्मा होने के कारण अज नाम से सम्बोधित किया यथा हृदय में वर्णित है --

आदित्य: सविता सूर्य: खग: पूषा गभस्तिमान
भानुर्हिरण्यरेता दिवाकर: ।।[२]

बृहत् होने के कारण ब्रह्मा, लोक का सर्वज्ञ होने और अधीश होने के कारण ईश्वर कहा गया है । भवत्व होने के कारण भव, देवों के देव दिवाकर कहे गये हैं । सहस्त्र शीर्षों वाला, सहस्त्र नेत्रों वाला और सहस्त्र पैरों वाला होने के कारण प्रजापति कहे गये हैं । पूर्वत्व के कारण वह स्वयं उत्पन्न हुए

१- सूर्यस्तवराज -

२- आदित्य हृदय स्तोत्र -

अतएव स्वयंभू कहे जाते हैं । ग्रहों के स्वामी, दिवस्पति कहे जाते हैं । श्वेत आदि विविध वर्णों के कारण इसकी किरणें बहुरंगी हैं । चित्रभानु नाम से विख्यात हैं । यथा भविष्यपुराण में वर्णित --

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभि: स्वयम् ।
अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूत: स्वयंभुव: ।।
सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वर: ।
नारायणाख्य: पुरुष: सुष्वाप सलिले तदा ।।[१]

देवों में सबसे बड़े देव हैं इसलिए महादेव नाम से कहे गये विवस्वान देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् और असत् स्वरूप है । यथा --

देवेषु समहान्देवो महादेव स्मृतस्तत: ।
आदित्यस्यादिदेवत्वाद जातत्वादज: स्मृत: ।।

द्वादशात्मा वाले आदित्यगण कहे जाते हैं । यह आदित्यगण बारह महीने में समीकृत किये गये हैं । 'मार्तण्ड' शत्रुओं के नाश के कारण कहे जाते हैं । त्रिकालदर्शी हैं । इन द्वादशरूप वाले का उल्लेख श्रुतियों में यथा प्राप्य है --

इन्द्रो धाताभग: पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।
अंशुर्विवस्वानस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ।।

इन्हीं रूपों को इस प्रकार वर्णन किया गया है --

आदित्य: प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकर: ।
तृतीयं भास्कर: प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकर: ।।[२]

आदित्य हृदय स्तोत्र में बारह आदित्यों का नाम विभिन्न मासों

१- भविष्यपुराण - ३, १

२- सूर्यस्तोत्र

में व्यक्त किया है । अरुण माघ मास में सूर्य फाल्गुन, चैत्रमास में वेदाङ्गी भानु, वैशाख में तापन, ज्येष्ठ में तपेन्द्र, आषाढ़ में रवि, गभस्तिमान श्रावण में, भाद्र मास में यम, सुवर्णरेताअश्विन, कार्तिक में दिवाकर, मार्गशीर्ष में मित्र और पौष में विष्णुनाम् से अभिहित हैं यथा --

अरुणोमाघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा ।
चैत्र मासे तु वेदांगो भानु वैशाखतापन: ।।

इस प्रकार सूर्योपासना में इन नामों की विस्तृत वर्णन मिलता है । सबसे अधिक नामों का विवेचन सूर्य स्तुति में प्राप्य है ।

(६) कर्मयोग --

इन स्तुतियों में जहां एक ओर सर्वशक्तिमान, अखण्ड तेज राशि वाले सूर्य की आराधना से भक्तिभाव की प्रेरणा मिलती है । वहां दूसरी ओर सूर्य कर्मठता का भी आभास हो जाता है । क्योंकि सूर्य कर्मशीलता, कर्मयोग, किंवालोक संग्रह के अद्वितीय उदाहरण हैं । वे ब्रह्माण्डस्थ मण्डल के चारों निरन्तर परिभ्रमण करते हुए अपने दिव्य-प्रकाश एवं चैतन्य से निष्काम भाव होकर विश्व का कल्याण करते हैं । इन्द्र ने रोहित को कर्म-सौन्दर्य का उपदेश देते हुए कहा भी है कि सूर्य का श्रेष्ठत्व इसलिए है कि वे लोकमंगल के लिए निरन्तर गतिशील रहते हुए आलस्य का बोध नहीं करते यथा श्रुति में वर्णन मिलता है --

'सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरश्चरैवेति ।'[1]

समस्त ज्ञान, विज्ञान के सार सर्वस्व श्रीमद्भागवत गीता में कर्मयोग की शिक्षा सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ने सूर्यनारायण को ही दिया । यथा --

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।'[2]

१- ऐतरेयब्राह्मण - ३३ । ३ । ५

२- भागवत गीता - ४।१

उस दिव्य निष्काम कर्मयोग को इस प्रकार आत्मसात् कर नित्य-नियमित रूप से गतिशील, सर्वसाक्षी सूर्य ने सृष्टि का प्रारम्भ कर कर्मयोग की विलक्षणता का परिचय दिया यथा --

यथा प्रकाशत्येक: कृत्स्नं लोक मिरवि: ।।[१]

सूर्य के उदय होने पर समस्त प्राणी जाग्रत होकर अपने कर्मों में रत होते हैं । सूर्य से मनुष्यों में कर्त्तव्यपरायणता प्राप्त होती है । इसी को श्रीकृष्ण ने कहा --

'कर्मयोगस्तु कामिनाम् ।'

महाभारतोक्त सूर्य स्तोत्र में वर्णित भी है -

'त्वं भानो जगतश्चक्षुरत्वात्मा सर्वदेहि नाम् ।
त्वं योनि: सर्वभूतानां त्वमाचार: क्रियावताम् ।।'[२]

भक्ति में क्रियात्मक भाव का परिचय मिलता है । क्योंकि इन स्तुति में सूर्य की पूजाविधि, जप, व्रतोपाख्यान का वर्णन मिलता है जिससे भक्त कर्मशील होता है । आध्यात्मिक भाव जाग्रत होता है ।

निष्काम कर्म के कारण सूर्य का चारित्रिक आदर्श भी स्पष्ट हो जाता है यथा --

'सुवति प्रेरयति कर्माणि लोकम्'

इस प्रकार इन स्तुतियों में सूर्य का यह रूप प्राप्त होता है ।

१- गीता - १३। ३३, ११। २०। ७

२- महाभारतोक्त - आदित्यहृदय स्तोत्र

(७) कालचक्र प्रणेता --

इन स्तुतियों में यत्र तत्र सूर्य के दिव्यरूप के कारण कालाध्यक्ष, अनन्त असीम काल के विभाजक हैं । कालचक्र प्रवर्तक हैं । सूर्य के कालचक्र प्रणेता रूप नाम - कृत त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सरकर, दिन, रात्रि, यम, क्षण, कला, काष्ठा, त्रिकालदर्शी, ऋतुकर्ता के रूप में वर्णित है यथा --

'कलाकाष्ठानिमेषादिकालज्ञानात्मने नमः ।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमः सूर्याय वेधसे ॥'[१]

यह सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् मार्गों में क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियों से चलते हैं । सूर्य का वेदमय रथ एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन चलता है । इनका संवत्सर नाम का एक चक्र रथ है उसमें मास रूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियां, चौमासे रूप तीन नाभियां आवर्त है । सूर्यदेव का अरुण सारथि है । ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता ये सात गण हैं । इस अक्षयरूप संवत्सरात्मक चक्र में सम्पूर्ण कालचक्र स्थिति है । गायत्री, बृहती, उष्णिक, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप और पंक्ति ये छन्द ही सूर्य के सात घोड़े हैं । इस प्रकार सूर्य स्तुतियों में इन्हीं आधार पर उनका वर्णन मिलता है । यथा --

त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः ।[२]

सूर्य छः राशियों को रात्रि के समय भोगते हैं, छः को दिन के समय । दिन-रात्रि की लघुता दीर्घता सूर्य के राशियों के परिणाम से होती है । उत्तरायण में सूर्य की गति रात्रिकाल में शीघ्र होती तथा दिन में मन्द । दक्षिणायन में उनकी गति विपरीत होती है ।

१- विष्णुपुराण - सूर्यस्तोत्र -

२- ब्रह्मपुराण में सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र ।

पन्द्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठा की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त है तथा तीस मुहूर्तों के सम्पूर्ण दिन-रात्रि होते हैं। ऐसे पन्द्रह रात्रि-दिवस का एक पक्ष और दो पक्ष का एक मास है। दो सौर मास की एक ऋतु और तीन ऋतु का एक अयन होता तथा दो अयन ही एक वर्ष कहे जाते हैं। महाभारतोक्त आदित्यहृदय में सूर्य के काल-चक्र का वर्णन यथा प्राप्य है। माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख तथा ज्येष्ठ, आषाढ, उत्तरायण मास श्रावण भाद्रपद आश्विन, कार्तिक तथा अगहन पौष दक्षिणायन मास हैं।

कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षा मासास्तथाक्षणाः।
कृतं त्रेताद्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः॥[1]
संवत्सरकोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः।

इसी प्रकार का वर्णन सूर्योपनिषद् में भी मिलता है। सूर्य की दिशाएं, आकाश आदि उद्भूत करते हैं। यथा --

'आदित्याद्व्योम दिशो जायन्ते।'[2]

प्रकाश्यं च तथोष्णत्वं च सूर्याग्न्योर्यै च तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्॥[3]

इस प्रकार सूर्य ही सम्पूर्ण विश्व में समय का उद्बोध करने वाले काल-चक्र प्रणेतारूप में अभिहित है।

(८) ग्रहपति --

इन स्तुतियों में सर्वत्र सूर्य को ग्रहों पति, 'ज्योतिषगणानां पति'

१- महाभारतोक्त आदित्य हृदय।

२- सूर्योपनिषद्।

३- साम्बपुराण - अ० ७।

आदि कहा गया है । इन ग्रहों के नाम इन स्तुतियों में प्राप्य हैं । सभी ग्रहों द्वारा प्रदक्षिणीकृत नक्षत्र ग्रह, चन्द्रमा आदि की प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति का स्थान सूर्य में है यथा --

नक्षत्रग्रह सोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ।
चन्द्राषाश्च ग्रहा: सर्वे विज्ञेया: सूर्यसम्भवा: ।।[१]

नवग्रह पूजन में सूर्य अधिष्ठित देव हैं । नवग्रहों में शनि सूर्य के पुत्र हैं । नवग्रह पूजन पीड़ा शान्ति के लिए किया जाता है । लौकिक जीवन ग्रहों के आधीन होता है इसलिए उनके विरुद्ध होने पर ग्रहों का सम्यक् रूप से पूजन होता है । यथा --

एतेन नवग्रहजा दु:खव्याध्य: शान्तिं यान्ति ।[२]

इन ग्रहों का सूर्य से विशेष सम्बन्ध है । कृष्ण पक्ष में क्षीण होती हुई कलाओं वाले चन्द्रमा का शुक्ल पक्ष में पोषण करने वाले सूर्य हैं । जाग्रत रहने वाले अव्यक्त गति भगवान् सूर्य की प्रेरणा से ग्रहनक्षत्रादि ज्योतिगण निरन्तर घूमते रहते हैं । भगवत् सौर सन्दर्भ में वर्णित है । यथा --

`नक्षत्र रूप यम नीचे ठोड़ी में, मुखों मंगल, लिङ्गप्रदेश में शनि, कुम्भ में बृहस्पति, छाती में सूर्य, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, प्राण और अपान में बुध, गले में राहु, समस्त अङ्गों में केतु और रोमों में तारागण स्थित है ।[३]

सूर्य की रश्मियां ही है वे नक्षत्रा ग्रहण करते हैं । यथा मत्स्य

१- साम्बपुराण - ६०

२- वैखानस स्मार्त सूत्र - ४। १३।७

३- भगवतीय सौर सन्दर्भ -

पुराण में वर्णित है --

'सूर्य की सुषुम्ना नाम रश्मि है, वह क्षीण चन्द्रमा को बढ़ाती है । पूर्व दिशा में हरिकेश नामक रश्मि वह नक्षत्रों को उत्पन्न करने वाली है । दक्षिण दिशा में स्थित विश्वकर्मा रश्मि बुध को सन्तुष्ट करती है । पश्चिम दिशा में जो विश्वासु नामक रश्मि, वह शुक्र की उत्पत्ति स्थल है । संवर्धन नाम रश्मि मंगल की उत्पत्ति स्थली है । अर्वसु रश्मि वह बृहस्पति का उत्पत्ति स्थल है । सुराट् नामक रश्मि शनैश्चर की वृद्धि स्थल है ।'[1]

सूर्य के अष्टोत्तरशतनाम् स्तोत्र में ये नक्षत्र यथावर्णित है --

'सौमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारकः एव च ।'[2]

इस जगत् में तेजस तत्व सर्वत्र अनुस्यूत है। सौर मण्डल में व्याप्त सूर्य का ज्योतिष पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि इन स्तुतियों में ज्योतिष पद सूचक यथा --

ज्योतिषे च नमस्तुभ्यं ज्ञानकार्यं नमोनमः ।[3]
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वतापनः ।।

ज्योतिष के अनुसार सूर्य अन्य ग्रहों की भांति किसी न किसी राशि में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं । एक राशि पर सूर्य एक मास रहते हैं । इन्हें सौर मास कहा जाता है । सूर्य ग्रहों में अनुक्रम से चलने वाले हैं । ये सिंह राशि के स्वामी हैं । इनका मूल त्रिकोण भी सिंह राशि है । इनकी उच्चराशि मेष और नीच तुला राशि है । इनका प्रिय रत्न माणिक्य और धातु तांबा है ।

१- मत्स्यपुराण

२- महाभारतोक्त आदित्य स्तव ।

३- आदित्य स्तोत्रम्

इनके पुत्र शनि सब ग्रहों से निर्बल हैं । यह शनि व राहु ही सूर्य के बल को नष्ट करने में समर्थ है । सूर्य के चन्द्र, मंगल, वृहस्पति मित्र ग्रह हैं, बुध, सोम, शुक्र, शनि शत्रुग्रह कहलाते हैं । यह मेष राशि में दशं अंश तक परमोच्च एवं तुला के दशं अंश तक परम नीच माने जाते हैं । इस कारण सिंह, मेष राशि के सूर्य बलवान और तुला राशि के सूर्य दुर्बल माने जाते हैं । जन्मकुण्डली में सूर्य की राशिगत एवं भावगत स्थिति से ही फल का विचार होता है । यह विभिन्न भावों में रहकर मनुष्य की विभिन्न स्थितियों को समुत्पन्न करते हैं ।

इस प्रकार इनकी महिमा ज्योतिष में होने के कारण आदित्य हृदय स्तोत्र में कहा भी गया है —

'नक्षत्रग्रहणताराणामधिपो विश्वभावन ।
ज्योतिगणानां पतये दिनाधिपतये नमः ।।'[१]

(६) सूर्योपासना की व्यापकता -

इन स्तुतियों के आधार पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि सूर्योपासना की व्यापकता अधिक है । क्योंकि स्तुति से उपासक की एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब वह अपने उपास्य के पास ही नहीं बल्कि अपने को उपास्य से अभिन्न अनुभव करता है ।

सूर्य की पञ्चदेवोपासना में विशेष महत्व है । नवग्रहों में विशेष स्थान है । सूर्य का सर्वोपकारी गुण ही उनकी उपासना की अधिक श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करता है । सूर्य की उपासना में दस क्रियाएं हैं -- आसन, शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण, (भूत शुद्धि) अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान न्यास, ध्यान और जप है ।

सूर्य की त्रिकाल उपासना में विशेष महत्व है, जैसा वर्णित है तैत-

---

१- आदित्यहृदय स्तोत्र

मुक्ति और भुक्ति के लिए श्रेष्ठ है -

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ।
ब्राह्मणो विद्वान सकलं भद्रमश्नुते ।।

पातञ्जल योगसूत्र में वर्णित है --

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'

अर्थात् सूर्य के ध्यान करने से ही निखिल भुवन का ज्ञान प्राप्त होता है । उपासक अन्तःकरण की मलिनताओं, वासनाओं, हृदयगत कलुषिताओं का पवित्रीकरण करने के लिए नारायण स्वरूप श्री सूर्य की उपासना बुद्धि को सत्कर्म के लिए प्रेरित करता है । इन स्तुतियों में आदित्य उपासना की प्राचीनता देखी गयी है । यथा --

यः स नारायणो नाम देव देवः सनातनः ।

- महाभारत ५।२५

सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्योन्मुख होकर मन्त्र या स्तोत्र का जप आदि का विधान है । ब्रह्मपुराण में स्पष्ट उद्घोष है कि मनुष्य के मानसिक, वाचिक, शारीरिक पाप सूर्योपासना से नष्ट हो जाते हैं । यथा --

अन्येष्य सञ्चितं चैव सर्वं साङ्ग प्रदापयेत् ।
उदये श्रद्धया युक्त, सर्वपापै प्रमुच्यते ।।

- ब्रह्मपुराण २९ ।४६

इन स्तुतियों में सूर्य को एक चक्रधारी, रक्तकमल पर अधिष्ठित कहा गया है । सूर्य स्वर्ग द्वारा मुक्तिप्रद है ।

भगवान् सूर्य की पृथक्-पृथक् षोडशोपचार विधि से पूजा विधान है । सूर्य का आवाहन उनके ध्यान के साथ किया जाता है । सूर्य की पूजा में अर्घ्यदान एवं प्रदक्षिणा का विशेष महत्त्व है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेव की प्रदक्षिणा

करता है उसके द्वारा सातों द्वीपों सहित पृथवी की परिक्रमा होती है । जो हृदय में धारण कर सूर्य, आकाश की प्रदक्षिणा करता है । वह देवताओं की परिक्रमा करता है । यथा ब्रह्मपुराण में वर्णित है --

भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात्तु प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्त द्वीपा वसुन्धरा ॥[1]

सूर्य की उपासना करते हैं वह ज्ञानमय प्रकाशयुक्त सूर्यलोक को प्राप्त करता है । जो मनुष्य सूर्य की यथासमय सम्यक् प्रकार से उपासना करते हैं उन्हें क्या-क्या नहीं देते हैं । अपने उपासक को दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य, प्रदान करते हैं । यथा --

किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः ।[2]
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स बहूंस्तथा ॥

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य सभी कार्यों के अधिष्ठाता हैं । जीवन का सभी रव उन्हीं पर आश्रित है । इस कारण इन स्तुतियों में इनको सर्वोच्च स्थान है । यथा --

यो देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहितः ।[3]
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

१- ब्रह्मपुराण - २६ । १७-२१

२- स्कन्दपुराण - काशी खण्ड ६। ४७-४८ ।

३- शुक्ल यजुर्वेद - ३१। २० ।

चतुर्थ अध्याय

उत्पत्ति सम्बन्धिनी कथाएं

भारतीय देवी-देवताओं के जन्म, उनके माता-पिता, जातिवंश और कर्म आदि का व्याख्यान प्राचीन साहित्य एवं पुराणों में उपलब्ध होता है। यह सब कुछ आगम और अनुमान के आधार पर ही है। देवताओं के अस्तित्व की सिद्धि कहीं आगम से और कहीं अनुमान से प्राप्त होती है। यहीं इनके अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। कहीं-कहीं तो प्रत्यक्ष प्रमाण से भी इनके अस्तित्व को सिद्ध किया जाता है। क्योंकि यह सत्य भी है जो समस्त शरीरधारियों द्वारा दृष्टव्य है वह अवश्य ही प्रमाण है। इस प्रकार आगम, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार देवी-देवताओं का अस्तित्व भारतीय संस्कृति में स्वीकार किया गया है।

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। इन्हीं से सम्पूर्ण चराचर जगत उत्पन्न हुआ। इन्हीं से यह जगत् स्थित रहते हुए अपने अर्थ में प्रवृत्त होता हुआ तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखाई पड़ता है। अतः सम्पूर्ण वेद और पुराणों में सूर्य परमात्मा, अन्तरात्मा इत्यादि नामों से अभिहित है। ऐसे परमात्मरूप सूर्य आर्य देवता हैं जिनके विषय में एक जिज्ञासा अन्तस्तल को उत्प्रेरित करती रहती है -- उनकी उत्पत्ति कैसे हुई, कहां और किसके द्वारा हुई। इसको प्रमाणित करना पूर्णतया सम्भव नहीं हो सका किन्तु सूर्य की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न कथाएं प्राप्त होती हैं। जिनके साक्ष्य के आधार पर यह व्यक्त किया जाता है कि सूर्य की उत्पत्ति हुई। सम्भवतः वर्णित कथाएं ही प्रमाणित कर सकेंगी। देवता जितने महान् होते हैं कथाएं उतनी अद्भुत होती हैं। पुराणों में वर्णित महामहिम देवता सूर्य की उत्पत्ति कथा न केवल विचित्र है अपितु इसमें सूर्य के वैज्ञानिक आयामों का रूपात्मक विन्यास भी परिलक्षित है होता है।

उत्पत्ति सम्बन्धित कथाएं -

सूर्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित कथाओं का विवेचन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि इन्हीं प्रमाणों के आधार पर ही सूर्य की उत्पत्ति हुई है यथा - मार्कण्डेय पुराण में वर्णन मिलता है --

प्रजापति ब्रह्मा को जब सृष्टि की कामना जागृत हुई और ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम ॐ प्रकट हुआ, भू: भुव: स्व: उत्पन्न हुए । यथा क्रम उनके मह: जन: तप: और सत्य इन चार स्थूल से स्थूलतर रूपों का आविर्भाव हुआ । ये सभी सूर्य की सप्तमूर्ति रूप में प्रतिष्ठित हैं । बाद में ब्रह्मा के मुख से निकले हुए ऋङमय, यजुर्मय और साममय अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और अभिचारिक तेज परस्पर मिलकर उक्त आद्य तेज सूर्य ॐ पर अधिष्ठित हो गये और इस एकत्र तेज-पुंज से विश्व में व्याप्त अन्धकार का नाश हो गया । सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् सुनिर्मल हो गया । दशों दिशाएं किरणों की प्रखर कान्ति से चमकने लगा । इस प्रकार ऋग्यजुसामजनित छन्दोमय तेज मण्डीभूत होकर ॐकार स्वरूप परम तेज के साथ मिल गया और यही अव्ययात्मक तेज विश्व सृष्टि का कारण बना । सूर्य का तेज सृष्टिकाल में ऋङमय ब्रह्मास्वरूप स्थितिकाल में यजुर्मय विष्णु स्वरूप, संहार काल में साममय रुद्र स्वरूप में प्रतिष्ठित रहा ।

परमतेजोमय सूर्य से संसार का अध:, उर्ध्व और मध्य भाग सन्तप्त होने लगे तो सृष्टि कर्ता ब्रह्मा भयत्रस्त हो उठे क्योंकि सूर्य के इस दिव्य तेज से सम्पूर्ण सृष्टि भस्म हो जायेगी और सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी इसकी रक्षा हेतु ब्रह्मा ने सूर्य की स्तुति की । उनकी प्रार्थना पर सूर्य ने अपने तेज का संवरण कर लिया और ब्रह्मा द्वारा रचित विराट् सृष्टि के आदि रूप में उत्पन्न हुए ।[१]

इस कारण इनकी उत्पत्ति इस कथा के आधार पर यह स्पष्ट हो जाती है कि सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने के कारण सूर्य को आदित्य नाम से जाना जाता है ।

तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त उत्पत्ति कथा इस प्रकार है[२] —

सृष्टि की उत्पत्ति से पहले सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल से पूरित था । इस

१- मार्कण्डेयपुराण, द्वितीय खंड, अध्याय ११ । ७-१६

२- तैत्तिरीय आरण्यक १। २३ । १-५

जल पूरित साम्राज्य में सर्वप्रथम जगदीश्वर, प्रजापति ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। तभी उन्हें एक कमलपत्र दिखाई पड़ा। ब्रह्मा जी उस कमल पर जा बैठे। कुछ समय व्यतीत होने के बाद उनके मन में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हुई। अत: सृष्टि के लिए प्रजापति ब्रह्मा तपस्या करने लगे। तपस्या के पश्चात् उनके मन में सृष्टि का सृजन किस प्रकार किया जाय यह भाव उत्पन्न हुआ। इस प्रश्न के उठते ही उनका शरीर कम्पित होने लगा। उस कम्पन से अरुण, केतु एवं वातरशन - इन तीन प्रकार के ऋषियों का आविर्भाव हुआ। नख के कम्पन से वैखानस ऋषियों का जन्म हुआ। केश के कम्पन से वालखिल्यों का निर्माण हुआ। उसी समय प्रजापति के शरीर के सार सर्वस्व से एक कूर्म का आकार स्वयं बन गया। वह कूर्म पानी में संचरण करने लगा। जल में संचरण करने वाले उस कूर्म को देखकर प्रजापति ब्रह्मदेव को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस कूर्म से पूछा -- `तुम मेरे त्वक् और मांस से पैदा हुए हो' तब कूर्म ने उत्तर दिया -- `तुम्हारे मांस आदि से मेरा जन्म नहीं हुआ। मेरा जन्म तो तुमसे भी पहले का है। मैं तो सर्वगत, नित्य, चैतन्य,सनातन- शाश्वतरूप हूं और पहले से ही मैं यहां सर्वत्र और तुम्हारे हृदय में भी विद्यमान हूं।' इस प्रकार कहकर कूर्मधारी नित्य चेतन-स्वरूप परमात्मा ने सहस्त्रशीर्ष, सहस्त्रबाहु और सहस्त्रों पादों से युक्त अपने विश्वरूप को प्रकट कर प्रजापति को दर्शन दिया। तब प्रजापति ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना की -- `हे भगवन् आप मुझसे पहले ही विद्यमान हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे पुराणपुरुष! आप ही इस जगत् का सृजन कीजिए। यह कार्य मुझसे पूर्ण नहीं हो सकेगा।' तब `तथास्तु' कहकर कूर्मरूपी भगवान् सूर्य ने अपनी अ ञ्जलि में जल लेकर और `औषाध्येन' इस मन्त्र से पूर्व दिशा में जल का उपधान किया। उसी उपाधान क्रम से - भगवान् `आदित्य' का जन्म हुआ। उसी समय सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमय हो गया और सृष्टि की रचना हुई।

मार्कण्डेय पुराण की कथा भगवान् सूर्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित इस प्रकार है —

पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्मा ने नाना प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करने

की इच्छा लेकर दाहिने अँगूठे से दक्ष को उत्पन्न किया और बायें अंगूठे से उनकी पत्नी को प्रकट किया । प्रजापति दक्ष की साठ कन्याएं उत्पन्न हुईं उनमें श्रेष्ठ और सुन्दर कन्याएं अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थी ।[१]

ब्रह्मा जी के मारीच नाम से विख्यात जो पुत्र थे उनके पुत्र कश्यप हुए । उनकी तेरह पत्नियां हुईं । वह सब प्रजापति दक्ष की कन्याएं थीं । उनसे दैत्य, देवता नाग इत्यादि बहुत से पुत्र हुए । अदिति ने त्रिभुवन के स्वामी देवताओं को जन्म दिया । दिति ने दैत्य को तथा दनु ने महापराक्रमी एवं भयानक दानवों को उत्पन्न किया । विनता से गरुड और अरुण -- ये दो पुत्र उत्पन्न हुए । खसा के पुत्र यक्ष और राक्षस हुए । कद्रु ने नागों को और मुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया । क्रोधा से कुल्याएं तथा अरिष्टा से अप्सराएं उत्पन्न हुईं । इरा ने ऐरावत आदि हाथियों को उत्पन्न किया । ताम्रा के गर्भ से श्येनी आदि कन्याएं उत्पन्न हुईं । उन्हीं के पुत्र श्येनबाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए । कश्यप मुनि की अदिति के गर्भ से जो सन्तानें हुईं, उनके पुत्र पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदि से यह सारा संसार व्याप्त है । कश्यप अदिति गर्भ से उत्पन्न पुत्र में देवता प्रधान हैं । क्योंकि ब्रह्मदेवताओं में श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्मा जी ने देवताओं को यज्ञ भाग का भोक्ता तथा त्रिभुवन का स्वामी बनाया । देवता सात्विक हैं और दैत्यादि राजस और तामस हैं । इस कारण देवता के सौतेले भाई दैत्य, दानवों और राक्षसों ने एक साथ मिलकर शत्रुता रखते हुए उन्हें कष्ट पहुंचाना आरम्भ कर दिया । इस कारण एक हजार दिव्य वर्षों तक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ । अन्त में देवता पराजित हुए और बलवान दैत्यों तथा दानवों को विजय प्राप्त हुई । अपने पुत्रों को दैत्यों और दानवों के द्वारा पराजित एवं त्रिभुवन के राज्याधिकार से वंचित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया । यह देखकर देवमाता अदिति शोक से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं ।

१- ब्रह्मपुराण - ३२ अध्याय । १-१६

देवमाता अदिति ने भगवान् सूर्य की आराधना के लिए महान् यत्न आरम्भ किया । कठोर नियम का पालन करते हुए नित्य आकाश में स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्य का स्तवन करने लगीं । वरदायक भगवान् सूर्य से प्रार्थना करते हुए बोलीं -- `देव ! आप प्रसन्न हों । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवों ने मेरे पुत्रों के हाथ से त्रिभुवन का राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है । गोपते ! उन्हें प्राप्त कराने के लिए आप मुझपर कृपा करें । आप अपने अंश से देवताओं के बन्धु होकर शत्रुओं का नाश करें जिससे मेरे पुत्र पुन: यज्ञभाग के भोक्ता तथा त्रिभुवन के स्वामी हो जायं ।`

तब भगवान् सूर्य ने अदिति से प्रसन्न होकर कहा --`देवि ! मैं अपने सहस्त्र अंशों सहित तुम्हारे गर्भ से अवतीर्ण होकर पुत्रों के शत्रुओं का नाश करूंगा।` इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये । तदन्तर सूर्य की सुषुम्ना नामवाली सहस्त्र किरणों वाली किरण ने देवमाता अदिति के गर्भ में अवतीर्ण हुई । देव-माता अदिति एकाग्रचित्त से व्रतों का पालन करते हुए गर्भ को धारण किये रहीं । यह देखकर महर्षि कश्यप ने कुछ कुपित होकर कहा -- `तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भ के बच्चे को क्यों मार डालती है ।` यह सुनकर अदिति ने कहा --`यह गर्भ का बच्चा, मैं इसे मार नहीं रही हूं, स्वयं ही अपने शत्रुओं का मारने वाला होगा ।` यह कहकर देवी आदिति ने उस गर्भ को उदर से बाहर कर दिया । वह अपने तेज से प्रज्ज्वलित हो रहा था । उदयकालीन सूर्य के समान तेजस्वी गर्भ को देखकर कश्यप ने प्रणाम किया और आदि ऋचाओं के द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की । उनके स्तुति करने पर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भ से प्रकट हो गये । उनके शरीर की कान्ति कमल पत्र के समान थी । वह अपने तेज पुंज से सम्पूर्ण दिशाओं को उज्ज्वल कर रहे थे । तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यप को गम्भीर आकाशवाणी हुई -- `मुने । तुमने अदिति से कहा था कि इस गर्भ को क्यों मार रही हो ? उस समय तुमने `मारितं अण्डम्` का उच्चारण किया था इसलिए तुम्हारा यह पुत्र `मार्तण्ड नाम से विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्य के अधिकार का पालन करते हुए शत्रुओं का संहार करेगा ।`

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओं को बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये । तब इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिए ललकारा । असुरों के साथ देवताओं का घोर संग्राम हुआ । उनके अस्त्र-शस्त्रों की चमक से तीन लोकों में प्रकाश छा गया । उस युद्ध में भगवान् सूर्य की उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेज से दग्ध होने के कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये । देवताओं ने प्रसन्न होकर तेज के उत्पत्ति स्थान भगवान् सूर्य और अदिति माता का स्तवन किया । उन्हें पूर्ववत् यज्ञ के भाग एवं अधिकार प्राप्त हुए ।

इस प्रकार `मार्तण्ड` नाम से विख्यात सम्भवत: सूर्य का जन्म देवमाता अदिति के गर्भ से हुआ ।

साम्ब पुराण की एक कथा के अनुसार सूर्य की पत्नियों का वर्णन इस प्रकार है ।

भगवान् सूर्य का तेज अग्नि के समान अत्यन्त दीप्तिमान् तथा प्राणि-मात्र के लिए असह्य था । युग निर्माण के समय सम्पूर्ण मुनि एवं महर्षि भगवान् सूर्य के अप्रधर्ष्य तेज से व्याकुल होकर ब्रह्मा जी से प्रार्थना करने लगे । देवताओं, मुनियों एवं महर्षियों की स्तुति से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने त्वष्टा से सूर्य के तेज पर नियन्त्रण करने के लिए कहा । त्वष्टा ने भ्रामी नामक यन्त्र द्वारा भगवान् सूर्य के तेज को नियंत्रित कर व्यवहार में उपयुक्त करने योग्य बना दिया । तत्पश्चात् संज्ञा तथा छाया नाम की दो पत्नियाँ सूर्य के तेज का उपभोग करने लगीं । सूर्यमण्डल के तेज ऊर्ध्व की ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीप्त करने की शक्ति संज्ञा है । सूर्य का तेज अधोगामी लोकों में निवास करने वाले प्राणियों के भीतर ज्ञान एवं क्रियाशक्ति का उद्दीप्त करने वाली शक्ति का नाम छाया है ।

सूर्य का ऊर्ध्वगामी गुण संज्ञा से संयुक्त हो जाने पर सम्पूर्ण संसार के प्राणियों में ज्ञान संवित् चेतना रूप से विकसित होकर नि:श्रेयस की ओर प्रवृत्त होने लगा । अधोगामी तेज छाया शक्ति से संयुक्त होकर संसार के सब प्राणी क्रिया-कर्म की ओर प्रवृत्त होने लगा । अर्थात् संज्ञा से संवित् चेतना ज्ञान द्वारा श्रेय तथा छाया की कर्मपरायण क्रियात्मक होकर प्रेय की ओर प्रवृत्त हुआ । अधोगामी

शक्ति संज्ञा का भगवान् सूर्य के द्युलोक व्याप्त तेज से अनन्य संयोग होने पर विद्या नाम की कन्या शक्ति उत्पन्न हुई । यह वैवात्य शक्ति के नाम से विख्यात् हुई । सूर्य का अधोव्याप्त तेज छाया से संयुक्त होने पर अविद्या नाम की कन्या उत्पन्न हुई ।

भविष्यपुराण की कथा के अनुसार[१] - प्रजापति विश्वकर्मा सूर्य के पास गये और अपनी संज्ञा नाम की कन्या को उनके हाथ में सौंप दिया । संज्ञा के गर्भ से तीन संतानें उत्पन्न हुई । यमुना नाम की एक कन्या और वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र हुए किन्तु संज्ञा सूर्य के तेज न सह सकने के कारण वह अपनी जगह छाया को छोड़कर पिता के घर चली गयी । विश्वकर्मा से यह रहस्य जानकर सूर्य ने अपना तेज घटाने के लिए कहा । विश्वकर्मा सूर्य की आज्ञा से उनके पन्द्रह भाग के तेज से विष्णु का चक्र, महादेव का त्रिशूल, कुबेर की शिबिका, यम का दण्ड और कार्तिकेय की शक्ति बनायी । अनन्तर उन्होंने देवताओं के भी परम प्रभाविशिष्ट अस्त्र बनाये । और इस प्रकार भगवान दिवाकर का तेज घट जाने से वह सूर्य परम मनोहर दिखाई पड़े । संज्ञा सूर्य का वह कमनीय रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ।

ब्रह्मपुराण में सूर्य की पत्नियों के विषय में एक आख्यान प्राप्त होता है । कश्यप पुत्र सूर्य के युवा समपन्न होने पर उनका विवाह संस्कार हुआ । उन्होंने क्रम से तीन विवाह किये - संज्ञा, राज्ञी और प्रभा ये तीन धर्मपत्नियां हैं । राज्ञी रैवत की पुत्री है इनसे रैवत नाम का सूर्यपुत्र हुआ । प्रभा से सूर्य को प्रभात नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । विश्वकर्मा की पुत्री का नाम संज्ञा था । संज्ञा

१- विश्वकर्मा अनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः ।
भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास तस्य वै ।

- भविष्यपुराण ब्रह्मपर्व ७९। ४१ ।

का परिणय भगवान् सूर्य से हुआ । संज्ञा के गर्भ से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ । उन्हीं से सूर्य की जुड़वा सन्तानें - यम और यमुना (कन्या) भी प्राप्त हुईं । देवशिल्पी विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य के तेज को न सहन करने के कारण वड़वा रूप धारण कर उत्तर कुरु चली गयी । जाते समय उसने सूर्य के घर में अपनी प्रतिच्छाया प्रतिष्ठापित कर दी । सूर्य को यह रहस्य ज्ञात नहीं हो पाया । अत: प्रतिच्छाया से भी सूर्य को सावर्णिमनु और शनि तथा कन्या तपती, विष्ठि नामक सन्तानें उत्पन्न हुईं । एक दिन छाया के विषमता पूर्ण व्यवहार से संज्ञा के पुत्रों ने सूर्य भगवान से शिकायत की । भगवान् सूर्य क्रोध से तमतमा उठे । उन्होंने कहा --`भामिनि ! अपने पुत्रों के प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है ।` किन्तु फिर भी प्रतिच्छाया का संज्ञा के पुत्रों के साथ व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । तब विवश होकर संज्ञापुत्र यमराज ने सूर्य से विमाता होने का भेद खोल दिया । तब माता छाया ने क्रुद्ध होकर यम को शाप दे दिया `तुम शीघ्र ही प्रेतों के राजा होगे ।` भगवान् सूर्य इस शाप से दुखित हुए । अत: उन्होंने अपने तेजोबल से इसका सुधार किया, जिसके बल पर आज यम धर्मराज के रूप में पाप और पुण्य का निर्णय करते हैं । साथ ही सूर्य का छाया के प्रति क्रोध भी शान्त नहीं हुआ । प्रतिशोध की भावना से छाया के पुत्र शनि को सूर्य ने शाप दिया -- पुत्र ! माता के दोष से तुम्हारी दृष्टि में क्रूरता भरी रहेगी। कोपभाजन होने के कारण शनि सबका अहित करते हैं ।

अब भगवान् सूर्य ध्यानावस्थित होकर संज्ञा का पता लगाने का प्रयत्न करने लगे । अत: तत्काल उन्होंने अश्व का रूप धारण कर संज्ञा रूप वडवा साहचर्य प्राप्त किया । इस प्रकार वडवा रूप विश्वकर्मा पुत्री संज्ञा से दो पुरुष रत्न

१- प्रमाण
भागवत् ६। ४१ छाया शनैश्चरं लेभे ।
महाभारत १। ७५ । ३० यम सूर्य के पुत्र हैं ।

उत्पत्ति हुई । यही दो पुरुष रत्न अश्विनीकुमारों के नाम से विख्यात हैं । यह दो पुत्र नासत्य और दस्त्र नाम के हैं । इस प्रकार तदनन्तर पिता विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को कम किया और तब सूर्य और संज्ञा साथ रहने लगे ।[1]

इस प्रकार भगवान् सूर्य की उत्पत्ति और वंश माहात्म्य आदि का विशेष विवरण भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व में, वाराहपुराण के आदित्योत्पत्ति नामक अध्याय, विष्णुपुराण के द्वितीय अंश के दशम अध्याय में, कूर्मपुराण के ४० वें अध्याय में मत्स्यपुरण के १०१ वें अध्याय तथा ब्रह्मपुराण में प्राप्य है । विभिन्न पुराणों में सूर्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित आख्यान हैं ।

सूर्यवंश का विस्तार—

पौराणिक वंशावलियों में सूर्यवंश का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । यही वह वंश है जिसमें धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में चमकने वाले अनेक नक्षत्र प्रकट हुए । आदि कवि वाल्मीकि ने सूर्यवंश के बारे में लिखा है --

'सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा ।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ।।
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम ।।'[2]

सर्वप्रथम भगवान् विष्णु जो अनादि देव हैं, जिनकी नाभि से ब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ तथा जिनके वंश सूर्यदेव हुए, आने वाली सन्तति इनके ही कारण सूर्यवंशी कहलायी ।

१- ब्रह्मपुराण - २६ । ६१

२- वाल्मीकि रामायण - १।५।१-३

सूर्य के प्रतापी पुत्र वैवस्वत मनु हुए । इनकी ही सन्तान होने से सभी नर-नारी मानव कहलाये । मनु के दस पुत्र हुए – इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृगदिष्ट, करूष और पृषध्र । ये सभी पिता के समान तेजस्वी और बलशाली थे । मनु की इला नाम की एक कन्या थी । इला का विवाह बुध से हुआ । इन्हीं से पुररवा का जन्म हुआ । इसके बाद इला ने अपने को पुरुष रूप में वर्णित कर लिया । पुरुष में इला का नाम सुद्युम्न हुआ । सुद्युम्न को तीन बलशाली पुत्र हुए -- उत्कल, गय और विनताश्च ।

नाभाग से परमवैष्णव अम्बरीष का जन्म हुआ । धृष्ट से धार्ष्टक वंश का विस्तार हुआ । शर्याति को सुकन्या और आनर्त नाम की सन्तानें प्राप्त हुईं ।

इन दस पुत्रों में इक्ष्वाकु की वंशपरम्परा ही पृथ्वी पर विद्यमान है । शेष नौ पुत्रों की वंशपरम्परा एक या दो पीढ़ियों के बाद समाप्त हो गई ।

इक्ष्वाकु के पुत्र विकुक्षि थे । ये कुछ समय तक देवताओं के राज्य पर आधिपत्य जमाये रहे । इनके पुत्र का नाम ककुत्स्थ था । ककुत्स्थ से पृथु, पृथु से युवनाश्व, युवनाश्व से श्रावन्तक हुए । इसी ने श्रावन्तक नगरी बसायी । श्रावन्तक से बृहदश्व और बृहदश्व से कुवालश्व हुए । इनका दूसरा नाम धुन्धमार भी है । क्योंकि इन्होंने धुन्धमार नामक दैत्य का वध किया । इनके तीन पुत्र हुए -- दृढाश्व, दण्ड और कपिल । दृढाश्व से हर्यश्व और प्रमोद का जन्म हुआ । हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से सेहताश्व की उत्पत्ति हुई । सेहताश्व के दो पुत्र हुए - अकृशाश्व और रणाश्व । रणाश्व के पुत्र का नाम युवनाश्व था । युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता थे । मान्धाता के दो पुत्र रत्न हुए -- पुरुकुत्स और मुचुकुन्द । पुरुकुत्स से त्रसदस्यु का जन्म हुआ इनका दूसरा नाम सम्भूत था । इनके पुत्र का नाम सुधन्वा था । सुधन्वा से त्रिधन्वा और त्रिधन्वा से तरूण हुए । तरुण से सत्यव्रत का जन्म हुआ । सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चन्द्र था । हरिश्चन्द्र से रोहिताश्व, रोहिताश्व से वृक, वृक से बाहु और बाहु से

राजा सगर की उत्पत्ति हुई । राजा सगर की दो पत्नियां थीं । प्रभा नाम की स्त्री को और्व मुनि की कृपा से साठ हजार पुत्र हुए । भानुमती नाम की स्त्री से राजा सगर के द्वारा असमंजस नाम का एक पुत्र हुआ । असमंजस के पुत्र अंशुमान और अंशुमान के राजा दिलीप हुए । दिलीप के पुत्र भागीरथ । भागीरथ से नाभाग, नाभाग से अम्बरीष और अम्बरीष से सिन्धुद्वीप का जन्म हुआ । सिन्धुद्वीप के श्रुतायु, श्रुतायु के ऋतुपर्ण, ऋतुपर्ण के कल्माषवाद, कल्माषवाद के सर्वकर्मा और सर्वकर्मा के अनरण्य के पुत्र हुए । अनरण्य के निघ्न, निघ्न के दिलीप, दिलीप के रघु, रघु से अज और अज से चक्रवर्ती सम्राट दशरथ उत्पन्न हुए ।

दशरथ की तीन रानियां थीं - कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा । इनके चार पुत्र हुए - राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । श्रीराम का विवाह सीता से हुआ । उनके लव और कुश दो पुत्र हुए । भरत को तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मण को अंगद और चन्द्रकेतु, शत्रुघ्न को सुबाहु और शत्रुघाती नाम के पुत्र हुए ।

कुश से अतिथि का जन्म हुआ । अतिथि से निषध और निषध से नल की उत्पत्ति हुई । नल से नभ, नभ से पुण्डरीक, पुण्डरीक से सुधन्वा, सुधन्वा से देवनीक, देवनीक से अहिनाश्व और अहिनाश्व से सहस्त्राश्व हुए । सहस्त्रा के पुत्र चन्द्रलोक । चन्द्रलोक से तार पीड़, तारपीड से चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरि से भानुरथ उत्पन्न हुए ।

इस प्रकार सूर्य से उत्पन्न वंश का वर्णन विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त होता है जिनका विशद विवेचन देना असम्भव है । फिर भी यह वंशावली कई पुराणों के आधार पर व्यक्त की गयी है क्योंकि सूर्यवंश के

अग्नि पुराण - १६वें अध्याय
भविष्य पुराण - ब्रह्म पर्व ८६वें अध्याय

प्रधान राजाओं का वर्णन पुराणों में है और जिन राजाओं के कुछ अद्भुत कर्म हैं उनके चरित्रों का विवरण विशेष रूप से हुआ है ।

सूर्य की महिमा से सम्बन्धित कथाएं —

पुराणों में सूर्य की महिमा से सम्बन्धित अनेक कथाएं प्राप्त होती हैं । जिनका विवेचन इस प्रकार है —

महाभारत के वनपर्व में एक आख्यान इस प्रकार है[1] :- महाराजा युधिष्ठिर अत्यन्त सत्यवादी, सदाचारी, और धर्म के पालक थे । दैवात् वे द्यूतक्रीडा में सम्मिलित हुए । युधिष्ठिर द्यूतक्रीड़ा में अपना राज्य, धनधान्य एवं सम्पत्ति हार गये और उन्हें बारह वर्षों का वनवास जूए में पराजित के रूप में मिला । महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी व पंचपाण्डव के साथ वनवास चल दिये । महाराजा युधिष्ठिर के साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणों का दल भी चल पड़ा । युधिष्ठिर के मना करने पर भी वह ब्राह्मण अपने धर्मात्मा राजा के बिना अपना जीवन व्यर्थ मानते थे, ऐसा कहकर दृढ़ निश्चय से चल दिये । वन में ब्राह्मणों के दल को देखकर महाराज युधिष्ठिर उनके अतिथि सत्कार के लिए चिन्तित हुए और अपने पुरोहित धौम्य ऋषि की सेवा में उपस्थित हुए । धौम्य ऋषि ने सूर्य की स्तुति व स्तोत्र अनुष्ठान, पूजाविधि बतायी । महाराजा युधिष्ठिर सूर्योपासना के कठिन नियमों का पालन करते हुए सूर्य के अष्टोत्तरशत् नाम स्तोत्र का पाठ किया तथा सूर्यदेव से प्रार्थना करते हुए कहा —

`हे सूर्यदेव आप अखिल जगत् के नेत्र तथा समस्त प्राणियों की आत्मा हैं । आप ही मोक्ष के द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओं की गति हैं ।`

इस प्रकार विस्तार से प्रार्थना करने पर युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने मनोगत भाव को समझकर `अक्षय पात्र` प्रदान किया । उस पात्र

1- महाभारत वन पर्व ३। ३६ - ३८

प्रधान राजाओं का वर्णन पुराणों में है और जिन राजाओं के कुछ अद्भुत कर्म हैं उनके चरित्रों का विवरण विशेष रूप से हुआ है ।

<u>सूर्य की महिमा से सम्बन्धित कथाएं —</u>

पुराणों में सूर्य की महिमा से सम्बन्धित अनेक कथाएं प्राप्त होती हैं । जिनका विवेचन इस प्रकार है —

महाभारत के वनपर्व में एक आख्यान इस प्रकार है[१] :- महाराजा युधिष्ठिर अत्यन्त सत्यवादी, सदाचारी, और धर्म के पालक थे । दैवात् वे द्यूतक्रीडा में सम्मिलित हुए । युधिष्ठिर द्यूतक्रीड़ा में अपना राज्य, धनधान्य एवं सम्पत्ति हार गये और उन्हें बारह वर्षों का वनवास जुए में पराजित के रूप में मिला । महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी व प व पाण्डव के साथ वनवास चल दिये । महाराजा युधिष्ठिर के साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणों का दल भी चल पड़ा । युधिष्ठिर के मना करने पर भी वह ब्राह्मण अपने धर्मात्मा राजा के बिना अपना जीवन व्यर्थ मानते थे, ऐसा कहकर दृढ़ निश्चय से चल दिये । वन में ब्राह्मणों के दल को देखकर महाराज युधिष्ठिर उनके अतिथि सत्कार के लिए चिन्तित हुए और अपने पुरोहित धौम्य ऋषि की सेवा में उपस्थित हुए । धौम्य ऋषि ने सूर्य की स्तुति व स्तोत्र अनुष्ठान, पूजाविधि बतायी । महाराजा युधिष्ठिर सूर्योपासना के कठिन नियमों का पालन करते हुए सूर्य के अष्टोत्तरशत् नाम स्तोत्र का पाठ किया तथा सूर्यदेव से प्रार्थना करते हुए कहा —

'हे सूर्यदेव आप अखिल जगत् के नेत्र तथा समस्त प्राणियों की आत्मा हैं । आप ही मोक्ष के द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओं की गति हैं ।'

इस प्रकार विस्तार से प्रार्थना करने पर युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने मनोगत भाव को समझकर 'अक्षय पात्र' प्रदान किया । उस पात्र

१- महाभारत वन पर्व ३। ३६ - ३८

से उन्होंने ब्राह्मणों की अतिथि सेवा की । उस `अक्षय पात्र` की यह विशेषता थी जब तक द्रौपदी भोज्य पदार्थ का भोग नहीं करती थी तब तक भोज्य पदार्थ उस पात्र में रहते थे ।

इस प्रसङ्ग में यह भी लिखा गया जो कोई भी मन को संयम कर एकाग्र चित्त से स्तोत्र का पाठ करता है उसे दुर्लभ वरदान प्राप्त होता है ।

पद्मपुराण में वर्णित सूर्य की महिमा पर आधारित एक कथा इस प्रकार है[1] —

`मध्यप्रदेश में भद्रेश्वर नाम के एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुए । तपस्याओं और नाना प्रकार के व्रतों से पवित्र राजा भद्रेश्वर प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि व गुरुजनों की सेवा करते थे । एकबार उनके बायें हाथ में श्वेत कुष्ठ हो गया । वैद्यों ने बहुत कुछ उपचार किया किन्तु उनके इस रोग का निदान न हो सका तब राजा ने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों व मन्त्रियों को बुलाकर कहा --

`विप्रगण ! मेरे हाथ में एक पाप का चिन्ह प्रकट हो गया है, जो लोक में निन्दित होने के कारण मेरे लिए दु:खद हो रहा है । अत: मैं किसी महान पुण्यक्षेत्र में जाकर शरीर का परित्याग करना चाहता हूं ।` ब्राह्मण बोले महाराज के राज्य परित्याग से सारी प्रजा नष्ट हो जायेगी । इसलिए उन्होंने राजा को सूर्य आराधना के लिए कहा ।

वह राजा प्रतिदिन अपने आचार्य, रानियों, अन्त:पुर के रक्षक व दास वर्ग के सामने सूर्य की अर्घ्य चढ़ाकर विधिवित करते थे ।

इस प्रकार पूजित सूर्य भगवान् प्रसन्न होकर राजा के पास आकर बोले— राजन ! तुम्हारे मन में जिस वस्तु की इच्छा हो उसे वरदान के रूप में मांग लो । राजा ने कहा — `प्रभो ! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान प्रदान करना चाहते हैं तो मेरे रोगों का अन्त कीजिए तथा मन्त्री पुरोहित ब्राह्मण सभी शुद्ध होकर

कल्पपर्यन्त मेरे दिव्यधाम में निवास करें ।'

इस प्रकार राजा भद्रेश्वर सूर्य की स्तुति से रोगों से मुक्त हुआ ।

स्कन्दपुराण में वर्णित सूर्य की महिमा के विषय में एक आख्यान इस प्रकार है[1] —

एकबार बलिष्ठ दैत्यों द्वारा देवता बार-बार युद्ध में पराजित होने लगे । देवताओं ने दैत्यों के आतंक से सदा के लिए छुटकारा पाने के निमित्त भगवान् सूर्य की स्तुति की । स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् भास्कर उपस्थित हुए । देवताओं ने उनसे प्रार्थना की -- बलिष्ठ दैत्य हम पर आक्रमण कर हमें परास्त कर मेरे सब अधिकार छीन लिए हैं । अत: आप हमारे इस कष्ट को दूर करें । भगवान् सूर्य ने अपने से उत्पन्न एक शिला दी और कहा -- वाराणसी जाकर विश्वकर्मा द्वारा इस शिला की शास्त्रोक्त विधि से मेरी मूर्ति बनवाओ । छेनी से तराशते समय जो प्रस्तर खण्ड निकलेंगे वही तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र होंगे उनसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे ।

देवताओं ने वैसा ही किया और उस प्रभावी व तेज से अस्त्र से दैत्यों पर विजय प्राप्त की । मूर्ति तराशते समय जो स्थान बन गया वही उत्तराकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसका वर्णन आदित्यपुराण में यथा है —

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणु याज्ञवल्क्यान्वित: ।
लभते वाञ्छितां सिद्धिमुत्तरार्कप्रसादत: ॥[2]

भविष्यपुराण में साम्बादित्य कथा इस प्रकार है[3] —

किसी समय देवर्षि नारद जी भगवान् कृष्ण के दर्शनार्थ द्वारकापुरी

1- स्कन्दपुराण काशीखण्ड ४७ । ४९

2- आदित्यपुराण, रविवार व्रत कथा ३६-३८ ।

3- भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व

पधारे । उन्हें देखकर सब यादव कुमारों ने अभ्युत्थान एवं प्रणाम कर उनका सम्मान किया, किन्तु साम्ब ने अपने अत्यन्त सौन्दर्य के गर्व से न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम किया । प्रत्युत उनकी वेशभूषा और रूप पर हंस दिया । साम्ब का यह अविनय देवर्षि को अच्छा नहीं लगा और साम्ब से कहा -- `वत्स भगवान् कृष्ण को मेरे आगमन की सूचना दे दो । साम्ब ने सोचा, एक तो मेरे प्रणाम न करने से यह खिन्न हुए, फिर भी इनकी अनुनय को न मानूं तो यह शाप दे देंगे । उधर भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त में मातृमण्डल के मध्य में स्थित हैं । वहां दूर से पिता कृष्ण को प्रणाम कर नारद जी के आगमन की सूचना दी । साम्ब के पीछे-पीछे नारद जी वहां चले गये । गोपिकाएं आश्चर्य में पड़ गईं । नारद जी उनके विकृति रूप को देखकर भगवान् कृष्ण से बोले -- `भगवान् साम्ब के अतुल सौन्दर्य से ही इनमें कुछ चाञ्चल्य का आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है ।`

दुर्भाग्यवश भगवान् कृष्ण ने क्रोध में साम्ब को बुलाकर यह शाप दिया- `एक तो तुम असमय मेरे निकट चले आये । दूसरा यह कि सब गोपिकायें तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुईं, इसलिए तुम कुष्ठ रोग से आक्रान्त हो जाओ ।

कुष्ठ रोग के भय से साम्ब कांप गये और भगवान् के समक्ष मुक्ति के लिए अनुनय-विनय करने लगे । श्रीकृष्ण ने पुत्र को निर्दोष जानकर दुर्दैववश प्राप्त रोग से विमुक्ति के लिए सूर्य की आराधना करने को कहा । भक्तिभाव से साम्ब ने सूर्य-स्तुति की और भगवान् सूर्य के आशीर्वाद से रोग से मुक्त होकर कान्तकाय हो गये ।

मार्कण्डेयपुराण की कथा भी सूर्यमहिमा पर आधारित है यथा --[1]

पूर्वकाल में दम के पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा थे । राजा

१- मार्कण्डेयपुराण - १०९ अध्याय ।

धर्म के अनुकूल रहकर विषयों का उपभोग करते हुए प्रजा का पालन करते । दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी राज्यवर्धन की पत्नी थी । एक दिन अचानक राजा के पके केशों पर रानी की नजर पड़ी वह रोने लगी । राजा ने उससे रोने का कारण पूछा उसने राजा के पके बालों को दिखाकर खेद व्यक्त किया । राजा ने हंसकर कहा -- शुभे ! मैंने सर्वधर्म का पालन करते हुए राज्य चलाया । यह मेरे मस्तक का बाल वृद्धावस्था का सूचक है । अतः मुझे वन में आश्रय लेना चाहिए ।

महाराज की बात सुनकर वहां उपस्थित अन्य पुरवासी ने कहा - महाराज ! महारानी को रोने की आवश्यकता नहीं । रोना तो हम समस्त प्राणियों को चाहिए क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास चले जायेंगे । आपने इतने वर्षों तक पृथ्वी का पालन भलीभांति किया है । आपके चले जाने से सब नष्ट हो जायेगा ।

राजा ने उनको भलीभांति समझाकर ज्योतिषियों को बुलाकर पुत्र-राज्याभिषेक के लिए शुभ दिन निकलवाया । यह जानकर ब्राह्मणों ने राज्यवर्धन के प्रति अनुराग होने के कारण यह विचार किया कि एकमन एकाग्रचित्त से भगवान् सूर्य की आराधना करके महाराज की आयु के लिए प्रार्थना करें । इस प्रकार निश्चय कर नदी के तट पर निवास करते हुए सूर्य की आराधना में सब लग गये ।

सूर्य की आराधना यत्नपूर्वक करते हुए देखकर गन्धर्वराज सुदामा ने गुप्त विशाल वन में सूर्य स्तुति करने को कहा । क्योंकि वह परमसिद्धिकारी सिद्ध क्षेत्र है । द्विजवर विशाल वन में जाकर एकाग्रचित्त से सूर्य की आराधना की । तीन महीने में भगवान् सूर्य प्रसन्नकर कान्तियुक्त ब्राह्मण का वेश धारण कर प्रकट हुए । सूर्यदेव के स्पष्ट स्वरूप का दर्शन कर भक्तिभाव से विनीत होकर प्रणाम करते हुए बोले - सूर्यदेव यदि आप हम भक्ति से प्रसन्न हैं तो राज्यवर्धन नीरोग, शत्रुविजयी और सुन्दरकेशों से युक्त, आयुष्मान बनायें । सूर्य 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये । ब्राह्मण खुश होकर महाराज के पास लौट आये । सारी बातें

यथवत् सुनाई । रानी बड़ी प्रसन्न हुई किन्तु राजा चिन्तित हो उठे और बोले --

मैं अकेला दस हजार वर्षों तक जीवित रहूंगा । मेरे साथ तुम नहीं रहोगी पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट, बन्धु-बान्धव इत्यादि मेरे सामने मरेंगे । ऐसी दशा में क्या मैं धिक्कार के योग्य नहीं रहूंगा । महारानी ने कहा, महाराज आप ठीक कहते हैं । ऐसे समय जो उचित हो वही कीजिए । राजा ने कहा, देवि ! पुरवासियों ने प्रेमवश मेरे ऊपर जो उपकार किया है उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूंगा ।

इसलिए यदि सूर्य की कृपा से पुत्र पौत्र प्रपौत्र जीवित रह सकें तो मैं राज्य सिंहासन पर बैठूंगा ।

ऐसा कहकर राजा और रानी शिलाक्षक को गये वहाँ सेवापरायण हो भगवान् भानु की स्तुति की । एक वर्ष तपस्या करते हुए बीतने पर भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए । उन्होंने राजा को इच्छानुसार व वर दिया । वर पाकर राजा अपने नगर लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया ।

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणि की कथा इस प्रकार हरिवंशपुराण में वर्णित है यथा --

सुप्रसिद्ध महाराज यदु की वंशपरम्परा में अनमित्र के पुत्र निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई । वह शत्रुओं की सेनाओं को जीतने में पूर्ण समर्थ थे । १

सूर्यनारायण सत्राजित् के प्राणों के समान प्रिय मित्र थे ।
यथा -- तस्य सत्राजित: सूर्य सखाप्राणसमोऽभवत् ।

१- हरिवंशपुराण १।३८।१४
तेजो मण्डलिनं देवं तमेव पुरत: स्थितम् ।
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्त: सखीनीवाक्यनमने ।
[illegible] मे भगवत् [illegible] ।।

एक समय की बात है कि रथियों में श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रि के अन्त में स्नान एवं सूर्योपस्थान करने के लिए समुद्र तट पर गये जिस समय सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये । सर्वशक्ति-सम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डल के मध्य में विराजमान थे जिससे सत्राजित् को सूर्यनारायण का रूप स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा था । उन्होंने सम्मुख उपस्थित सूर्य भगवान् से कहा -- ज्योतिर्मय ग्रहादि के स्वामिन् । मैं आपको जैसे प्रतिदिन आकाश में देखता हूं, यदि वैसे ही तेजमण्डल धारण किये हुए आपको अपने सामने अब भी खड़ा देखूं तो फिर आप तो मित्रतावश मेरे यहां पधारे । इसमें विशेषता ही क्या हुई ।

इतना सुनते ही भगवान् सूर्य ने अपने कण्ठ से उस मणि रत्न को उतार कर अलग स्थान पर रख दिया । तब राजा सत्राजित ने स्पष्ट अवयवों वाले सूर्य के शरीर रूप को देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान सूर्य के साथ मुहूर्त भर वार्तालाप किया । इसके पश्चात् लौटते समय राजासत्राजित् ने मित्रता के कारण प्रार्थना कि भगवन् आप जिस दिव्य मणि से तीनों लोकों को सदा प्रकाशित करते हैं वह स्यमन्तकमणि मुझे देने की कृपा करें । सूर्यनारायण ने कृपा करके वह तेजस्वी मणि राजा सत्राजित को दे दी । उस मणि को धारण करने पर नगरवासियों ने उन्हें सूर्य स्वरूप समझा । कहते हैं वह मणि अच्छकुल वाले व्यक्ति के घर में रहने पर सोने की वर्षा करती है तथा व्याधि का किञ्चित् मात्र भय नहीं रहता है ।

भगवान् सूर्य की सुख सम्पदा को प्रदान करने की शक्ति व रोग नाशक शक्ति की कथा स्कन्दपुराण में इस प्रकार वर्णित है[1] —

प्राचीनकाल में पञ्चगङ्गा के निकट `गभस्तीश्वर` शिवलिंग एवं भक्तमंगलकारिणी मंगला गौरी की स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्य

१- त्वद्भक्तानां नृणां कश्चिन्न व्याधि प्रभविष्यति ।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदर्चनात् ।।

ने हजारों वर्ष तक कठोर तपस्या की । सूर्य स्वरूपत: त्रैलोक्य को तप्त करने में समर्थ है । तीव्रतम तपस्या से वह और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे । उनके इस प्रखरतम् तेज से सारा संसार कांप उठा । यदि वह ही सर्वविनाशक बन गये तो किसी की शरण ली जाय ? इस प्रकार जगत् को व्याकुल देखकर जगत् के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देने के लिए सूर्य के निकट गये । सूर्य भगवान् अत्यन्त निश्चल एवं समाधि में इस प्रकार निमग्न थे उन्हें अपनी आत्मा की भी सुधि नहीं थी । उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिव को उनकी तपस्या के प्रति महान आश्चर्य हुआ । तपस्या से प्रसन्न होकर उन्होंने सूर्य को पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे । जब भगवान् शिव ने अपनी वर्णी हाथों से सूर्य का स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्श से सूर्य ने अपनी आंखें खोली और उन्हें दण्डवत् प्रणामकर उनकी स्तुति की ।

भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर कहा - सूर्य । उठो, सब भक्तों के क्लेश को दूर करो तुम मेरे ही स्वरूप हो । तुमने मेरा और गौरी का स्तवन किया, इसलिए स्तवनों का पाठ करने वालों को सब प्रकार की सुख सम्पदा, पुत्र पौत्रादि की वृद्धि, व शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं प्रिय वियोगजनित दु:ख कदापि नहीं होंगे । तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुई, शरीर नहीं इसलिए तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा । तुम्हारे पूजन करने से मनुष्यों को कोई व्याधि नहीं होगी । रविवार के दिन तुम्हारा दर्शन करने से दारिद्र्य सर्वथा मिट जायेगा ।

इस प्रकार सूर्य रोगविनाशक व सुखसम्पदा को देने वाले हुए ।

सूर्य की संध्योपासना से सम्बन्धित कथा महाभारत के आदि पर्व में इस प्रकार है[1]- जरत्कारु ऋषि तपस्वी और मनस्वी थे । उन्होंने सर्पराज

१- शक्तिरस्ति न चापैक मयि पुत्रे पितामहा: ।
वस्तुं गन्तुं यथाकालमिति मे बुद्धि वर्तते ॥
(महाभारत आदि पर्व ४७ ।२५-२६)

वासुकि की बहिन अपने ही नाम की नाग कन्या से विवाह किया । विवाह के समय उन्होंने उस कन्या से यह शर्त की थी यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूंगा । एक बार की बात है कि ऋषि अपनी धर्मपत्नी के गोद में सिर रखे लेटे हुए थे कि उनको नींद आ गई, देखते देखते सूर्यास्त का समय हो आया ? किन्तु ऋषि जागे नहीं । ऋषि पत्नी ने सोचा कि ऋषि की संध्योपासना का समय हो गया । यदि ऋषि को जगाती हूं तो शर्त के अनुसार मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूं तो सन्ध्या की वेला टल जाती है और ऋषि के धर्म का लोप होता है । धर्मप्राणा ऋषि-पत्नी ने अन्त में ऋषि को जगाने का निर्णय लिया और सोचा भले ही ऋषि मेरा परित्यागकर दें परन्तु उनकी धर्म की रक्षा अवश्य होनी चाहिए । और ऋषिपत्नी ने ऋषि को जगा दिया । ऋषि की इच्छा-विरुद्ध होने पर उन्होंने रोष प्रकटकर पत्नी को परित्यागने का निर्णय लिया । किन्तु जगाने का कारण बताने पर ऋषि ने कहा -- मैंने आज तक कभी संध्या की वेला का अतिक्रमण नहीं किया । फिर क्या आज सूर्य भगवान् मेरे अर्घ्य व सन्ध्योपासना बिना अस्त हो सकते हैं ?` कभी नहीं ।

इस प्रकार सूर्य की संध्योपासना की महिमा बताकर ऋषि ने पत्नी को क्षमा कर दिया और सूर्यभक्त होने के कारण ऋषि को सूर्य ने पत्नी को त्यागने से रक्षा की ।

सूर्य के ज्ञान और दान की प्रशंसा वेद की कथाओं से आज तक के साहित्य में सुशोभित है । सूर्य देव द्वारा वेद-वेदाङ्ग कर्मयोग की शिक्षा दी जाने की एक कथा आदिकाव्य में प्रमाण है । वह इस प्रकार है —

अञ्जना देवी के अंक में त्रिभुवन गुरु शिव का पवनपुत्र हनुमान रूप में अवतरित हुए । बाल हनुमान को एकबार बड़ी भूख लगी और उन्होंने उदीयमान सूर्य को लाल फल समझकर उन्हें निगल लिया । इसी प्रसंग का स्मरण हनुमान चालीसा में इस रूप में है —

जुग सहस्त्र जोजन पर भानू ।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू ।

- हनुमानचालीसा

सूर्य देव ने उन्हें निर्दोष ही नहीं वरन् दोषानभिज्ञ भी समझा और जलाया नहीं । यथा --

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।
कार्यं चास्मिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः ।।

- वाल्मीकि रामायण ७।३५।३०

उस दिन सूर्यग्रहण होने वाला था । राहु हनुमान जी के डर से भागा और सुरेन्द्र से शिकायत करने गया कि उसका भक्ष्य दूसरे को क्यों दे दिया देवराज ऐरावत पर चढ़कर राहु को आगे कर घटनास्थल को चले । राहु उनके सहारे सूर्यदेव की ओर बढ़ा था कि हनुमान् जी उसे बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े । वह इन्द्र इन्द्र कहता हुआ भागा । देवराज 'डरो मत' कहते हुए आगे ऐरावत को बढ़ाया कि हनुमान जी ने उसे बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े । इन्द्र ने डर से बचाव के लिए वज्र प्रहार कर दिया जिससे हनुमान जी का चिबुक कुछ टेढ़ा हो गया और तनिक मूर्च्छा भी आ गई । इससे पवनदेव को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने पुत्र के लिए क्रुद्ध होकर अपनी गति बन्द कर दी जिसके कारण सबके प्राण संकट में पड़ गये । इसके बाद सब देवता ब्रह्माजी को साथ लेकर पवनदेव के पास गये और उन्हें प्रसन्न किया तथा हनुमान जी को आशीर्वाद और अपने-अपने शस्त्रों से अवध्यता का वर दिया । उस समय सूर्य देव ने भी उन्हें अपने तेज का शतांश देते हुए शिक्षा देकर अद्वितीय विद्वान बना देने का आश्वासन दिया । और कुछ समय पश्चात अध्ययन-अध्यापन आरम्भ हुआ जिसका वर्णन आदि कवि ने किया —

अस्यैव वानरेन्द्र हनुमान् व्याकरण सीखने के लिए सूर्य के सम्मुख प्रश्न

करते हुए, महाग्रन्थ को याद करते हुए उदयाचल से अस्ताचल चले जाते थे ।

हनुमान जी ने सूर्य भगवान् से सम्पूर्ण विद्याएं शीघ्र ही पढ़ ली । एक भी शास्त्र उनके अध्ययन से अछूता नहीं रहा । वानरेन्द्र ने (तत्कालीन)सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और संग्रह सहित महाभाष्य ग्रहण कर उनमें सिद्धि प्राप्त की । इनके समान शास्त्र विशारद और कोई नहीं है । ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान सब में बृहस्पति के समान हैं ।[१] इस कारण तुलसीदास ने भी हनुमान जी को `ज्ञानि नामग्रगण्यम् और सकलगुणनिधानम्` माना ।

अध्ययन के उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणा की इच्छा हनुमान ने सूर्य से व्यक्त की । निष्काम सूर्यदेव ने शिष्य सन्तोषार्थ अपने अंशोद्भूत सुग्रीव की सुरक्षा की कामना की । हनुमान ने गुरु की इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव की सुरक्षा में छाया की भांति रहे । इस प्रकार यह कथा सूर्य के `वेदाङ्ग` शिक्षा से सम्बन्ध रखती है ।

वाल्मीकि रामायण में एक कथा सूर्य शत्रु के नाशक रूप में प्रतिष्ठित है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी रावण के साथ युद्ध करते समय श्रान्त होकर चिन्तित हो उठे और सोचा कैसे युद्ध में विजय पा सकेंगे । तब महर्षि अगस्त्य वहां उपस्थित थे, उन्होंने श्रीराम को सूर्य की उपासना व आदित्य हृदय का पाठ करने का उपदेश दिया और उसका फल भी बताया है -

`राघव विपत्ति में फंसा हुआ, घने संकटों में भटकता हुआ और भयां

१- स सूत्र वृत्त्यर्थ पदं महार्थं, ससंग्रहं सिध्यति वै कपीन्द्रः ।
न ह्यस्य कश्चित्सदृशोऽस्ति शास्त्रे ।
वैशारदे छन्दगतौ [illegible]
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्र[illegible]ऽयं हि गुरुं सुराणाम्
(वाल्मीकिरामायण [illegible])

से किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति भी इस आदित्य-हृदय का जप करके सारे दुःखों से पार पा जाता है।'

इस प्रकार भगवान् राम ने सूर्य की उपासना व आराधना कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

इस कथा से भगवान् सूर्य की महिमा की अभिव्यक्ति स्वतः हो जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त कथाएं विशिष्ट एवं प्रचलित हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। अन्य कथाओं का वर्णन करना सम्भव नहीं हो सका।

सूर्य की नित्याराधना विधि —

हिन्दू धर्म समस्त सृष्टि में सभी देवों के पूर्णत्व में समाहित होकर आध्यात्मिक रूप प्रदान करने की प्रक्रिया को सदैव महत्व देता रहा है। जहां एक ओर अनेक देवी-देवताओं का उद्भव माना वहां तीनों लोकों में अपने को समाहित करने एवं तीनों लोकों के नियन्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करने की उत्कट अभिलाषा जाग्रत हुई। इसलिए जिस विधि से अपने उपास्य की अनुकम्पा के लिए उनकी उपासना की। उसी को आदर्श मानकर उपास्य की उपासना की जाती है। इन उपासना पद्धतियों में सूर्योपासना का विशिष्ट स्थान है। सूर्य की आराधना-विधि का वर्णन इस प्रकार है —

भगवान् सूर्य को स्थापित कर दायें हाथ पर जल लेकर अभिषेक करे कुश से ; पत्ते के दोनें अथवा पलाश पत्र से सर्वाधिकारी सूर्य के अष्टाक्षर मन्त्र को पढ़े।[1] सुन्दर ताम्र पात्र में गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल,

---

१- अष्टाक्षर मंत्र 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम' ।

- भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में।

कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पंचगव्य अथवा गो-घृत से पूर्ण करके मूलमन्त्र से पूर्वमुख बैठकर देव देव भगवान् सूर्य को नमस्कार पूर्व अर्घ्य दे । इससे दस हजार अश्वमेध यज्ञों का सर्वसम्मत फल प्राप्त है । ताम्रपात्र सूर्य-पूजा में सब कामनाओं की सिद्धि करने वाले होते हैं ।[1]

अर्घ्य देकर उनका जप करें और अपने हृदय में आत्मरूप उनका ध्यान करके अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक, रेचक इन तीनों प्राणायामों की क्रिया की जाती है, इसके बाद आत्मा की शुद्धि के लिए वायव्य, आग्नेय, माहेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओं में यथाक्रम वारुण जल से पवित्र की जाती है । तीन बार जल प्रेक्षण कर जप करके उस मन्त्र अष्टाक्षर से स्नान के द्रव्यों का सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध अक्षत, पुष्प आदि के द्वारा भगवान् सूर्य की पूजा का विधान है ।

सूर्य की प्रिय मुद्राएं --

भगवान् भुवन भास्कर के सम्मुख सूर्य को अर्घ्य अर्पित करने एवं नमस्कार के लिए मुद्राओं का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन रहा है । सूर्य की पूजा में मुद्राओं का विशेष महत्त्व है । क्योंकि यह मुद्राएं देवता को आनन्द देने वाली व सम्पूर्ण कर्मों की प्रसिद्धि के लिए होती हैं । सूर्य की मुद्राएं उनके रूप पर आधारित है जिसका वर्णन इस प्रकार है[2]--

(१) पद्ममुद्रा -[3]

दोनों हाथों को सम्मुख करके, सामने झुककर अंगुलियों को

१- ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थ सिद्धये ।

२- साम्बपुराण - ३८ अध्याय, पृष्ठ २१६

३- हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोन्नतांगुली ।
तलान्तर्मिलितांगुष्ठौ मुद्रैषा पद्मांकिता ॥

उठाकर, उन दोनों को अंगूठे से मिलाने की प्रक्रिया पद्ममुद्रा कही जाती है। सूर्य पद्मासन पर स्थित रहते हैं। इस कारण इस मुद्रा का विशेष महत्व है।

(२) चक्र मुद्रा -

दाहिने और बायें हाथ से सर्प के फण की तरह आकार बनाने की क्रिया को चक्रमुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सूर्य के चक्र धारण करने के कारण की जाती है।

(३) रथ मुद्रा -

तर्जनी अंगुलियों को थोड़ा-थोड़ा मोड़े रखे और अंगूठे को सिर पर रखे तथा कनिष्ठिका अंगुलियों को पृष्ठ लग्न करने की प्रक्रिया को विश्वात्मा सूर्य के रथ की मुद्रा कही जाती है।

(४) अश्व मुद्रा -

दोनों अंगूठों में मध्यमा और अनामिका को मिलाकर शेष को ऊंचा रखने की प्रक्रिया सूर्य के अश्वों की मुद्रा कही जाती है।

(५) अरुण की मुद्रा -

दोनों हाथों को पीठ से सटाते हुए कनिष्ठका की गोदी छूते हुए अंगूठे को सीधा खड़ा रखे यह सूर्य के सारथि अरुण की मुद्रा कही जाती है।

(६) अंकुश मुद्रा -

बायें हाथ की कलाई पर स्पर्श होने की क्रिया अंकुश मुद्रा कहलाती है जिससे अश्वों को नियंत्रित किया गया।

(७) कवच मुद्रा -

अंगुलियां एक दूसरी तरह से मिलती हुई होनी चाहिए।

सूर्य के व्रत -

सूर्य पूजा के साथ-साथ सूर्य के व्रत का भी विशेष महत्व है क्योंकि यह स्वर्ग, नीरोगता, सुख का प्रदाता, संसार से उद्धार करने वाले हैं । सप्तमी को सूर्य का जन्म होने के कारण मंगलदायिनी, शुभ सप्तमी के नाम से प्रसिद्ध है । ये सभी सप्तमियां,देवर्षियों द्वारा पूजित है, अनन्त फल देने वाली है । कल्याण, विशोक, कमल आदि सप्तमियां हैं ।

सूर्यव्रत मे शुक्ल पक्ष का विशेष महत्व है । मत्स्यपुराण की एक कथानुसार - अमृतपान के समय पन्द्रह दिन कृष्ण पक्ष में देवताओं द्वारा अमृत पीने से क्षीण हुए चन्द्रमा का एक-एक भाग सूर्य की सुषुम्ना नामक किरण द्वारा परिवर्धित होकर पूर्ण चन्द्रमा अपनी कला से शुक्लपक्ष में वृद्धि को प्राप्त हुआ था । और सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा श्वेतवर्ण दिखाई देता है इस कारण शुक्ल पक्ष की सप्तमी को व्रतों का आधार माना है । भविष्यपुराण में वर्णित है - सूर्य के सप्ताश्व ही सप्तरश्मियां होने के कारण सप्तमी तिथि का महत्व है ।

(१) कल्याण सप्तमी -

वैशाख मास की शुक्लपक्ष की रविवार सप्तमी को कल्याणिनी या विजया नाम से कहा जाता है । इस दिन प्रातःकाल उठकर गोदुग्ध युक्त जल से स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए और पूर्वाभिमुख होकर चावलों से अष्टदल कर्णिका आकार वाली कमल की रचना करें । पुष्प और अक्षत द्वारा क्रमशः दल और केसरयुक्त सूर्य की स्थापना करते हुए मन्त्रों का उच्चारण - `तपनाय नमः' से पूर्वदल पर `मार्तण्डाय नमः' से अग्निकोण स्थित दल पर `दिवाकरायनमः' से दक्षिणादल पर, `विधात्रे नमः' से नैऋत्यकोण के दल पर `वरुणाय नमः' से पश्चिम दल पर, `भास्कराय नमः' से वायव्य-कोण वाले दल पर, `विकर्तनाय नमः' से उत्तर दल पर, `रवये नमः' से

ईशानकोण स्थित आठवें दल पर और 'परमात्मने नमः' से आदि,मध्य और अन्त में सूर्य का आवाहन करके स्थापित करना चाहिए। नमस्कारान्त से सुशोभित इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दन से भलीभांति पूजन करे। वेदी पर भी व्याहृति मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक, गुड़ नामक से भक्ति भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। विसर्जन के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदि के द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजाकर तिल से भरा पात्र और सुवर्ण दान करना चाहिए। रात्रि में शयन करने के पश्चात प्रातःकाल उठकर स्नान व जपादि के बाद ब्राह्मण के साथ घी दूध से बने पदार्थों का भोजन करना चाहिए। घृतपूर्ण पात्र सुवर्ण सहित और जल से भरा घट दान करते हुए यह कहना चाहिए - मैं इस व्रत से परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।

इसी विधि से प्रत्येक मास में सभी व्रतों का अनुष्ठान करना चाहिए। तेरहवें मास में भी दान करना चाहिए[१]। इस विधि से किया गया अनुष्ठान समस्त पापों से मुक्त कर सूर्यलोक में प्रतिष्ठित करता है। इस लोक में अनन्त आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। दुष्ट ग्रहों का शमन करने वाली है। जो मनुष्य इस लोक में इस व्रत को सुनता या पढ़ता वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

(२) विशोक सप्तमी[२] — इसे रूप सप्तमी भी कहते हैं। माघ मास में शुक्ल पक्ष

१- सर्वपाप विनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते,
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह चाश्नुते।
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याण सप्तमीम्।
शृणोति पठते चैव सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥

— मत्स्यपुराण, [illegible] अध्याय

२- यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत्
तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥
— मत्स्यपुराण, [illegible] अध्याय

की सप्तमी तिथि को यह व्रत किया जाता है । तिलमिश्रित जल से स्नान का स्वर्ण निर्मित कमल को स्थापित कर 'अर्काय नः' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए लाल कनेर के पुष्प और दो लाल रंग के वस्त्रों द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए । ऐसा उच्चारण करें -- आदित्य आपके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत सदा शोक रहित रहता उसी प्रकार प्रत्येक जन्म में विशोकता और भक्ति प्राप्त हो और ब्राह्मण को षष्ठी तिथि को ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए । दो वस्त्र और गुड़ पूर्ण स्वर्ण कमल युक्त पात्र को ब्राह्मण को निवेदित करना चाहिए । तिल और नमक रहित अन्न का भोजन मौन धारण कर सप्तमी तिथि को करना चाहिए । यह व्रत एक वर्ष तक निरन्तर करना चाहिए ।

व्रत के अन्त में स्वर्ण निर्मित कमलयुक्त कलश में उपकरणों सहित शय्या कपिला गौ का दान करना चाहिए । जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है वह परमगति को प्राप्त होता है । अनेक जन्मो तक शोक नहीं प्राप्त होता है । रोग और दुर्गति से रहित मनोरथ को पूर्ण कराने वाला है । निष्काम भाव से किया हुआ अनुष्ठान से परब्रह्म को प्राप्त करता है ।

(३) <u>फल सप्तमी</u>[१] -

मार्गशीर्ष नामक शुभ मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को स्वर्ण कमल तथा स्वर्ण की सूर्य मूर्ति बनाकर संध्या काल में (भगवान् भास्कर प्रसन्न हों इस भाव से ब्राह्मण को दान देना चाहिए और अष्टमी के दिन ब्राह्मणों को फलसहित दूध से बने हुए अन्न का भोजन कर भक्तिपूर्वक पूजा करें । यह पुनः

१- यथा न विफलाः कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे ।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु मे सप्त जन्मसु ॥

- मत्स्यपुराण, ७६ अध्याय

कृष्ण पक्ष की सप्तमी तक करना चाहिए। उस दिन भी उसी क्रम से विधिपूर्वक उपवास कर स्वर्णमय कमल के स्वर्णनिर्मित फल का दान करना चाहिए। शक्कर भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक दोनों पक्ष की सप्तमी के दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा, वरुण ये मुझ पर प्रसन्न हों। मार्गशीर्ष से प्रारम्भ कर प्रत्येक मास की सप्तमी तिथि को फलदान करना चाहिए।

व्रत की समाप्ति पर वस्त्र और आभूषण आदि द्वारा सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा करें और स्वर्णमय कमल सहित शक्कर भरा हुआ कलश दान करना चाहिए। उस समय ऐसा भाव रखना चाहिए - सूर्यदेव, जिस प्रकार भक्तों की कामनाएं कभी विफल नहीं होती उसी प्रकार मुझे भी सप्तजन्मान्त अनन्त फल की प्राप्ति हो।

जो मनुष्य इस फलदायिनी फल सप्तमी का व्रत करता है वह समस्त दुष्कर्म से विनिष्ट हो जाता है। व्रत-विधान के श्रोता पाठकगण भी कल्याण के भागी होते हैं।

(४) शर्करा सप्तमी[१]-

वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को यह व्रत किया जाता है। इस दिन प्रातःकाल श्वेत तिल से युक्त जल से स्नान कर श्वेत पुष्पों की माला और श्वेत चन्दन धारण करना चाहिए। वेदी पर कमलकुसुम

१- व्रत कल्पद्रुम, पृष्ठ २६६

शर्करासप्तमी पुण्यं वाजिमेधफलप्रदा।
सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्र प्रवर्धिनी ॥

- मत्स्यपुराण, ७७ अध्याय

से कर्णिका सहित कमल का चित्र बनाना चाहिए । 'सवित्रे नमः ' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए धूप, गन्ध निवेदित करना चाहिए । उस पर शक्कर से परिपूर्ण पात्र सहित जलपूर्ण कलश स्थापित कर स्वर्णमयी मूर्ति को प्रतिष्ठित कर श्वेत वस्त्र से सुशोभित कर श्वेत पुष्प और चन्दन द्वारा वदयमाण मन्त्र के उच्चारण कर पूजन करें । सूर्यदेव, विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियों के लिए अमृत तुल्य फलदायक हैं । मुझे शान्ति प्रदान कीजिए । पञ्चगव्य पान कर उसी कलश के पार्श्वभाग में भूमि पर शयन करना चाहिए । सूर्यसूक्त का जप करना चाहिए । अष्टमी तिथि को वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करना चाहिए । शक्कर, घी, दूध से बने हुए पदार्थ का ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । मौन रहकर तेल नमकरहित भोजन करना चाहिए, शक्कर पूर्ण कलश और उपकरणों के साथ शय्या गौ दान करना चाहिए । स्वर्ण अश्व बनाकर दान करना चाहिए । (अगहनी धान) शालि धान, शर्करा सूर्य के द्रव्य है ।

यह शर्करा सप्तमी अश्वमेध यज्ञ के समान फलदायिनी समस्त दुष्ट ग्रहों को शान्त करने वाली और पुत्र पौत्र की प्रवर्धिनी है । अनुष्ठ से सद्गति को प्राप्त करता है । एक कल्प तक स्वर्ग में निवास कर अन्त में परमपद को प्राप्त हो जाता है ।

(५) कमलसप्तमी --

वसन्त ऋतु में शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को यह व्रत किया जाता है । इस व्रत का नाम लेने मात्र से सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं । इस दिन पीली सरसों युक्त जल से स्नान करें । किसी तिल से पूर्ण पात्र में एक स्वर्णमय कमल स्थापित करना चाहिए । दो वस्त्रों से उसे आच्छादित कर गन्ध, पुष्पादि द्वारा भुवन भास्कर की आराधना करनी चाहिए ।

'नमस्ते पद्महस्ताय ते नमः, विश्वधारिणे ते नमः ।
दिवाकर तुभ्यं नमः प्रभाकर ते नमोऽस्तु ।।'

इस मंत्र का उच्चारण कर सूर्य को प्रणाम करना चाहिए। तदनन्तर सायंकाल में वस्त्र, पुष्प-माला और आभूषण आदि से ब्राह्मण का पूजन कर जलपूर्ण कलश युक्त कमल व कपिला गौ-दान करना चाहिए। अष्टमी तिथि को ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। स्वयं तेल, मांस रहित अन्न का भोजन करना चाहिए। प्रत्येक मास में शुक्लपक्ष की सप्तमी स्वर्णमय कमल, शय्या, गौ, भोजन, आसन, दीप आदि सामग्रियों का दान करना चाहिए।

कमल सप्तमी व्रत से अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और सूर्यलोक में प्रतिष्ठित होता है। सप्तलोकों में भ्रमण करते हुए परमगति को प्राप्त होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रत का श्रवण पाठ करता है वह भी अमल लक्ष्मी का उपभोग कर अन्त में गन्धर्व विद्याधर लोक का भागी होता है।[1]

(६) मन्दार सप्तमी -[2]

यह समस्त पापों की विनाशिनी एवं सम्पूर्ण कामनाओं की प्रदात्री है, माघ महीने शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को थोड़ा आहार करके रात्रि में शयन करें। पुनः षष्ठी तिथि को दिनभर उपवास करें, रात में ब्राह्मणों की

१- अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कमलसप्तमीम्,
लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके महीयते ॥
- मत्स्यपुराण, ७८ अध्याय

२- व्रतरत्न में पृष्ठ २७२ - ८० में इस तिथि को अचला सप्तमी, रथसप्तमी, रथाङ्ग सप्तमी, महासप्तमी कहा गया है।

नमो मन्दार नाथाय मन्दारभवनाय च।
त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसार सागरात् ॥
- ७९ अध्याय

पूजा कर मन्दार पुष्प का भक्षण करें, तत्पश्चात सप्तमी तिथि को शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावें। तदन्तर सोने के आठ मन्दार पुष्प और पुरुषाकार स्वर्ण की सूर्य मूर्ति कमल से सुशोभित तांबे के पात्र में काले तिलों में अष्टदल कमल की रचना करें। तदन्तर स्वर्णमय मन्दार पुष्पों द्वारा कमल के आठ दलों पर वक्ष्यमाण मन्त्रों का उच्चारण करके सूर्य का आवाहन करें यथा - `भास्कराय नमः` से पूर्वदल पर `सूर्याय नमः` से अग्निकोण स्थित दल पर `अर्कायनमः से दक्षिण दल पर, `अर्यम्णे नमः` से नैऋत्य कोण वाले दल पर, वेदधाम्ने नमः` से पश्चिमदल पर, चण्डभानवे नमः` से वायव्यकोण स्थित दल पर, `पूष्णे नमः` से उत्तरदल पर उसके बाद `आनन्दनाय नमः` से ईशान कोण वाले दल पर स्थापना करके कर्णिका के मध्य में `सर्वात्मने नमः` इस मन्त्र से मूर्ति स्थापित करें तथा श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कर नैवेद्य, पुष्प-माला फल आदि से उनकी अर्चना करें।

इस प्रकार मूर्ति का पूजन कर सब वेदज्ञ ब्राह्मण को दान कर दें, स्वयं पूर्वाभिमुख मौन होकर तेल और नमकरहित अन्न का भोजन करें। एक वर्ष तक इसी विधि से पूजा करें, मूर्ति को कलश पर रखकर धन-सम्पत्ति के अनुसार गौ दान करें तथा यह प्रार्थना करें - सूर्यदेव आप मन्दार के स्वामी हैं और मन्दार का भवन आपको नमस्कार है आप संसार रूपी सागर से उद्धार कीजिए। जो मनुष्य इस मन्दार सप्तमी का अनुष्ठान करता है वह पापरहित सुखपूर्वक स्वर्ग में आनन्द का उपभोग करता है। जो मनुष्य अभीष्ट फल प्रदान करने वाली इस मन्दार सप्तमी के व्रत को पढ़ता अथवा श्रवण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

(७) शुभ सप्तमी[१] —

यह रोग, शोक और दुःखों से मुक्त कराने वाली है, पुण्यप्रद आश्विन

१- अनेन विधिना विद्वान् कुर्याद् यः शुभसप्तमीम् ।
तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवन्ति जन्मनि जन्मनि ॥
- भविष्यपुराण ५० अध्याय

मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को स्नान जपादि तथा ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर शुभ सप्तमी का व्रत आरम्भ करें। सुगन्धित, धूप, पुष्प-माला, चन्दन आदि भक्तिपूर्वक कपिला गौ की पूजा करें और यह प्रार्थना करें - हे देवि आप सूर्य से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकों की आश्रयभूता हैं आपका शरीर सुशोभन मंगलों से युक्त है आपको सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति के निमित्त नमस्कार है।'

तदनन्तर एक तांबे के पात्र में एक सेर तिल भर दे और एक आसन पर स्वर्णमय वृषभ को स्थापित कर चन्दन, माला, गुड़, फूल, फल, घी एवं दूध से बने हुए नाना प्रकार के नैवेद्य से पूजन करें। संध्याकाल में 'अर्यमा प्रसन्न हों' यह कहकर ब्राह्मण को दान कर दें। पञ्चगव्य खाकर भूमि पर शयन करें। स्वर्णमय बैल और स्वर्णनिर्मित गौ का दान करना चाहिए। एक वर्ष की समाप्ति में शय्या, बैल, गुड़, वर्तन, आसन तथा एक सेर तिल से पूर्ण तांबे के पात्र ब्राह्मण को दान करें।'

जो मनुष्य इस शुभसप्तमी का अनुष्ठान करता है उसे प्रत्येक जन्म में विपुल लक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है। वह देवलोक में गणाधीश्वर होकर अप्सराओं और गन्धर्वों द्वारा पूजित होता हुआ निवास करता है। वह सप्त द्वीपों का अधिपति होता है। यह एक हजार ब्रह्महत्या और भ्रूण हत्या के पापों का नाश करने वाली है। सात वर्षों तक अनुष्ठान करता है वह विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है।

(८) विवस्वान व्रत[१] --

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को भगवान् भास्कर विवस्वान् के नाम से विख्यात हुए थे। इस दिन रथ के चक्र के समान सुन्दर गोल मण्डल वाली मूर्ति प्रतिष्ठित कर भगवान् विवस्वान की गन्ध पुष्प, चन्दन

१- विष्णुधर्मोत्तरपुराण, द्वितीय खंड, पृष्ठ ४०।

धूपादि से विधिपूर्वक पूजन करे तथा विभिन्न प्रकार के नैवेद्यों को अर्पित करे। इस व्रत को करने से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है।

(६) चैत्रमासीय व्रत[१] —

यह व्रत शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को किया जाता है। यह आरोग्य प्रदान करने वाली है। एकान्त स्थान में गृह को गोबर से लीप,पोकर उसके मध्य में एक वेदी बनाकर उस पर अष्टादल में निम्नलिखित मूर्तियां स्थापित करें।

पूर्व की दिशा में कमलदल पर, ऋतुकारक दो गन्धर्व, अग्निकोण के कमलदल पर दो गन्धर्व, ऋतुकारक, दक्षिण दिशा के कमलदल पर दो अप्सराएं, नैऋत्यकोण के कमलदल पर दो राक्षस, पश्चिम दिशा के कमलदल पर ऋतुकारक दो महानाग, वायव्य कोण के कमलदल पर दो यातु धान, उत्तर दिशा के कमलदल पर दो ऋषि और ईशान कोण के कमलदल पर सूर्य एवं ग्रहों का स्थापन करें। उन सबका यथाक्रम पृथक्-पृथक् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से पञ्चोपचार पूजन करके सूर्य के निमित्त घी की १०८ आहुतियां और अन्य सब के निमित्त ८८ आहुतियां दे तथा प्रत्येक के निमित्त एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराये तथा व्रतोपरान्त, स्वयं भोजन करे,जो मनुष्य शुक्ल पक्ष की प्रत्येक सप्तमी को एक वर्ष तक पर्यन्त करने वाले को सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।

(१०) रविवार व्रत[२] —

सूर्य के व्रत में रविवार का व्रत बहुत महत्वपूर्ण है। लाल चन्दन या रोली से मिश्रित जल व लाल पुष्प से सूर्य को अर्घ पात्र में पूर्वाभिमुख होकर अर्घ

१- विष्णुधर्मोत्तरपुराण : द्वितीय खंड, पृष्ठ ४०

२- भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व में

प्रदान करें । तत्पश्चात `ॐ आं हृदयाय नमः` इस मन्त्र से सर्व अङ्गों में न्यास करें । दक्षिण की ओर `दण्डी` का वाम भाग में `पिङ्गल` का पूजा करें, ईशान कोण में `ॐ गंगणपतयेनमः` से गणेश की अग्निकोण में गुरु की पूजा करें । पीठस्थ कमल `रां दीप्तायै नमः` इस मन्त्र से `रीं सूक्ष्मायै नमः` से सूक्ष्म की `रूं जयायै नमः` [illegible] `जया की `रें भद्रायै नमः` भद्रा की, `रैं विभूतये नमः` से विभूति की, `रों विमलायै नमः` से विमल की `रौं अमोघायै नमः` से अमोघा की `रं विद्युतायै नमः` विद्युता की पूर्व आदि दिशाओं में मध्यभाग में `रः सर्वतोमुखयेनमः` से आराधना स्तुति के पश्चात उनकी स्तुति करते हुए कहे - प्रभो आप मेरे अपराधों और त्रुटियों को क्षमा करें । सूर्य की पूजा लाल कमल पर लाल वस्त्र प्रदान करें । चन्दन, गुगुल का धूप, दीप, नैवेद्य, जप से तथा स्तुतिमुद्रा से नमस्कार करें ।

यह परम पवित्र और हितकर व्रत है । यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक, स्वर्ग को मोक्ष देने वाला है । यदि रविवार शुक्ल सप्तमी को हो तो अत्यन्त अक्षय व्रत कहलाता है ।

सूर्य संक्रान्ति—[1]

यह अत्यन्त पौराणिक त्यौहार है । यह माघ के महीने में मकर संक्रान्ति के नाम से विख्यात है । रविवार संक्रान्ति के दिन हो तो परम पवित्र मानी जाती है । कहा जाता है कि सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनों में बारह राशियों में संक्रमण से संक्रान्ति होती है । धन, मिथुन, मीन और कन्या राशि की संक्रान्ति षडशीति कहलाती है । वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशि पर जो संक्रान्ति होती है उसे विष्णुपदी कहते हैं । षडशीति संक्रान्ति पुण्यकाल छियासी घड़ी पूर्व, विष्णुपदी में सोलह और बाद

१- भविष्यपुराण - ब्राह्मपर्व में ।

उत्तरायण व दक्षिणायन आरम्भ होने से कोटि कोटि गुना अधिक होता है। इन दोनों अयनों के दिन किया गया कर्म अक्षय होता है ।

मकरसंक्रान्ति में सूर्योदय के पहले स्नान, तर्पण, दान पूजन अक्षय होता है । स्वर्ण कमल के द्वारा विभिन्न नामों से आदित्य (पूर्व) अंसरसी (दक्षिण) सावित्री (दक्षिण-पश्चिम) तपन (पश्चिम) भग (उत्तर पश्चिम) मार्तण्ड (उत्तर) विष्णु उत्तर पूर्व से पूजा की जानी चाहिए । लाल चन्दन, कमल, जल से अर्घ्य देना चाहिए ।

इस प्रकार जो मनुष्य इस दिन इनकी पूजा करता है वह पापों से विमुक्त होकर परमगति को प्राप्त करता है । सूर्यलोक को जाता है । धन, मिथुन, मीन और कन्या राशि की संक्रान्ति को षडशीति कहते हैं । वृष, वृश्चिक, कुम्भ तथा सिंह राशि पर सूर्य संक्रान्ति विष्णुपदी है । षडशीति का फल हजारगुना और विष्णुपदी का लाख गुना होता है । मकरसंक्रान्ति में सूर्योदय से पहले स्नान से दस हजार गौदान का फल मिलता है । तुलादान और शय्यादान का अक्षय फल होता है । इस तिथि को तिल की, गौ का दान करने से सात जन्म के पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में अक्षय सुख का भागी होता है ।

पूजा के उपचार -

किसी भी देवता की पूजा में उपकरणों का विशेष महत्त्व है । बिना किसी उपकरणों के पूजा या अनुष्ठान की सिद्धि पूर्णतया नहीं होती है । क्योंकि उपकरणों के समर्पण करने से देवता प्रसन्न होते हैं और मनोवांछित फल प्रदान करते हैं । कुछ आचार्यों ने पूजा के अनेक विधान बताये हैं । वे निम्नलिखित हैं —

(१) पूजा के पंचोपचार -

शास्त्रों में पूजा के पंचोपचार वर्णित हैं । अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या ।

१- अभिगमन -

देवता के स्थान को साफ करना, लीपना, निर्माल्य हटाना । ये सब कर्म अभिगमन हैं ।

२- उपादान -

गन्ध, पुष्प आदि पूजा सामग्री का संग्रह उपादान है ।

३- योग -

इष्ट देव की आत्मरूप से भावना करना योग है ।

४- स्वाध्याय -

मन्त्रार्थ का अनुसन्धान करते हुए जप करना, स्तोत्र आदि का पाठ करना, गुण, नाम लीला आदि का कीर्तन करना, वेदान्त शास्त्र आदि का अभ्यास करना ये स्वाध्याय है ।

५- इज्या -

उपचारों द्वारा अपने आराध्यदेव की पूजा करना इज्या है ।

ये पांच प्रकार की पूजाएं क्रमश: सृष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और मुक्ति देने वाली कही जाती है ।

(२) पूजा के दस उपचार -

इसके अन्तर्गत पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधु, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य स्तोत्र पाठ किया जाता है ।

(३) पूजा के षोडशोपचार -

पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, स्तवपाठ, तर्पण और नमस्कार होते हैं ।

(४) पूजा के अष्टादशोपचार -

इसके अन्तर्गत आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दर्पण, चन्दनानुलेपन और नमस्कार विधि होती है।

(५) पूजा के विविध चौंसठ उपचार --

इसमें पूजा के ६४ उपचार हैं जो सर्वोपरि है।

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, सुगन्धित तैल अभ्यंग, मज्जन शाला प्रवेश, मज्जनमणि, पीठोपवेशन, दिव्य स्नान, उद्वर्तन, उष्णोदक स्नान, कनक कलश स्थित सर्व तीर्थ निषेचन, धौतवस्त्र परिमार्जन, अरुणदुकूल परिधान, अरुण-दुकूलोत्तरीय, आलेपमण्डप प्रवेशन, आलेपमणि, पीठोपवेशन, चन्दागुरु, कुंकुम, मृगमद, कर्पूर, कस्तूरी, रोचन, आदिव्यगन्ध सर्वांगानुलेपन, केशभार, कालागुरु, धूपमल्लिकामालती, जाती चम्पक, अशोक शत पत्र, पूगकुरी, पुन्नागकल्हार यूथी सर्वर्तुकुसुम, मालाभूषण। भूषण मण्डप प्रवेशन, भूषणमणि पीठो प्रवेशन, नवरत्न मुकुट, चन्द्रशकल। सीमान्त सिन्दूर, तिलकरत्न, काला जन कर्णपाली युगल, नासाभरण, अधरयावक, ग्रन्थनभूषण, कनक चित्रपदक, महापदक, मुक्तावली, एकावली, देवच्छन्दक, केयूर युगचतुष्टक, वलयावली, ऊर्मिकावली, का चीदामकटिसूत्र, शोभाख्याभरण, पादकटक युगल, रत्ननूपुर, पादांगुली, एक करपाश, अन्यकरे, अंकुश, इतरकरों में पुण्ड्रेक्षुचाप पर कर में पुष्पबाण, श्रीमन्माणिक्य पादुका, स्वसमानेव शाखावरण, देवताओं के साथ सिंहासना-

---

१- कल्याण उपासना अंक, पृष्ठ २१२.

भविष्यपुराण - अध्याय १५, १६८, १०७, १६०, ८२, १३८, १६८, ७० हैं।

रोहण, कामेश्वरपर्यंकोपवेशन, अमृतासन, आचमनीय, कर्पूरवाटिका, आनन्दोल्लास, विकासहास, मंगलारात्रिश्वेत छत्र, चामरयुगल, दर्पण, ताल वृन्त, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पान, पुनराचमनीय।[1]

सूर्य भगवान् के प्रिय पुष्प -

देवोपासना के समस्त उपकरणों में पुष्प सर्वोत्तम दिव्य साधक कहा जाता है यथा शारदा तिलक में वर्णित है — देवस्य मस्तकं कुर्यात्तु सुमोहितं सदा।

पुष्प शब्द की सुन्दर निरुक्ति कुलार्णव तन्त्र में वर्णित है कि पुण्य को बढ़ाने वाला, पापों को कम करने वाला और श्रेष्ठ फल को प्रदान करने से यह पुष्प कहा जाता है। यथा --

> पुण्यसंवर्धनाच्चापि पापौघपरिहारतः।
> पुण्य कलार्थ प्रदानाच्च पुष्पमित्यमिधीयते।।[2]

सूर्य की पूजा में प्रयुक्त विभिन्न पुष्प विभिन्न फल को देने वाले हैं यथा[3] --

सूर्य भगवान को मल्लिका पुष्प अर्पण करने से मनुष्य भाग्यवान

१- उद्धृत कल्याण उपासना, अंक २२६, पृष्ठ संख्या
   भविष्यपुराण, अध्याय - १३६, १२६, १२७, १२१, १२९, ११८, ११७, ११४, ८०, ८२, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३ वर्णित है।

२- कुलार्णव तन्त्र - १७।६८

३- भविष्यपुराण - सूर्य प्रिय पुष्पवर्णनम्, अध्याय ६८, पृष्ठ २११
   भविष्यपुराण - भास्कर के विविध पुष्प पूजा फल महात्म्य वर्णनम्
   अध्याय १६२, १६३, पृष्ठ सं० २८२, श्लोक सं० १२-१७, २३ से ३५, ४०, ४५ से ५७ तक।

होता है । पुण्डरीक पुष्प से सौभाग्य, गन्ध-कुटजक पुष्प से परमैश्वर्य प्राप्ति होती है । अक्षमाला से नित्य सूर्य भगवान् की अर्चना होती है ।

मन्दार पुष्प से सर्व कुष्ठ रोगों का विनाश होता है । बिल्वपत्र और कुसुम से महान् श्री की प्राप्ति होती है । अर्कस्रक पुष्प सभी कामनाओं और फलों को प्राप्त कराने वाला है । प्रदषवादूषिणी कन्या को बकुलपुष्प से पूजन करना चाहिए । किंशुक, अगस्त्य, कुसुम, करवीर पुष्प सूर्य का अनुचर होता है । बकु पुष्प से भानुदेव की सालोक्यता प्राप्त होती है । सम्भावना और भक्तिपूर्वक लेपन करने से व्यक्ति रोगों से मुक्त हो जाता है, शीघ्र ही द्रव्य लाभ भी प्राप्त होता है ।

सहस्त्र पुष्पों के मध्यकरवीर पुष्प की महत्ता है । क्योंकि सहस्त्र बिल्वपत्र के बराबर एक पद्म पुष्प है । सहस्त्र पद्म पुष्प एक बक पुष्प के तुल्य है । सहस्त्र बक पुष्प के तुल्य मुन्दर का पुष्प है । सहस्त्र कुश पुष्प के तुल्य शमीपत्र है । सहस्त्र शमीपत्र पुष्प के तुल्य नीलोत्पल है । सहस्त्र रक्तोत्पल के तुल्य सौ नीलोत्पल पुष्प है । गन्ध युक्त पुष्प से अर्चना करनी चाहिए । प्रत्येक मुक्त पुष्प से दस सौवार्षिक फल की प्राप्ति होती है । करवीर पुष्प चढ़ाने से मुक्ति मिलती है अगस्त्य, कुसुम से गाय दान का फल मिलता है ।

पुष्पों के अप्राप्य होने पर उसके पत्तों का भी उपयोग किया जा सकता है । पत्तों के न मिलने पर फल भी पर्याप्त है । फल के प्राप्त न होने पर तृण गुल्मौषधि का प्रयोग होता है ।

भगवान सूर्य की पूजा में पुष्पों में जपा जाति के पुष्प, धूपों में विजय गन्धों में कुमकुम, लेपों में रक्तचन्दन, दीपदान में घृत और नैवेद्य में गुड़ से बने कुछ सामान का उपयोग किया जाता है ।

दीप, तैल देने से व्यक्ति नरक में नहीं जाता है । सूर्य को घृत प्रदीप दान देने से व्यक्ति के नेत्रों की ज्योति बढ़ती है । कटु तैल से सौभाग्य

कपूरी, गुरु, धूप से राजसूय का फल मिलता है ।

सूर्य की पूजा में अर्घ्य और नमस्कार का विशेष महत्व है क्योंकि कहा भी जाता है --

"जलधाराप्रिय: शिव: नमस्कार प्रियो भास्कर:"

जप, क्षीर, कुशाग्र, घृत, दधि, मधु, रक्त, करवीर, रक्त चन्दन से अष्टांग अर्घ्य है । अर्घ्य ताम्बे के पात्र में देना चाहिए । अर्घ्य देते समय क्रोध का परित्याग कर सदैव शुभ संवाद कहना चाहिए ।

माला संस्कार विधि [१] --

सूर्य की पूजा में जप का भी विधान है । इससे किसी भी जप से पहले माला का संस्कार किया जाता है । माला संस्कार में आसन शुद्धि और भू शुद्धि के पश्चात पञ्चदेवों का आवाहन किया जाता है । साधक माला को थोड़ी देर पंचगव्य में रखकर स्वर्ण पत्र में रखे हुए पञ्चामृत स्थापित करते हैं और शीतल जल से धोकर धूप दे और चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदि का लेप किया जाता है । १०८ बार ॐ का जप करके नवग्रहों, दिक्पाल आदि की पूजा कर माला को ग्रहण किया जाता है । माला जप में प्रयुक्त मन्त्रों का फल प्राप्त करने के लिए मन्त्र को सिद्ध करना पड़ता है क्योंकि मन्त्रसिद्धि होने से मन्त्र चैतन्य हो जाता है । कई प्रकार के तन्त्रों में इसकी सिद्धि की विधियां बताई गयी हैं ।

सूर्य की सन्ध्योपासना--

उपासना सिद्धि का प्रथम सोपान है । दिवस की इन तीन संधियों में सन्ध्योपासना करने वाला द्विज लोक-परलोक में अभीष्ट शुभ फलों को प्राप्त करता है । निश्चित समय की उपासना से द्विज, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र स्त्री और इच्छित का भोग करते हुए, अन्ततः मोक्ष को प्राप्त करता है ।

१-- कल्याण सूर्यांक सन्दर्भ, पृष्ठ सं० २१ से उद्धृत ।

सूर्य की सन्ध्योपासना के विषय में एक कथा विष्णुपुराण में प्रचलित है [1] --

एकबार अति दारुण और भयानक संध्याकाल में उपस्थित होने पर मंदेह नामक भयंकर राक्षसगण सूर्य को खाना चाहते हैं । उन राक्षसों को प्रजापति का यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति होगा । अत: संध्याकाल में उनका सूर्य से अति भीषण युद्ध होता है । उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप ऊंकार तथा गायत्री से अभिमन्त्रित जल सूर्य पर छोड़ते हैं । उन ब्रह्मस्वरूप जल से वह दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाता है । तथा ऊंकार की प्रेरणा से अतिदीप्त होकर उसकी ज्योति ने मंदेह नामक राक्षसों का नाश किया ।

इसलिए संध्योपासना का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । इसके उल्लंघन से सूर्य का घात होता है । सूर्य की संध्योपासना में दस क्रियाएं प्रचलित हैं -- आसन, शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण, अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप हैं ।

संध्योपासना में वर्जित कार्य --

स्वप्नमध्ययनं यानमुच्चारं भोजनं गतिम् ।
उभयो: सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने तु विवर्जयेत् ।।[2]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संध्योपासना में सूर्य का विशेष महत्त्व है । इसलिए सूर्य की पूजा करने वाले को सूर्य की संध्योपासना करनी चाहिए ।

सूर्य का प्रिय वृक्ष -

सूर्य के प्रिय पुष्प के साथ प्रिय वृक्ष का भी वर्णन प्राप्त होता है । निम्नार्क नाम से आयुर्वेद के महानीय वचन की सिद्धि होती है --`सर्वरोगहरो

१- विष्णुपुराण - द्वितीय अंश, अध्याय - ८ ।

२- कूर्मपुराण - उत्तरार्द्ध १८ । [illegible] ।

निम्ब:` अर्थात् समस्त रोग निम्ब के वृक्ष से शान्त हो जाते हैं । रोग से ग्रसित मनुष्य निम्ब का समाश्रय ले तो वह निश्चय ही असाध्य, भीषण रोगों से मुक्ति सुलभतया प्राप्त कर सकता है । निम्ब और अर्क (सूर्य) का वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष ही है । सूर्य प्रिय वृक्ष निम्ब के विषय में एक आख्यान पद्मपुराण में वर्णित है[1] —

प्राचीन समय में एक कोलाहल नामक दैत्य था । उसके साथ देवताओं का युद्ध छिड़ गया । उस दैत्य के प्रहार से घबड़ाकर अपने प्राण बचाने के उद्देश्य से देवता सूक्ष्म रूप धारण कर वृक्षों पर चढ़ गये । जब तक ब्रह्मा विष्णु ने उस कोलाहल दैत्य का वध नहीं किया, तब तक शंकर बिल्व वृक्ष पर, विष्णु पीपल वृक्ष पर, इन्द्र शिरीष वृक्ष पर और सूर्य निम्ब वृक्ष पर छिपे रहे । जो-जो देवता जिस वृक्ष पर थे वे-वे वृक्ष उन-उन देवताओं के नाम से विख्यात हुए । जिस स्थान पर सूर्य ने निम्ब वृक्ष पर निवास किया था । वह `निम्बार्क तीर्थ` कहलाया । इस तीर्थ में स्नान करके निम्बस्थ सूर्य की पूजा की जाय तो पूजा करने वाले व्यक्ति के समस्त रोग-दोषों की निवृत्ति हो जाती है । इस प्रकार उपरोक्त आख्यान से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य का प्रिय वृक्ष निम्ब है । वही, सूर्य निम्बार्क के नाम से बाद में प्रसिद्ध हुए ।

सूर्यग्रहण का स्वरूप -

कतिपय स्तुतियों में सूर्य को ज्योतिषशास्त्र का कर्ता तथा ग्रहण कर्ता के रूप में स्वीकार किया गया है । ग्रहण के विषय में ज्योतिष व पुराणों में विभिन्न विवेचन प्राप्त होते हैं । किन्तु पुराण[2] में व्याख्यायित आख्यान के द्वारा सूर्यग्रहण की उत्पत्ति स्पष्ट हो जाती है यथा —

भगवान् विष्णु जब मोहिनी का रूप बनाकर देवताओं को अमृत पिलाने

१- पद्मपुराण - १६८ । १-२४

२- श्रीमद्भागवतपुराण के अष्टम स्कन्ध ९। २४-२६

लगे । अमृतपान के समय राहु देवता के वेश में सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आकर पंक्ति में बैठ गया । उस समय राहु की सूचना देकर सूर्य और चन्द्रमा ने उसका भेद खोल दिया । भगवान् ने सुदर्शन चक्र से राहु के शिर को काट दिया । अमृत से भरपूर धड़ का नाम केतु पड़ा और अमरत्व का पान करने के कारण शिर का भाग राहु के रूप में था । उस वैर के कारण अमावस्या और पूर्णिमा के दिन उन पर आक्रमण करता है । भगवान् के सुदर्शन चक्र के तेज से उद्विग्न और चकित चित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने रुक कर फिर सहसा लौट जाता है । उसके उतनी देर उनके सामने ठहरने के कारण ही 'ग्रहण' लगता है ।

सूर्यग्रहण उस अमावस्या को होता है जिस दिन सूर्य तथा चन्द्रमा के अंश कला विकला समान होते हैं । इस विषय को सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में स्पष्ट कहा गया है --

> तुल्यौ राश्यादिभिः स्यातामभावास्यान्तकालिकौ ।
> सूर्येन्दु पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ [१] ।।

सूर्यग्रहण का महत्व पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र में है । धर्मशास्त्र तथा पुराणों का कथन है कि ग्रहण काल में जप, दान एवं हवन करने से बहुत विलक्षण फल मिलते हैं । यदि सूर्यग्रहण रविवार को हो तो उसे चूड़ामणि कहते हैं । उस ग्रहण में जप, स्नान, दान, हवन का भी विशेष फल होता है । यह व्यास संहिता में कहा गया है --

> सूर्यग्रहणकाल समोऽन्यो नास्ति कश्चन ।
> तत्र यद् यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत ।।

जन्म नक्षत्र अथवा अनिष्ट फल देने वाले नक्षत्र में ग्रहण लगने पर उसके दोष की शान्ति हेतु सूर्यग्रहण में सोने का घोड़ा, भूमि, तिल, घी का यथाशक्ति दान देने का विधान है ।

सूर्यग्रहण में आसानी ही मन्त्र की सिद्धि हो जाती है । गणपत्युपनिषद् में लिखा है कि सूर्यग्रहण में महानदी आदि नदियों में या किसी प्रतिमा

१- सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार, अध्याय - ४ ।

लगे । अमृतपान के समय राहु देवता के वेष में सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आकर पंक्ति में बैठ गया । उस समय राहु की सूचना देकर सूर्य और चन्द्रमा ने उसका भेद खोल दिया । भगवान् ने सुदर्शन चक्र से राहु के शिर को काट दिया । अमृत से भरपूर धड़ का नाम केतु पड़ा और अमरत्व का पान करने के कारण शिर का भाग राहु के रूप में था । उस वैर के कारण अमावस्या और पूर्णिमा के दिन उन पर आक्रमण करता है । भगवान् के सुदर्शन चक्र के तेज से उद्विग्न और चकित चित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने रुक कर फिर सहसा लौट जाता है । उसके उतनी देर उनके सामने ठहरने के कारण ही `ग्रहण' लगता है ।

सूर्यग्रहण उस अमावस्या को होता है जिस दिन सूर्य तथा चन्द्रमा के अंश कला विकला समान होते हैं । इस विषय को सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में स्पष्ट कहा गया है --

तुल्यौ राश्यादिभिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ ।
सूर्येन्दु पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ [1] ।।

सूर्यग्रहण का महत्व पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र में है । धर्मशास्त्र तथा पुराणों का कथन है कि ग्रहण काल में जप, दान एवं हवन करने से बहुत विलक्षण फल मिलते हैं । यदि सूर्यग्रहण रविवार को हो तो उसे चूड़ामणि कहते हैं । उस ग्रहण में जप, स्नान, दान, हवन का भी विशेष फल होता है । यह वसिष्ठ संहिता में कहा गया है --

सूर्यग्रहणकालेन समोऽन्यो नास्ति कश्चन ।
तत्र यद् यद् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत ।।

जन्म नक्षत्र अथवा अनिष्ट फल देने वाले नक्षत्र में ग्रहण लगने पर उसके दोष की शान्ति हेतु सूर्यग्रहण में सोने का घोड़ा, भूमि, तिल, घी का यथाशक्ति दान देने का विधान है ।

सूर्यग्रहण में अनायास ही मन्त्र की सिद्धि हो जाती है । गणपत्युप-निषद् में लिखा है कि सूर्यग्रहण में महानदी आदि नदियों में या किसी प्रतिमा

१- सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार, अध्याय - ६ ।

के पास मन्त्र जपने से वह सिद्ध हो जाता है ।[1]

सूर्य ग्रहण में भोजन शयन आदि का निषेध अवश्य है । तिल और कुश डालने पर वस्तुएं पवित्र रहती हैं । यथा --

> सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत् कुर्याज्जपादिकम् ।
> न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ।।

इस प्रकार सूर्यग्रहण का भी विशेष महत्त्व माना गया है ।

द्वादशादित्यों का विवेचन -

सूर्य की स्तुतियों में सूर्य के नामों की भी स्तुतियाँ हुईं इनमें सूर्य को द्वादशात्मा के नाम से सम्बोधित किया । सूर्य के बारह नाम विभिन्न मासपरक सूर्य के नाम से अभिहित हैं । इन नामों का परम्परा निर्वहणार्थ नामकरण नहीं किया गया अपितु भगवान् के इन नामों का वैज्ञानिक महत्त्व है । विष्णुपुराण में सूर्य के द्वादशादित्यों का विवेचन इस प्रकार है :--

(१) धाता -

मधुमास अर्थात् चैत्र मास में सूर्य धाता नाम से अभिहित होता है । इस मास में सूर्य के रथ में क्रतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथभृत यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व ये सात माताधिकारी होते हैं । धाता का अर्थ निर्माणकर्ता, संरक्षक के रूप में किया गया ।

(२) अर्यमा -

वैशाख मास में अर्यमा आदित्य, पुलहऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प और नारद नाम का गन्धर्व निवास करते हैं । गीता में पितृ श्रेष्ठ को 'पितृणामर्यमा चास्मि'[2] अर्यमा कहा

१- सूर्यग्रहणे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा
जप्त्वा स सिद्ध मन्त्रो भवति (गणपत्युपनिषद्, मन्त्र ८)

२- गीता १०।२९ विष्णुपुराण द्वितीय अंश के अध्याय १० में द्वादशात्मा का वर्णन है ।

गया । सूर्य पितृ गण का उपकार करते हैं ।

(३) मित्र -

ज्येष्ठ मास में मित्र आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व रथस्वन यक्ष रहते हैं ।

(४) वरुण -

आषाढ़ मास में वरुण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हू हू गन्धर्व, रथ राक्षस, और रथचित्र नामक यक्ष रहते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्हें अपना स्वरूप बताते हुए कहा --

वरुणोयादसामहम् ।[१]

(५) इन्द्र -

श्रावण मास में इन्द्र नाम के आदित्य, विश्वावसु, गन्धर्व, स्त्रोत यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस निवास करते हैं ।

(६) विवस्वान् -

भाद्रपद में विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षस रहते हैं ।

(७) पूषा -

आश्विन मास में पूषा नाम के आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेणगन्धर्व और घृताची नामक अप्सरा रहती हैं ।

(८) पर्जन्य -

कार्तिक मास में पर्जन्य आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, भरद्वाज

ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं ।

(९) अंशुमान् -

मार्गशीर्ष मास के अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यपऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत नामक राक्षस है ।

(१०) भग -

पौष मास में भग आदित्य क्रतु ऋषि, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा रहती है । यह देह धारियों के शरीर में स्थित होता है ।

(११) त्वष्टा -

माघ मास में त्वष्टा नाम से विख्यात आदित्य के जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस तथा ऋतजित् यक्ष एवं धृतराष्ट्र गन्धर्व रहते हैं ।

(१२) विष्णु -

फाल्गुन मास में विष्णु नाम से अभिहित अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व सत्यजित यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत राक्षस रहते हैं ।

इस प्रकार भगवान् भास्कर के मण्डल में सात-सात गण एक-एक मास तक रहते हैं । मुनि सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर यशोगान करते हैं । अप्सराएं नृत्य करती हैं, राक्षस रथ के पीछे चलते हैं, सर्प वहन करने के अनुकूल रथ को सुसज्जित करते हैं यक्षगण रथ की बागडोर संभालते हैं । ये सात गण ही अपने समय-समय पर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदि के कारण होते हैं ।

सूर्य के रथ का स्वरूप -

सूर्य प्रत्यक्ष देवता है । इनके स्वरूप के विषय में विभिन्न भावों की उत्पत्ति हुई । किन्तु पुराणों में सूर्य के रथ के रूप में वर्णन सर्वत्र मिलता है । सूर्य ही सम्पूर्ण जगत की आत्मा है इसी पर यह सृष्टि आधारित है । सूर्य के अंग तथा उनके रथ के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग वर्ष के अवयवों के रूप में प्राप्त होते हैं । विष्णुपुराण तथा मत्स्यपुराण के आधार पर सूर्य के रथ का वर्णन इस प्रकार है --

सूर्यदेव के रथ का विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दुना उसका ईषा दण्ड (जुआ और रथ के बीच का भाग) है । उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है, जिसमें उसका एक चक्र लगा हुआ है (पूर्वाह्न, मध्याह्न, पराह्न रूप) तीन नाभि, (परिवत्सरादि) पांच अरे और (षड्ऋतु रूप) छः नेमि, अक्षय तथा वर्ष उर्ध्वध्वजा में इस अक्षयस्वरूप संवत्सरात्मक चक्र में सम्पूर्ण काल चक्र स्थित है । सात छन्द ही गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप और पंक्ति ये अश्वरूप हैं । ये अश्व इच्छानुकूल चलने वाले, मन के वेग के सामान शीघ्रगामी हैं । युग के आदिकाल से ये अश्व महाप्रलय तक सूर्य का वहन करने वाले हैं । सूर्य का रथ सुवर्णमय है । अरुण उनका सारथि है ।

सूर्य के भ्रमण काल में विभिन्न राशियों का भोग करते नक्षत्रों की वीथियों में विचरण करते हैं । उत्तरायण में ध्रुव के आकर्षण से रश्मियां संक्षिप्त हो जाती हैं । दक्षिणायन में ध्रुव की रश्मियों का परित्याग कर देने से बढ़ जाती हैं । उत्तरायण के आरम्भ होने पर सूर्य पहले मकर राशि से कुम्भ और मीन राशियों से होते हुए दूसरी राशि में जाते हैं । इन तीन राशियों को भोग चुकने के पश्चात् सूर्य रात्रि और दिन में मेधावी गति का अवलम्बन करते हैं । मेष तथा वृष राशि का अतिक्रमण करते हुए मिथुन राशि से उत्तरायण की अन्तिम सीमा पर उपस्थित होते हैं । पर कर्क राशि से दक्षिणायन को आरम्भ करते हुए अति शीघ्रता से गमन करते हैं । इस प्रकार छः राशियों का भोग

उत्तरायण में मन्थर गति से करते हैं और छः राशियों का भोग दक्षिणायन अति शीघ्र गति से करते हैं। इस कारण उत्तरायण में दिन बड़े और रात्रि छोटी होती है। दक्षिणायन में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस अयन में सूर्य की गति दिन के समय मन्द होती है, उसमें रात्रि का समय अति शीघ्र होती है। जिसमें दिन अति शीघ्र होता है रात्रि अति मन्द गति की होती है।

पन्द्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला, तीस कलाओं का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तों के सम्पूर्ण दिन रात्रि होते हैं। पन्द्रह रात्रि दिवस का एक पक्ष (शुक्ल या कृष्ण पक्ष) कहा जाता है। दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन होता है तथा दो अयन ही एक वर्ष कहे जाते हैं। राका और अनुमति- दो प्रकार की पूर्णमासी है। जिस पूर्णिमासी में पूर्ण चन्द्र रहता है वह राका कहलाती है जिसमें चन्द्रमा की एक कला विहीन होती है अनुमति कही जाती है तथा सिनी वाली -दृष्ट चन्द्रमा अमावस्या का नाम है कुहु - नष्टचन्द्रमा वाली अमावस्या होती है। माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख तथा ज्येष्ठ,आषाढ़ - ये छः उत्तरायण के मास हैं। श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक,अगहन तथा पौष ये छः मास दक्षिणायन के कहलाते हैं। सूर्य का दक्षिण मार्ग पितृयान पथ है और उत्तरायण मार्ग देवयान मार्ग कहे जाते हैं।

भगवान् भास्कर का वह रथ विभिन्न महीनों में क्रमानुसार देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस और सारथि के साथ सात गणों से अधिष्ठित रहता है। ये उक्त गणों में ऋषि सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व अप्सराएं नृत्य करके सूर्य की उपासना करती हैं। कता सारथि रथ होते हैं। राक्षसगण व सर्पगण अनुगमन करते हैं।

इस प्रकार भगवान् भास्कर का रथ बेलगाड़ी अश्वों द्वारा भ्रमण कराये जाते - सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं।

१- विष्णुपुराण : द्वितीय अंश, अध्याय - ८

सूर्य की मूर्ति -

सूर्योपासना का आरम्भिक स्वरूप प्रतीकात्मक रहा जोकि सूर्य का प्रतीकत्व चक्र, कमल आदि से व्यक्त किया जाता है। इन्हीं प्रतीकों को विधिवत् मूर्ति रूप में किया जाता है। भगवान् भुवन भास्कर के सम्मुख मानव अनादिकाल श्रद्धानत रहा इसी कारण सर्वत्र सूर्य के धर्म को ही नहीं व्याख्यायित किया अपितु धार्मिक मान्यताओं को एक सूत्र में बांधने व दृढ़ करने के लिए भक्ति पूजा, तीर्थ व्रत, मूर्तिपूजा व मन्दिरों का प्रचलन किया गया है। चूंकि सर्वत्र स्तुतियों में सूर्य के ध्यान के रूप में इनकी मूर्ति को प्रतीक के रूप में व्यक्त किया गया। हस्त कमल धारण किए हुए, विचित्र मुकुट धारण स्वरूप मूर्ति किये हुए, सूर्य नारायण के सात अश्वों के रथ में भ्रमण 'सप्ततुरंगवाहन' सर्प की लगाम, 'भुजगयामिता: सप्ततुरगा:' रथ का वाहक 'सारथिरपि', 'रथस्यैकं चक्रं' रथ का एक पहिया दृष्टव्य है। नीलकमल पर आसित, एक चक्र धारण किये हुए है। सूर्य की यह मूर्ति सर्वत्र प्रचलित है[1]।

बृहत्संहिता में सूर्य की शुभ प्रतिमा का उल्लेख इस प्रकार किया गया है[2] -

'सूर्य की मूर्ति में नाक, कान, जांघ, पिण्डली, गाल, छाती आदि

१- संवत्सर का छठा भाग 'ऋतु' कहा जाता है। - भागवत पुराण
आधा मार्ग -'अयन' कहा जाता है।
- मत्स्यपुराण २६१।१-४ तक में वर्णित है।

२- कमलोदर द्युतिमुख: कञ्चुकगुप्त: स्मित प्रसन्नमुख:।
रत्नोज्ज्वलप्रभामण्डलश्च कर्तु: शुभकरोऽर्क:॥
- बृहत्संहिता ५७।४६-४८

रथस्थं कारयेद् देवं पद्महस्तं सुलोचनम्।
सप्ताश्वं चैक चक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेद्॥
- मत्स्यपुराण

ऊंचा होना चाहिए । उत्तर प्रदेश का पहनावा, हाथों में कमल, छाती पर स्फटिक माला, कानों में कुण्डल, कमर खुली हुई, मुख की आकृति सफेद, कमल के गर्भ जैसी सुन्दर हंसता हुआ शान्त चेहरा, मस्तक पर रत्नजटित मुकुट हो, इस प्रकार की प्रतिमा शुभकर है ।

इस प्रकार सूर्य की प्रतिमा ही सूर्योपासना में सर्वत्र पूजी जाती है ।

सूर्य से विविध रोगों का निदान -

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्ति के भण्डार हैं जहां एक ओर सूर्य की किरणें प्राण का संचार करती हैं वहां दूसरी ओर सूर्य की किरणें रोगों का निदान करती हैं । इन स्तुतियों में सर्वत्र रोगों के निदान का भाव दृष्टव्य है । भारतीय जनसमुदाय सूर्य की कृपा से आरोग्य लाभ प्राप्त करता रहा है । अन्य पुराणों मे एक स्वर से सूर्य से आरोग्य लाभ का डिण्डिमघोष किया है --

आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेत्तु मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ।।[1]

वेदों में सूर्य की स्तुतियों के साथ सूर्य की प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन भी किया है । अथर्ववेद के ६ वें काण्ड में इसका विशद् वर्णन मिलता है । सूर्य की उपासना से सर्वरोगों का परिहार होता है । सूर्य के ताप से भयंकर रोगों का नाश हो जाता है । इस कारण पद्मपुराण में वर्णित है --

अस्योपासनामात्रेण सर्वरोगात् प्रमुच्यते ।[2]

हृदय रोग, सफेद दाग, कुष्ठरोग, गण्डमाला, नेत्ररोग, कुष्ठरोग आदि की चिकित्सा सूर्य-किरणों द्वारा की जाती है । नेत्र विकार को दूर करने के

१- मत्स्यपुराण - ६७ । ७१

२- पद्मपुराण - सृष्टिखण्ड ७८ । [illegible]

लिए अक्षि उपनिषद् में सूर्य की महत्वपूर्ण उपासना है ।

रविवार की किसी शुभ तिथि और नक्षत्र में प्रात: सूर्य सम्मुख नेत्र बन्द करके खड़े हों या बैठकर रोगनाश के लिए सूर्य का नित्य पाठ करने से यह रोग नष्ट हो जाते हैं ।[1]

प्रात: सूर्य के सामने नंगे बदन रहना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है । प्राणायाम से शरीर का दूषित रक्त शुद्ध होकर अनेक रोगों से शरीर की रक्षा की जाती है ।

कान एवं मुख से दूषित रक्त या पीत द्रव्य से मनुष्य को बहिरा करता है वह समस्त मुखवर्ती रोगों का निदान सूर्य करते हैं । जिसका वर्णन इस प्रकार है --

> यस्य हेतो: प्रच्यवते यक्ष्म: कर्णत आस्यत: सर्वं
> य: कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पुरुषम् सर्वं ।।[2]

सूर्य की उपासना से हलीमक, कामला, एवं पाण्डु रोग, उदर के मध्य से फैलने वाले शूल रोग को, शरीर के अन्दर से यक्ष्म करने वाली व्याधियां दूर होती हैं यथा --

> हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्त रोदरात् ।
> यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहि निमन्त्रयामहे ।।[3]

हृदय रोग, से ग्रस्त रोगी सूर्योदय काल में होने वाली स्वाभाविक

1- अक्षि उपनिषद

2- अथर्ववेद - काण्ड ६, सूक्त ८

3- अथर्ववेद - काण्ड ६, सूक्त ८

किरणों तथा अस्वाभाविक कृत्रिम रंग वाले, अभ्रकपटल, या वस्त्र परिधानादि से बनाई गई किरणें डालने से उसका पूर्व जैसा स्वास्थ्य हो जाता है।

श्वेत कुष्ठ रोग का निदान के लिए सूर्योपासना का विशेष महत्त्व है। श्वेत कुष्ठ रोगी को रविवार का व्रत रखने और सूर्य का नित्य अर्घ्य देने से रोग कम हो जाते हैं। कण्डे की आग पर शुद्ध घृत तथा गुग्गुल का धूप देकर उसकी राख को श्वेत दाग पर मलने से रोग नष्ट हो जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश से रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं। सूर्य की किरणें सर्वत्र प्रकाश डालती हैं जिसका वर्णन सामवेद में प्राप्त है --

तु वे सुनाय तत्सुनोद्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यास: अ महस: कृणोतन ॥[1]

अथर्ववेद में दीर्घायु के लिए रक्तवर्ण वाली किरणें लाभदायक हैं। शरीर की पाण्डुता दूर हो जाती है। यथा --

परित्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायम पा असवथी अहरितो भुवत् ॥[2]

छोटी फुनसियां, खाज, बड़े फोड़े का रोग, गठिया, वात रोग और प्रमेह-पिडिका आदि समस्त रोगों के विष को सूर्य नष्ट करते हैं यथा --

विसल्पस्य विद्रधस्यवातीकारस्यवाल मे:।
अलजार्णी - - - - - - - - - - -- -॥[3]

सूर्य भगवान् की उपासना में अर्घ्य का विधान है। सूर्य के सम्मुख अर्घ्य

१- सामवेद -

२- अथर्ववेद - १। २२

३- अथर्ववेद - ६ काण्ड

देने से जल की धारा के अन्तराल से सूर्यरश्मियों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है । इससे शरीर में स्थित रोग कीटाणु नष्ट होते हैं । शरीर में अज्ञात रूप से ऊर्जा एवं शक्ति का संचार होता है । इसलिए कहा भी गया है --

अर्घ्यदानमिदं पुण्यं पुंसामारोग्यवर्धनम् ।[1]

शीतकाल में शीत निवारण के लिए सूर्य-रश्मियों का सेवन किया जाता है । सूर्य की किरणें रोगरूपी राक्षसों का विनाश करती हैं । सूर्य प्रकाश से रोगोत्पादक कृमियों का नाश होता है यथा --

उद् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च क्रिमीन् जम्भयामासि ।।[2]

प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य रोगों का निदान में सूर्य स्नान किया जाता है । सूर्य की किरणों से विटामिन डी की उत्पत्ति होती है । क्योंकि किरणों की शक्ति से त्वचा के बीच रहने वाले पदार्थ विटामिन डी में परिणत किये जाते हैं । यह शरीर के निर्माण में सहायक होती है । सूर्य से उष्णता भी मिलती है ।

इस प्रकार जहां एक ओर सूर्य भक्तिभाव को प्रेरित करता है वहां दूसरी ओर शरीर में विद्यमान सभी रोगों का नाश करता है । सूर्योपासना में आरोग्य जीवन की कामना करते हैं, यथा --

शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धि यशस्कर: ।
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्टो दिवाकर: ।।[3]

१- स्कन्दपुराण - का० मा० ३।५

२- अथर्ववेद - ५ । २३ ।६

३- पद्मपुराण - १।८०।५८

एक चक्र एक वर्ष का संकेत करते हैं और पहिए में लगे १२ तीले महीनों का चिन्ह है। सप्ताश्व को सप्ताह का रूप दिया गया है। यह मंदिर सूर्य की रचनात्मक और क्रियात्मक शक्ति को प्रदर्शित करता है। समुद्र के किनारे पर स्थित है। वहाँ सूर्य की प्रथम किरणें धरती को प्रणाम करती दिखाई देती हैं।

(२) काश्मीर का सूर्य मन्दिर[१] -

'मार्तण्ड' नाम से विख्यात यह मन्दिर काश्मीर प्रदेश में है। यह अमरनाथ के मार्ग पर स्थित है। इस मन्दिर का उल्लेख कल्हण की 'राजतरंगिणी' में मिलता है। इसका निर्माण ८ वीं शती के मध्य माना जाता है। यह काश्मीरी शैली में बना हुआ है। यह भूरे रंग के पत्थर से निर्मित है। बाहरी भाग दो बैठने का स्थान है जो एक घर के समान दिखाई देता है। खम्भे व छत की दीवारों पर काश्मीरी शैली में सजावट है। ६२ फीट लम्बा, ३५ फीट चौड़ा है। इसका घर ५६ फीट का है। इसके ८४ खम्भे ९ $\frac{१}{२}$ फीट ऊंचे और गोलाई ६ $\frac{१}{४}$ फीट के हैं। आजकल केवल भग्नावशेष ही रह गये हैं। पर्वतों से घिरा होने के कारण स्वर्ग से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। यह बारहवीं शताब्दी के लगभग बनाया गया है।

(३) मोढेरा का सूर्य मन्दिर -

यह गुजरात में स्थित मोढेरा नामक स्थान पर स्थित है। यह मन्दिर दो भागों में विभाजित है :— (१) सभा मण्डप, (२) गुढामण्डप और गृहगर्भ। उसमें एक कुण्ड है जो सूर्यकुण्ड के नाम से अभिहित है। इसके खम्भे १३ फीट ऊंचे, सम्पूर्ण मन्दिर ८० फीट ऊंचा और ५० फीट चौड़ा है। इस मन्दिर का मुख्य भाग पूर्वदिशा की ओर है। इस मन्दिर पर ईरानी शिल्पकला का प्रभाव है। इसमें गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा मार्ग है। उसके आगे एक

खुला हुआ नृत्यमण्डप है तथा प्रतोली के दो स्तम्भ हैं और तोरण नीचे गिरा है । अनेक देवी देव की मूर्तियां आलों में रखी हुई हैं । इस मन्दिर का बनाने का समय लगभग ग्यारहवीं शताब्दी है ।

(४) मालतगा का सूर्य मन्दिर -

बेलगांव, कर्नाटक में लगभग ४०० वर्ष पुरानी सूर्यनारायण की भव्य मूर्ति प्रतिस्थापित है । जो दो फुट ऊंची है । सूर्य मूर्ति की दाहिनी भुजा में `जय` और बायें भुजा में `विजय` की प्रतिमाएं हैं । मूर्ति के नीचे सूर्यदेव का प्रतिभासित मुख है और दोनों भुजाओं को मिलाकर सात अश्वों के मुख हैं । यहां प्रतिदिन सूर्य सूक्त का पाठ किया जाता है ।

(५) जोधपुर का सूर्य मन्दिर -

राजस्थान शिल्पकला एवं स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध है । रणकपुर का सूर्य मन्दिर अपनी सादी स्थापत्य कला की सुरुचिपूर्णता के लिए विख्यात है । यह दसवीं शताब्दी के लगभग बनाया गया है । दो लम्बे खम्भे हैं जिस पर सजावट की गयी है । ३५ फीट ऊंचा है । सूर्य भगवान सप्ताश्व रथ पर बैठे हैं । कलात्मक के स्थान पर खड़े हुए घोड़े खुदे हुए हैं । इस मन्दिर का मुख पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण है । एक सूर्य सुन्दरी भी स्थित है, जो खड़ी हुई सूर्य की स्त्रियां हैं । कई कमल दृष्टिगत होता है । मन्दिर का ऊपरी भाग पिरामिड की तरह है ।

(६) सोमनाथ का सूर्य मन्दिर -

यह भी अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है । इस मन्दिर में नव आकृतियां अंकित है । उनमें प्रथम सात सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि की आकृतियां हैं । यह भी सूर्याभिमुख है । सिर पर कुण्ड को वहन करती हुई प्रतिमा है जिसके ऊपर का हिस्सा मुलम्मा जैसे है । ऐसी मान्यता है यह राहु और केतु की की छवी है । मन्दिर-चित्रकारी अत्यन्त दर्शनीय है ।

(७) अल्मोड़ा का सूर्य मन्दिर -

उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा का सूर्य मन्दिर अपनी विशेषता रखता है । इस सूर्य मन्दिर में सूर्य की मूर्ति अद्भुत है । सूर्य की मूर्तियां रथस्थ नहीं अपितु पादाच्छन्न है । सूर्य कमलासन पर अधिष्ठित है ।

(८) सूर्य तीर्थ -

नेपाल में पशुपत क्षेत्र के गुह्येश्वरी मन्दिर के समीप वाग्मती नदी के पूर्वी तट पर सूर्यघाट नामक एक स्थान है, वहां सूर्य भगवान का एक भव्य मन्दिर है । यह मन्दिर नवनिर्मित है । सूर्य की चतुर्भुज प्रतिमा है । सिर किरणावलियों से आवृत्त है । हाथ में शंख चक्र और गदा धारण किए हुए हैं । अभय वर मुद्रा है । इस मन्दिर की ऐसी मान्यता है कि सूर्य घाट पर स्नान करके भगवान् सूर्य अर्घ्य देकर पूजन करने वाले के नेत्र रोग और चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं ।

(९) गया का सूर्य कुण्ड -

गया में विष्णुपद के मन्दिर से लगभग १७५ गज की दूरी पर उत्तर में ६५ गज लम्बी और ६० गज चौड़ी दीवार से घिरा हुआ सूर्यकुण्ड है । उत्तरी भाग उदीची, मध्य भाग कनखल और दक्षिण का दक्षिण मानस तीर्थ कहा जाता है । तीनों स्थान पर तीन वेदियां बनी हैं जिनमें अलग-अलग पिण्डदान होता है । सूर्यकुण्ड के पश्चिम भाग में एक सूर्यनारायण का भव्य मन्दिर है । सूर्य की प्रतिमा चतुर्भुज रूप है । इसे दक्षिणार्क कहते हैं तथा `गयादित्य` के नाम से प्रसिद्ध है ।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे मन्दिर हैं । इन मंदिरों में `देवआर्क` का विशाल सूर्य मन्दिर, अयोध्या, लहनिया (टीकमगढ़) जयपुर के `गलतावी` देव (बिहार) का सूर्य मन्दिर है । खुजराहो में ८५ मन्दिरों में सूर्य मन्दिर अपने ढंग का अनूठा मन्दिर है । दक्षिण भारत के `कुम्भ कोण` में शिव मन्दिर के निकट सूर्य मन्दिर है । इसके अतिरिक्त एलोरा की गुफाओं

में भव्य सूर्य की मूर्तियां गढ़ी गयी हैं । दक्षिण भारत के सूर्यनारकोइल और महाबलीपुर में भी सूर्य-मूर्तियां हैं ।

इस प्रकार सूर्य भगवान् के विभिन्न रूपों का चित्रण इन मन्दिरों में दृष्टिगत होता है । इन मन्दिरों में कहीं प्रतीक तथा कहीं मानव रूप में सूर्याङ्कन प्राप्य है । चक्र और रथ रूप इनका प्रतीकात्मक रूप रहा है । रथ पर आसन लगाये बैठे हुए या चतुर्भुज मूर्तियां मानवरूप द्योतक है । इस प्रकार सौरोपासना का महत्व अधिक हो जाने के कारण इनमें अन्य उपासना पद्धतियों तथा सम्प्रदाय का समन्वय द्रष्टव्य है । मानव विश्व के जीवनदाता सूर्य के प्रति श्रद्धावनत होकर ही इन मन्दिरों में अपने आराध्य की विभिन्न रूपों में कल्पना कर निर्माण किया है ।

-0-

पंचम अध्याय

रसाभिव्यक्ति

भक्ति स्तोत्र और संगीत एक ही रस स्त्रोत से अनुप्राणित है। भक्ति की रागात्मिका वृत्ति में भक्ति काव्यों की रस प्राणता भी निहित है और संगीत की आनन्दमाधुरी की झंकार भी। रस स्वभाव से दिव्य एवं चिन्मय है, इसलिए भक्तिस्तोत्रों में रस की प्राणता रागवृत्ति से संश्लिष्ट नहीं, अपितु संगीत की आह्लादकारिणी मधुरिमा का प्रतिफलन है। आलौकिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर दृष्टिपात करने से भक्तिस्तोत्र, गीति और रस एक दूसरे के कार्य, कारण अथ च तद्रूप हैं और एक ही मधुर मादनभाव से परिलुप्त प्रेरित और अभिव्यंजित हैं। अतः भक्तिस्तोत्रों में रसोत्पत्ति होना स्वाभाविक ही है, चाहे वह कोई भी रस से अनुप्राणित हो। रस की अभिव्यञ्जना इन स्तोत्रों में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

भरतमुनि ने 'नहि रसादृते कश्चिदर्थ:प्रवर्तते'[1] कहकर काव्य में रस के सर्वाधिक महत्त्व को प्रतिपादित किया। 'रस' शब्द भरतमुनि का अपना आविष्कार नहीं है, क्योंकि उनसे बहुत पूर्व ऋग्वेद काल से ही 'रस' का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा। ऋग्वेद में इसका प्रयोग गौ, दुग्ध, मधु, सोमरस आदि के लिए हुआ।[2] उपनिषदों में इसे सारभूत तत्त्व, ब्रह्मादि के लिए प्रयुक्त किया गया यथा --

'प्राणो व अंगानां रस।'[3]
'रसो वै सः।'[4]

कामसूत्र में रति एवं प्रेमादि के लिए इसका प्रयोग हुआ। इस

१- नाट्यशास्त्र - ६। ३१ की वृत्ति, पृष्ठ २७२।

२- धन्वो रसस्या वाहुवे------ ऋग्वेद १। ३७।५

३- बृहदारण्यकोपनिषद्

४- तैत्तिरीय उपनिषद् - २७

प्रकार ऋग्वेद से विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त रस अन्तत: माधुर्य या आनन्द का पर्याय बन गया । माधुर्यपूर्ण अनुभूति का द्योतक होने के कारण काव्यानन्द `रस` को `ब्रह्मानन्दसहोदर` कहा गया है ।[1]

रस का अर्थ -

रस की महत्ता प्रतिपादित होने पर उसकी अर्थ की व्यापकता अधिक हो जाती है । रस को विभिन्न दृष्टिकोण से काव्य में अभिव्यक्त किया है । साधारणतया रस शब्द के अर्थ `रस्यते आस्वाद्यते इति रस` अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाता है । `रसयति आस्वादयति इति रस:` अर्थात् जो आस्वादित करता है, वह रस है ।

श्रुति वचन के अनुसार --

`रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।`

अर्थात् रस वही है, जो रसत्व को प्राप्त कर आनन्दित होते हैं ।

साहित्यदर्पण के अनुसार --

`यह रस चमत्कार से परिपूर्ण आत्मा का विषय है`[2]

भरतमुनि ने अपनी कृति `नाट्यशास्त्र` में रस की व्याख्या इस प्रकार अभिव्यक्त की है --

`विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रति नामक स्थायिभाव की परिपक्वता से निर्मित ही रस है ।`[3]

१- अन्यत्सर्वमिव तिरोदधत्: ब्रह्मास्वाद मिवानुभावयन्,
अलौकिक चमत्कारी श्रृंगारादि रस: । -- काव्यप्रकाश-४,पृष्ठ १०६।

२- साहित्यदर्पण - तृतीय परिच्छेद

३- भरतमुनि का नाट्यशास्त्र -
विभावे नानुभावेन व्यक्त: संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादि स्थायिभाव: सचेतसाम् ॥

उज्ज्वलनीलमणि में रस की व्याख्या इस प्रकार वर्णित है --

'भावना-मार्ग का अतिक्रमण कर चमत्कार अतिशय का आधार-स्वरूप, जो सत्व शोधित उज्ज्वल हृदय में आस्वादित होता है, वह रस है ।'[1]

इस प्रकार रस की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में रस का सन्निवेश रहता है । जो काव्य को प्रभावोत्पादक बना देता है, जिसके पठन या श्रवण मात्र से ही रसानुभूति होती है ।

रस की अलौकिकता -

रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है,क्योंकि सम्पूर्ण काव्य में वैचित्र्य का अनुभव रस से ही होता है । रस के कारण काव्य में ज्ञात कथा भी नवीन-सी लगती है । आचार्य मम्मट ने रसास्वादन से समुद्भूत-विगलित वेद्यान्तर आनन्द (रस) को सकल प्रयोजन मौलिभूत कहा है,यथा --

'सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन
समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दं - - - ।'[2]

गुणालङ्कारादि काव्यावयवों की सार्थकता अवयवी रस के कारण ही है । रस के अभाव में अलंकारादि हास्यास्पद हो जाते हैं, यथा --

रसेन सालङ्कारभावोऽपि रसानिष्यन्दवर्जिता: ।
कुर्वन्तीव कामिन्य: प्रीणन्ति न मनोगिर: ।।[3]

१- उज्ज्वलनीलमणि --

व्यतीत्य भावना वर्त्म यश्चमत्कृतिभार भू: ।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढं स्वदते स रसोमत: ।।

२- काव्यप्रकाश - पृष्ठ ३, चौखम्भा संस्करण १९६० ।

३- ना० द० १।७

रस के बिना कवि का कार्य काव्य संज्ञा का भाजन नहीं बन सकता यथा --

> 'तस्य रसात्मतामपि मुख्यवृत्तया काव्यव्यपदेश
> एव न स्यात किमु त विशिष्टत्वम् ।'[1]

रसवादी तथा ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया है । रस के परिग्रहण से काव्य मधुमास में वृक्ष की भांति सुशोभित है । यथा --

> 'दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था: काव्येरसपरिग्रहात् ।
> सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा: ।।'[2]

इसके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी प्रकारान्तर से इसके महत्व को स्वीकार किया है । इस प्रकार अनेक आचार्यों द्वारा स्तुत्य एवं प्रशंसित रस को काव्य में सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए लिखा भी है :--

> 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[3]
>
> 'दीप्तं रसत्वं कान्ति:'[4]

दण्डी ने काव्यादर्श मे लिखा भी है --

> मधुरं रसवद्वाचिवस्तन्यपि रसस्थिति:
> येन माद्यन्ति धीमन्तो मधु नेव मधुव्रता ।[5]

रस को काव्य में सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए ध्वनिवादी आचार्यों

1- हिन्दी व्यक्ति
2- ध्वन्यालोक विवेक ४।४, पृष्ठ १०८
3- विश्वनाथ - साहित्यदर्पण १।३
4- वामन : काव्यालंकार सूत्र - वृत्ति ३।२।१४
5- दण्डी : काव्यादर्श - १। ५१

ने इसकी प्रतिष्ठा काव्य के आत्मा के रूप में किया है, यथा --

> 'तेन रस एव वस्तुत आत्मा वस्त्वलङ्कारध्वनितु
>
> सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति ।'[1]

रस की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होने पर रस की परम्परागत शैली वाले आचार्यों में श्रेष्ठ भरतमुनि ने रस के ९ भेद बताये हैं । ये रस शृङ्गार,[2] करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त हैं ।

इस प्रकार रस के भेदों में पूर्ववर्ती सभी आचार्यों ने भक्तिरस का कहीं भी उल्लेख नहीं किया । किन्तु भक्ति काव्यों की परम्परा में भक्तिरस का अभ्युदय हुआ । क्योंकि भक्ति काव्यों में काव्य का श्रेय पूर्णतया भक्ति से ही पूर्ण रहा । सामान्य रस से भक्तिरस का प्रवर्तन का श्रेय श्री रूप गोस्वामी को दिया जाता है । परवर्ती आचार्यों ने इनकी परम्परा का अनुमोदन करते हुए भक्तिरस का विवेचन किया । इन आचार्यों में मधुसूदन सरस्वती, आचार्य वल्लभ, कर्णपूर गोस्वामी इत्यादि हैं । इन्होंने रसनिरूपण की प्रक्रिया के क्रम में काव्यशास्त्रीय परम्परा में स्वीकृत भक्तिरस की अभिव्यंजना की । भक्तिकाव्यों में भक्तिरस को धर्ममूलक माना । भक्तिरस पर रचित ग्रन्थों में सामान्य रसों को भक्तिरस के अन्तर्गत मानकर इन सबका अन्तर्भाव भक्तिरस में माना और उसकी विशद् व्याख्या की । इन आचार्यों के अनुसार भक्तिकाव्य में स्वीकृत भक्तिरस शुद्ध रस है ।

भक्तिरस --

संस्कृत काव्यशास्त्र के परवर्ती आचार्यों ने भक्तिरस का विरोध नहीं किया, पर सर्वप्राचीन अलंकार सम्प्रदाय के कई आचार्यों ने भक्तिरस का बीज

१- अभिनवगुप्त - ध्वन्यालोक लोचन, पृष्ठ ८५

२- रस के भेद -- शृंगारहास्य करुण रौद्र वीर भयानका: ।
बीभत्साद्भुत शान्ताख्या: काव्ये नव रसा:स्मृता: ।।
- भरतमुनि नाट्यशास्त्र,

बो दिया था। इसी बीज को अनेक प्रेरणास्रोतों से प्रेरित होकर भक्ति-सम्प्रदाय के भक्तों ने अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित कर भक्तिरस का विशद् विवेचन किया।

आनन्द-साधना ही रसत्व का परम लक्ष्य है। इस कारण भक्तिशास्त्र के आचार्यों ने लौकिक अंश मात्र आनन्द को ही साध्य नहीं बनाया, अपितु उनका लक्ष्य आनन्दराशि भगवद्गत आनन्द का आस्वादन कराना है और चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति को ही प्रयोजन रूप में मानते हुए भक्तिरस के रसत्व को स्वीकार किया है। संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने भक्ति को मन की भगवद्विषयक एक सहज वृत्ति मानकर इसके रसत्व को स्वीकार नहीं करते हैं। कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों ने भक्तिरस को भाव की संज्ञा दी तो कुछ ने रसवद् अलंकार कहा। कुछ आचार्यों ने उसे नवों रस के अन्तर्गत ही परम्परानुमोदन करते हुए अन्तर्भूत माना।

भरत ने तो भक्तिरस को स्वतन्त्र रसत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया और न ही भाव के रूप में परिगणन किया। दण्डी ने भी भक्ति को रस न मानते हुए भरत के मतों का परम्परानुमोदन किया। किन्तु ध्वनिवादी आचार्यों ने शान्तरस का सर्वप्रथम समर्थन किया। यह पुरुषार्थ के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष का सूचक है क्योंकि मोक्ष रूप अध्यात्म का कारण तत्व ज्ञान रूप हेतु से युक्त तथा निःश्रेयस रूप फल से युक्त शान्तरस को माना है, और भक्ति के प्रयोजन के समीप रखा।

लेकिन महर्षि शाण्डिल्य ने 'द्वेषप्रतिपक्षाभावात् रस शब्दवाच्य रागः' इस रूप में तथा स्वयम् भेश्वर सूरि ने 'रसश्च रागः' इस रूप में भक्ति के रसत्व को स्वीकार किया। उत्पल ने भी भक्तिरस के प्रसंग में अपने ग्रन्थ में लिखे हैं --

'जयन्ति भक्तिपीयूष रसासवरोन्मदाः।'

श्रीधर स्वामी भी 'भगवद् भावार्थ दीपिका' में भक्ति की रसरूपता

पर विचार करते हुए वर्णन भी किया है --

`सर्वे शान्त: सप्रेमभक्तिक:`

यहां तक बोपदेव ने पहले कदाचित् भक्ति रस का कुछ अधिक विशदीकरण किया और अपनी कृति `मुक्ताफलम्` में प्रथम भक्ति रस में नवों रसों को अन्तर्भूत किया और पुन: सिद्ध किया कि पूर्व स्वीकृत भावों में ऐसा कोई भाव नहीं है जो भक्ति में अन्तर्भूत की क्षमता रख सके । निष्कर्षत: भक्ति ही रसत्व की क्षमता रखता है ।

पण्डितराज जगन्नाथ ने भक्ति रस विवेचन में शान्तरस से भेद भी बताया है और कहा --`यद्यपि शान्त रस एवं भक्ति रस में विषय त्याग, निर्विकारिता, नित्यानित्य वस्तुविवेक, वैराग्यशमादि साधना रूप मात्र भेद से दोनों में ग्राह्य है किन्तु भावना की तीव्रता, उत्कट प्रेमानुभूति, रसाद्रता, सर्वग्राहिता एवं प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त भेद है ।`[1]

इस प्रकार भक्ति रस अथवा भगवत् प्रेमरस भगवत् स्वरूप ही है । इस ब्रह्मस्वरूप आनन्द के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । इस भक्तिरस को योगियों का समाधिगत ब्रह्मानन्द भी कहते हैं । भक्त काव्यों में भक्ति की अभिव्यक्ति रस रूप में ही होती है, रस पृथक रूप काव्यों में उसका अस्तित्व नहीं सम्भव है । देवता-विषयक होने पर रति भक्तिरस की संज्ञा से अभिहित होती है । यह आश्रय आलम्बन दोनों में भक्तों की परोक्ष रूप से साधारण सामाजिकों को श्रवण वेला में अनुभूत होता है ।

भक्ति रस का अर्थ -

भक्ति चाहे साधनावस्था में हो या साध्यावस्था में हो, दोनों रूपों में आनन्दमयी अनुभूति होती है । `भगवद् भक्ति चन्द्रिका` में भक्ति रस के अर्थ की

१- पण्डितराज जगन्नाथ `रसगंगाधर` ।

स्थापना इस प्रकार हुई --

`अनासंग की जननी परापरबोध के विपरीत सामंजस्य उपस्थापिका, परमप्रेमरूपा और परमानन्ददायिनी भक्ति ही भक्तों की दृष्टि में परमभक्ति है और रसपोषकों की दृष्टि में रस ।`[१]

मधुसूदन सरस्वती ने `भक्तिरसायन` में कहा --

`भक्तिरस में अविच्छिन्न चिदानन्द श्रीभगवान् का स्फुरण होने के कारण आनन्दातिरेक का लाभ होता है ।`[२]

इस प्रकार भक्तिरस को काव्यशास्त्रीय रूप की कोटि में निरूपित कर साहित्यशास्त्र के आधार पर किया गया है । इसकी परिभाषा इस प्रकार है --

`विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा श्रवण, मननादि की सहायता से स्थायि भाव रूप देवताविषयक रति ( कृष्णरति ) भक्तों के हृदय में आस्वाद्यता को प्राप्त करती हुई भक्तिरस कहलाता है ।`[३]

विभावादि सूत्र में नवीनता नहीं है किन्तु भक्तिरस की दृष्टि से श्रवणकीर्तनादि करते हुए जब इन्द्रियों की समस्त क्रियाएं स्तम्भित होकर देवता-

---

१- हिन्दी काव्यशास्त्र में रस-सिद्धान्त (सच्चिदानन्द चौधरी)

२- मधुसूदन सरस्वती `भक्तिरसायन`

३- विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकै र्व्यभिचारिभि: ।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभि: ।
एषा : कृष्णरति: स्थायिभावो भक्तिरसो भवेद् ।।

- भक्तिरसामृत सिन्धु, पृष्ठ २२४
प्रथम लहरी (दक्षिण विभाग)

विषयक की अदृष्ट, आकुल, अनुभूत या नित्य नवायमान वर्द्धनशील माधुरी की चमत्कारितामय आस्वाद्यता प्राप्त करती है और स्थायिभाव भक्तिरस में परिणत हो जाती है ।

भक्तिरसास्वादन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जिनकी जन्मान्तरीय अथवा जन्मसम्बन्धीय भगवद् भक्ति वासना निहित है उन्हीं के हृदय में भक्तिरस का उदय होता है । जिनके भक्ति के द्वारा दोष समूह निर्मूल हो गये हैं उस कारण से जिनके चित्त प्रसन्न एवं उज्ज्वल हो तथा जो श्रीमद्भागवत में अनुरक्त रसिकों के साथ संसर्ग उल्लास है और जिन्होंने श्री गोविन्द चरणारविन्द की भक्ति सुख मानकर जीवन स्वरूप किया तथा प्रेम के अन्तरंग कृत्यों का जो अनुष्ठान करते हैं उन भक्तों के हृदय में संस्कार द्वारा उज्ज्वलता प्राप्त कर देवताविषयक रति विराजती है वह रति आस्वादनीय होकर परमानन्द स्वरूपा होती है ।

इस प्रकार भक्तिरसाचार्यों ने परमानन्द स्वरूप रस के प्रति विभावादि की कारणता स्वीकार करते हैं यह भगवद् विषयक रति को जाग्रत करते हुए भक्ति क्षेत्र में साधारणीकरण द्वारा भक्तिभाव से मिश्रित भावना का आस्वादन करते हैं ।

भक्तिरस में साक्षात् भगवान् ही रस के आलम्बन हैं, भागवत् श्रवणादि उद्दीपन विभाव है । रोमाञ्च अश्रुपात आदि अनुभाव है । हर्ष, शोक,सुख आदि संचारी भाव है - देवताविषयक रति ही स्थायिभाव है । इसको स्पष्ट करते हुए कन्हैयालाल पोद्दार ने लिखा भी है --

'श्रुतियों के अनुसार जिस ब्रह्मानन्द पर रस का रसत्व अवलम्बित होता है और सभी साहित्याचार्य जिसे स्वीकार करते हैं उस ब्रह्मानन्द से भी अधिक जो भक्तिजन्य आनन्द तदीय भक्तजनों को होता है उस भक्ति को स्वतन्त्र रस न मानना और क्रोध, शोक, भयादि व्यञ्जना को रससंज्ञा देना वस्तुत: युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है ।'

मक्तिरस की परिभाषा से इसकी निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं —

(१) भक्तचित्त में आविर्भूत हुई वह संविद्रूपा रति का प्रकाशन करती है।

(२) श्रवणादि के द्वारा भक्तहृदय में सविषया रति का आविर्भाव हो जाता है।

(३) भक्तिरस की अवस्थिति भक्तहृदय में ही होती है क्योंकि भक्त भावुक होता है।

(४) अलौकिक अनुभूति होने के कारण भक्ति के संस्कार न होने पर अभक्त सामाजिक को उस रसतत्व की अनुभूति नहीं होती है।

भक्तिरस के विषय, आश्रय और अधिकारी -

इसका विवेचन इस प्रकार है --

(१) विषय - भगवद्विषयक प्रेम को ही भक्ति कहा। भक्तिरस में समस्त रति रूपों का एक ही विषय होता है, वह है भगवान्।

(२) आश्रय — आश्रय रति के उन मूलपात्रों से लिया गया है जिनमें यह भक्तिरूपा रति नित्यरूप में अवस्थित रहती है।

(३) अधिकारी — भक्तिरस में भक्त ही भक्ति के अधिकारी हैं क्योंकि रसास्वादन भाव भक्तों के हृदय में रहता है।

भक्तिरस की परिभाषा में चार अवयवों का विवेचन है। यह चार विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, स्थायिभाव हैं।

१- विभाव[१] — रत्यादि के कारण का नाम विभाव है। रत्यादि के कारण

१- तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वाद न हेतव:।
ते द्विधाऽऽलम्बना एके तथैवोद्दीपना: परे।
-भक्तिरसामृत सिन्धु, दक्षिण विभाग
लहरी -१, पृष्ठ २२८

दो प्रकार हैं —

(१) आलम्बन - रति के विषय तथा आधार दोनों ही आलम्बन विभाव हैं। इसके दो प्रकार हैं - विषय और आश्रय।

(२) उद्दीपन विभाव - रत्यादि भावों को उद्दीप्त करने वाले हैं - कौमुदी, उद्यान, मानसिक, वाचिक गुण इत्यादि उद्दीपन हैं।[1]

२- अनुभाव[2] -

अनुपश्चात् भवन्तीति अनुभावा: अर्थात् पश्चात् जो उत्पन्न होता है। मम्मटादि आचार्यों ने स्थायिभावों के कार्यों का प्रतिपादन करने वाले को अनुभाव कहा है। बाह्य क्रियाओं के रूप में होने के कारण हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करने वाली चेष्टाएं तथा वचन ही मुख्यत: हैं।

'अनुभाव चित्त में स्थित भावों के अर्थात् कृष्णरति के अवबोधक या परिचायक होते हैं।'

नृत्य विलुंठन, गीत, चिल्लाना, देहमरोड़ना, हुंकार करना,

१- उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ताभावमुद्दीपयन्ति ये।
ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टा: प्रसाधनम्।।
- भक्तिरसामृत सिन्धु दक्षिण विभाग, लहरी - १

२- अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामावबोधका:,
नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम्।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता।।
लालास्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्कादयोऽपि च।।
- भक्तिरसामृत, द्वितीय लहरी १, २
दक्षिण विभाग।

जम्माई लेना, लम्बी सांस लेना, अट्टहास, हिचकी लेना आदि भक्तिरस के अनुभाव हैं।

यह दो प्रकार के होते हैं --

(१) सात्विक - सात्विक अनुभाव में बुद्धि का सम्पर्क न होने के कारण स्वत: स्फूर्त ही सात्विक अनुभाव है।

(२) उद्भास्वर - जो बाह्य विकार रूप में प्रकाशित होते हैं उन्हें उद्भास्वर कहते हैं।[1]

३- सात्विक भाव[2] --

साक्षात अथवा किञ्चित व्यवधान से कृष्ण के सम्बन्धी भावों से आक्रान्त चित्त को विद्वान सत्व कहते हैं और जो सत्व भाव से उदित होते हैं उन्हें सात्विक भाव कहते हैं। सात्विक भाव दो प्रकार के होते हैं --

(१) मुख्य सात्विक भाव — साक्षात् रूप से कृष्ण व्यवधान से सम्बन्धी रति से आक्रान्त मुख्य है।

(२) गौण सात्विक भाव-- अन्य के माध्यम से रति आक्रान्त गौण सात्विक भाव कहे गये हैं।

सात्विक भाव आठ बताये गये हैं -- स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्पन, वैवर्ण्य, अश्रुपात एवं मूर्च्छा।

१- ते बहिर्विक्रिया प्राया: प्रोक्ता। उद्भास्वराख्या।।

२- कृष्णसम्बन्धिभि: साक्षात्किञ्चिद्वा व्यवधानत:।
भावैश्चित्तमिहाक्रान्तं सत्त्वमित्युच्यते बुधै:।
सत्वादस्मात् समुत्पन्ना ये भावस्ते तु सात्विका:।।
- भक्तिरसामृत सिन्धु
२।३।१-२

४- व्यभिचारी भाव -

वि + अभि + चारी अर्थात् व्यभिचारी । विशेष रूप से स्थायिभाव के अभिमुखगमन करने वाला भाव व्यभिचारी भाव कहलाता है । यह स्थायिभाव से उत्पन्न होकर वर्द्धित करता है तथा स्थायिभाव का ही रूप बन जाता है ।

भक्तिरसामृत सिन्धु में इसका अर्थ इस प्रकार है —

'विशेष अभिमुख्य के साथ स्थायि भावों के प्रति विचरण करने से इन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं । ये वाक्य, भ्रू नेत्रादि अंग तथा सत्वोत्पन्न अनुभावों के द्वारा सूचित होते हैं । भावों की गति संचारित करने के कारण इसे संचारी भाव भी कहते हैं । जैसे समुद्र की तरंगें उत्पन्न होकर लीन होकर समुद्र-रूपता को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार स्थायिभाव से उत्पन्न संचारी भाव उसी में लीन होकर स्थायिभाव की रूपता को प्राप्त करता है ।'[1]

इसका वैशिष्ट्य यह है कि यह कभी तिरोभूत हो जाते हैं और कभी प्रादुर्भूत हो जाते हैं । विभिन्न रसों में संचरण करते हुए एक व्यभिचारी भाव अनेक रसनिष्ठ हो सकते हैं । व्यभिचारी भाव संख्या में ३३ होते हैं ।[2]

५- स्थायिभाव[3] --

स्थायिभाव की स्थिति 'उत्तम नृप' के समान काव्य मे मानी जाती

१- विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ।
वाक्याङ्ग सत्व सूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिण: ।
संचारयन्ति भावस्य गतिं संचारिणोऽपिते ।।
- भक्तिरसामृत सिन्धु,४ लहरी, पृष्ठ ३६६,दक्षिणविभाग ।

२- निर्वेदग्लानि शङ्का - - - - विज्ञेया व्यभिचारिण: ।
-काव्यप्रकाश ४।३१-३४, पृष्ठ १५५

३- अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतं नयन् ।
सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते ।।
- भक्तिरसामृत सिन्धु,दक्षिण विभाग, ५ लहरी,
पृष्ठ ५००

है । रस की निष्पत्ति के लिए स्थायिभाव होना अत्यन्त आवश्यक है ।

`अविरुद्ध तथा विरुद्ध भावों को वशीभूत करके जो भाव श्रेष्ठ राजा की भांति शोभित होता है वह स्थायिभाव कहलाता है ।`[1]

स्थायिभाव काव्यशास्त्र में ८ होते हैं --

रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय ये प्रत्येक रस के स्थायिभाव हैं ।

रस का अङ्गित्व -

काव्यशास्त्रियों के अनुसार काव्य अथवा नाटक में अभिव्यक्त सभी रसों का सन्निवेश रहता है । प्रश्न यह उठता है कि जबकि काव्यों में अनेक रसों का परिपोष हो रहा हो तो उस दशा में किसी एक की अंगिता कैसे मानी जाए ? इसको भरतमुनि ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया --

`काव्य में व्यक्त अनेक रसों में से जो बहुत अर्थात् अधिक या प्रधान रूप में विद्यमान रहता है वह रस स्थायि या अङ्गी और शेष रस संचारी या अंगभूत होते हैं ।`[2]

भरतमुनि के इस मत की पुन: प्रतिष्ठा आगे चलकर सर्वप्रथम आनन्दवर्धन ने की । आनन्दवर्धन के अनुसार --

`प्रबन्धों में नाना रसों का निबन्धन होने पर भी उनका उत्कर्ष

१- रति हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभाव प्रकीर्तिता: ।।
- काव्यप्रकाश ४।३०, पृष्ठ १५५

२- बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद् बहु ।
स मन्तव्यो रस: स्थायी शेषा: संचारिणो मता: ।।
- नाट्यशास्त्र ७। २०

चाहने वाले के द्वारा एक रस अङ्गी बना दिया जाना चाहिए ।[1]

इसकी व्याख्या करते हुए कहा -- प्रबन्धों में अर्थात् महाकाव्यादि में अथवा नाटकादि में, बिखरे हुए रूप में अंगागिभाव से बहुत से रसों का उपनिबन्धन किया जाता है, इस प्रसिद्धि के होते हुए भी जो प्रबन्धों की छाया की अधिकता का योग चाहता है । अर्थात् जो प्रबन्ध का उत्कर्ष चाहता है उसके द्वारा उन रसों में अन्यतम् कोई विवक्षित रस अङ्गी के रूप में सन्निविष्ट कर दिया जाना चाहिए । यह अधिक उचित मार्ग है । नाट्यदर्पणकार के अनुसार --

'नाटक (अथवा काव्य) में एक रस प्रधान होना चाहिए और अन्य रस उसके अंग ।'[2]

अन्त में इसका समाधान करते हुए आनन्दवर्धन ने यह प्रतिपादित किया है कि --'काव्यों में पहले ही प्रस्तुत तथा बार-बार अनुसन्धीयमान होने के कारण जो रस है वह सकल काव्य में व्याप्त होता है । फलस्वरूप बीच-बीच में आने वाले रसान्तरों का समावेश उसकी अंगिता को नष्ट नहीं करता है । तात्पर्य यह है कि वही अङ्गीरस हुआ शेष उसके अङ्ग ।[3]

भक्तिरस के भेद -

भागवत् आदि पुराणों के श्रवण करते समय भक्त अपने हृदय में जिस

१- प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारस निबन्धने ।
एको रसोङ्गीकर्त्तव्यस्तेषा मुत्कर्ष मिच्छता ।।
- ध्वन्यालोक लोचन ३। २१

२- एकांगिरसमन्यांश्च - - - हि नाट्यदर्पण १। ११। १५

३- रसान्तर समावेश: प्रस्तुतस्य रसस्य य: ।
नोपहन्त्यङ्गितामस्य सोऽस्यं स्थायित्वे नावभासिन: ।।
- ध्वन्यालोक लोचन ३। २२

रस का अनुभव करते हैं वह भक्ति नामक दशम रस के रूप में व्याख्यायित है। भक्तिरस के अर्थ के साथ उसके भेदों का भी विवेचन किया। भक्तिरस के अर्थ में उसका स्थायिभाव रति को मुख्य मानकर उसके भेद किये गये हैं क्योंकि भक्तिरस में रति के कारण ही भक्त उसका आस्वादन करते हैं। इसी रति के आधार पर भक्तिरस के भेदो का वर्णन है यथा --

(१) मुख्या रति[1] --

शुद्ध सत्व विशेष रूप से रति ही मुख्यारति है। इसके दो प्रकार हैं --

१- स्वार्थारति - अनुकूल भावों से अपने को पुष्ट करती है।[2]

२- परार्थारति - परार्था रति वह है जो स्वयं संकुचित होती हुई विरुद्ध एवं अविरुद्ध भावों को अनुगृहीत करती है।[3]

मुख्यारति के अनुसार भक्तिरस के पांच प्रकार हैं --
(१) शुद्ध, (२) प्रीति, (३) सख्य (४) वात्सल्य, (५) प्रियता।[4]

(२) गौणी रति[5] -

जब देव के प्रति रतिभाव अपने को संकुचित करते हुए किसी अन्य भाव

१- शुद्धसत्व विशेषात्मा रतिर्मुख्येति कीर्तिता।
मुख्याऽपि द्विविधा स्वार्था परार्था चेति ।।
- मुख्यारति का अर्थ २। ५। ३

२- अविरुद्धैः स्फुटं भावैः पुष्णात्यात्मानमेव या।
- स्वार्थारति अर्थ, भक्तिरसामृत सिन्धु १५।४

३- अविरुद्धं विरुद्धं च सङ्कुचती स्वयं रति।
या भावाननुगृह्णाति सा परार्था निगद्यते ।। २। ५।४

४- शुद्धा प्रीतिस्तथा सख्यं वात्सल्यं प्रियतेत्यसौ।
स्व परार्थैव सा मुख्या पुनः पंचविधाभवेत ।। २।५।६

५- विभावोत्कर्षजो भावविशेषो योऽनुगृह्यते।
सङ्कुचन्त्या स्वयं रत्या सा गौणी रतिरुच्यते ।। - २।५।३०

विशेष को जो विभावोत्कर्ष के कारण उत्पन्न हुआ अनुगृहीत अथवा पोषित करता है वह गौणी रति कहलाता है। जैसे - हासादि भाव आधारहीन होने के कारण शक्तिवान भाव के द्वारा दबकर विलीन हो जाते हैं। साथ ही अन्य भावों से शक्ति पाकर उपासकों में स्थायित्व लेकर रुचि को संवर्धित करते हैं।

गौणी रति के अनुसार भक्तिरस के सात प्रकार हैं :--
(१) हास्य, (२) अद्भुत, (३) वीर, (४) करुण, (५) रौद्र, (६) भयानक, (७) वीभत्स।[१]

इस प्रकार भक्ति रस के १२ प्रकार हुए। पुराणादिकों ने केवल ५ प्रकार गौणीरति के अनुसार माना क्योंकि करुण, हास्य के व्यभिचारी भावों का पर्यवसान् हो जाता है। साहित्यशास्त्र में वर्णित सात स्वतन्त्र रस की गौण भक्ति रस रूप में अन्तर्भूत किया है। मुख्य भक्तिरस में शुद्धा को शान्त भक्तिरस तथा शृङ्गार को मधुर या प्रियता भक्तिरस के रूप में अभिव्यक्त किया है।

मुख्य भक्ति रस -

शान्त, प्रीति, प्रेयो (सख्य), वात्सल्य, मधुर यह पांच भक्तिरस है।

(१) शान्त भक्तिरस-

यह योगियों का विषय है। यह अद्वैत की अनुभूति के साथ आत्म-साक्षात्कारात्मक निर्विशेष ब्रह्मस्वाद की अनुभूति कराता है। प्रभु की कृपा पाकर जब ज्ञानी अपनी भक्ति में निमग्न हो जाता है भक्तिरस में भक्त की यही स्थिति योगी जैसी होती है जिसे शान्त रस रूप में कहा गया है।

`विभावानुभाव, संचारी भाव एवं सात्विक भावों से शम स्थायिभाव

१- हास्योऽद्भुतस्तथा वीरकरुणोरौद्र इत्यपि।
भयानक: सवीभत्स इति गौरश सप्तधा।।

अपनी परिपुष्टावस्था में शान्त भक्तिरस संज्ञा सुधा से अभिहित होता है ।[1]

इसमें चतुर्भुज रूप शंख, चक्र गदादि भगवान् और शान्त जन आलम्बन विभाव होते हैं । उद्दीपन विभाव– असाधारण एकान्त, सेवन, ज्ञानीभक्त सम्पर्क ध्यान शंखनादादि हैं । अनुभाव साधारण और असाधारण दोनों प्रकार की होती है । साधारण अंगों को तोड़ना, भक्ति उपदेश, स्तवन और असाधारण में ज्ञानमुद्रा का प्रदर्शन, निरपेक्षता, मौनधारी आदि क्रियाएं हैं । रोमाञ्च, स्वेद, कम्प आदि सात्विक भाव होते हैं । निर्वेद, धृति, विषाद, हर्ष, आवेग आदि संचारी भाव होते हैं ।

शान्तरस के निर्विकार होने से अधिकांश आचार्यों ने इसको रस नहीं माना किन्तु भक्ति में भगवद्निमग्नता के कारण शम रति की स्थिति अपरिहार्य है । इसके बिना भक्त भगवद्निष्ठ नहीं हो सकते हैं । इसलिए इसे मुख्य भक्तिरस के अन्तर्गत माना है । इसका समर्थन विष्णुधर्मोत्तरपुराण में इस प्रकार वर्णन है —

> नास्ति यत्र सुखं दु:खं न द्वेषो न च मत्सर: ।
> सम सर्वेषु भूतेषु स शान्त: प्रथितो रस: ।।[2]

(२) प्रीति भक्तिरस -

अपने अनुरूप विभावादि के द्वारा भक्त के हृदय में आस्वादन योग्यता को प्राप्त हुई प्रीति स्थायिभाव प्रीति भक्तिरस की संज्ञा सुधा से अभिहित है ।[3]

१- वाच्यमानैर्विभावाद्यै: शमिनां स्वाद्यतां गत: ।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरै: शान्त भक्तिरसस्मृत: ।। ३।१।४

२- भक्तिरसामृत सिन्धु - शान्तलहरी - ३०२ श्लोक ।

३- आत्मोचितैर्विभावाद्यै: प्रीतिरास्वाद नीयताम् ।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीति भक्तिरसोमत: ।। ३।२।३

इस रस को भक्ताचार्यों ने अपनी अनुभूति एवं साम्प्रदायिक चेतना के अनुरूप भक्ति रस के रूप में उद्घोष किया । यह प्रीति भक्ति रस दो प्रकार की है --

(१) सम्भ्रम प्रीति --

प्रभुता के ज्ञान से चित्त में आदरयुक्त कम्पन को सम्भ्रम प्रीति कहते हैं।[१]

(२) गौरव प्रीति --

सांसारिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले जनों में गुरुजनों की बुद्धि ही गौरव प्रीति है।[२]

प्रीति भक्ति रस में देवता के प्रति दासभाव तथा कृष्ण दास दोनों ही आलम्बन विभाव है। कृपा, भक्ति का सान्निध्य, चरणधूलि, गुण श्रवण, मधुर चितवन, चरणदर्शन आदि उद्दीपन विभाव हैं। अनुभाव में कर्तव्यपालन, मैत्री, वैराग्य आदि हैं। स्तम्भ आदि सात्विक भाव है। हर्ष, उन्माद, मोह, गर्व, चिन्ता, बहुता आदि व्यभिचारी भाव है। इन सभी से पुष्ट होकर ही प्रीति भक्ति रस कहलाता है।

(३) प्रेयोभक्ति रस --

इसमें उपास्य एवं उपासक में समानता का व्यवहार होता है तथा दोनों का स्तर भी एक होता है, इसलिए सख्यभाव से परिपूर्ण हृदय वाले सहृदय जन ही इसका अनुभव करते हैं।

अनुकूल विभावादि के द्वारा सख्य रति नामक स्थायिभाव चित्त में पुष्ट होता है तब प्रेयान् रस की निष्पत्ति होती है :

१- सम्भ्रमः प्रभुताज्ञानात्कम्पश्चेतसि सादरः ।
अनेनैक्यं गताप्रीति सम्भ्रमप्रीतिरुच्यते ।।

२- देह सम्बन्धिताभात्राद् गुरुधीरत्र गौरवम् ।
तन्मयो लालके प्रीति गौरव प्रीतिरुच्यते ।।

इसमें द्विभुज, चतुर्भुज, देवता रूप तथा प्रियजन, मित्रगण, आलम्बन विभाव हैं। देवता का वय रूप, वेणु क्रीडा, चेष्टाएं, वेशभूषा आदि उद्दीपन विभाव है। क्रीडा, नृत्यगान, जलविहार, आदि अनुभाव होते हैं। उग्रता, त्रास, प्रमाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। स्वेद, रोमाञ्च, स्वर विपर्यय अश्रु आदि सात्विक भाव हैं। इसकी वृद्धि भी प्रणय, प्रेम स्नेह तथा रागादि क्रम से होती है। प्रेयोरस सख्य जनों को अत्यन्त प्रिय होता है।

(४) वात्सल्य भक्तिरस --

विभावादि के द्वारा वात्सल्य रति नामक स्थायिभाव से परिपुष्ट होता हुआ चित्त में आनन्द की अनुभूति करता है[१]। वात्सल्य में देवता-विषयक रति की प्रीति अवश्य होती है।

वात्सल्य रस में गुरुजन, पूज्य व्यक्ति, देव आलम्बन विभाव है, कौमार्य, रूप, वेश, आभूषण, लीला आदि उद्दीपन विभाव है। आशीर्वाद, आज्ञा देना, उपदेश आदि अनुभाव हैं। नामोच्चारण चुम्बन तथा आलिङ्गन आदि क्रियाएं मित्रवत् रहती हैं। स्तम्भ, हर्ष आदि सात्विक भाव हैं। अपस्मार, जाड्य इत्यादि व्यभिचारी भाव है। इस रस का समर्थन करते हुए भक्ताचार्यों ने लिखा भी है --

स्फुट चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलताऽस्येह पुत्राद्यालम्बनं मतम्॥[२]

१- विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायिपुष्टिमुपागतः।
एष: वात्सल्यनामात्र: प्रोक्तोभक्तिरसोबुधैः॥
३।४।१

२- साहित्यदर्पण - ३।२५१

(५) मधुरभक्तिरस --

यह अत्यन्त दुर्लभ, रहस्ययुक्त सर्वश्रेष्ठ रस है । इस रस में सर्वत्र आलम्बन साधारण पुरुष न होकर एक देवता होता है । लौकिक व मानवीय प्रवृत्तियों के अधिक निकट होने के कारण यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ।

'आत्मचित्त में विभावादि के द्वारा परिपुष्ट मधुर नामक रति स्थायि-भाव सहृदयों के हृदय में मधुर भक्तिरस का अभ्युदय करता है ।'[१]

इसमें कायिक,सौन्दर्य लीला, वैदग्ध्य सम्पत्ति से युक्त आलम्बन विभाव है । प्रेयसी, प्रिय के गुण, नाम, चरित आदि उद्दीपन विभाव हैं । कटाक्षादि नेत्र प्रेक्षापण, हास आदि अनुभाव है । आलस्य, उग्रता को छोड़ शेष सभी व्यभिचारी भाव इसके अन्तर्गत आते हैं ।

गौणभक्तिरस -

उपर्युक्त सभी प्रकारों में भाव चाहे सख्य हो या दास इन सभी भावों का पर्यावसान् भगवद्भक्ति में ही होता है । गौण भक्तिरस में भक्ति की झलक होती है । प्रकृति के अनुसार रस की निष्पत्ति होती है किन्तु रति मिश्रित होती है । इस कारण इनकी संज्ञा भक्तिरस में गौण रूप में होती है । गौण भक्तिरस में प्राधान्य अन्य हास अद्भुतकरुणादि भावों का होता है ।

(१) हास्य भक्तिरस -

हास्य अवस्था में शरीर में रोमांच के कारण कम्पन होने लगता है । अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है । व्यक्ति शिष्ट समाज में किसी का ख्याल किये बिना इस अवस्था में ताली बजाते हाथ पैर हिलाते हुए हास्य करते हैं ।

१- आत्मोचित्तै विभावाद्यैः पुष्टिं नीतां सतां हृदि ।
मधुराख्यां भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरारतिः ।।

३। ५। २

'भक्तिरस में विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर हासरति नामक स्थायिभाव से युक्त हास्य भक्तिरस होता है।'[1]

इसमें कृष्ण देवता आलम्बन विभाव हैं। अद्भुत, वचन, वेष, चरित्र ही उद्दीपन विभाव है। ओष्ठ, कपोल, स्पन्दन आदि अनुभाव है। हर्ष, आलस्य, अविहत्था व्यभिचारी भाव होते हैं।

(२) अद्भुत भक्तिरस -

यह आलौकिक सर्वलोकोत्तर में घटित होने वाला अद्भुत भक्तिरस है। इसमें भगवान् की अद्भुत लीलाएं ही भक्तों के हृदय में अद्भुतता को उत्पन्न करता है। जिससे भक्त अपने देवता को क्रियाओं को समझता है।

'आत्मोचित विभावादि के द्वारा परिपुष्ट एवं आस्वाद्य होकर विस्मय रति नामक स्थायिभाव ही भक्ति के चित्त में अद्भुत भक्ति रस का अभ्युदय करता है।'[2]

देवता व भक्त आलम्बन विभाव है। देवता की चेष्टाएं, लीलाएं उद्दीपन विभाव हैं। नेत्र का विस्तार, अश्रु, पुलकनादि अनुभाव है। आवेग, हर्ष, जाड्य व्यभिचारी भाव होते हैं। विस्मय नामक रति स्थायिभाव है।

(३) वीरभक्तिरस -

'अपने उचित विभावादि के द्वारा उत्साह रति नामक

१- वक्ष्यमाणै विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता।
हास्य भक्तिरसो नामबुधैरेष निगद्यते ॥
२। उत्तर भाग -१

२- आत्मोचितैर्विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्त चेतसि।
सा विस्मय रति नीताऽद्भुतभक्तिरसो भवेत् ॥
- द्वितीय लहरी, उत्तर भाग १

स्थायिभाव आस्वाद्यमान होकर वीर भक्तिरस की चर्वणा होती है ।[1]

वीर भक्तिरस चार प्रकार का होता है --

दया, धर्म, दान, युद्ध । इन चारों में अलग-अलग व्यभिचारी एवं अनुभाव होते हैं ।

देवता और भक्त आलम्बन विभाव है । इसमें आत्मश्लाघा, आस्फोट, विस्पर्धा, अस्त्रग्रहणादि उद्दीपन विभाव है । सिंहनाद आक्रोश, समर दृढ़ता, भयभीत आदि अनुभाव होते हैं । गर्व आवेग, धृति, क्रीडा, हर्ष, उत्सुकता व्यभिचारी भाव है । उत्साह स्थायिभाव होता है ।

(४) करुणभक्तिरस --

'शोक रति अपने उचित विभावादि के द्वारा परिपुष्ट होकर करुणरस की चर्वणा कराता है ।'[2]

शोक रति के बिना करुण रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । इसका अविनाभाव सम्बन्ध है । शोक भाव प्रेमाधिक्य के कारण होता है ।

भगवत् प्राप्ति भगवत् प्राप्ति न होने से सुख का अभाव ही आलम्बन विभाव है । भगवत् के कर्म, गुण, रूपादि उद्दीपन विभाव है । विलाप, मुख सूखना, चिल्लाना, रुदन आदि अनुभाव है । जाड्य, निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, उन्माद इत्यादि सात्विक भाव हैं । आलस्य, व्याधि, मोह आदि व्यभिचारी भाव हैं ।

१- सैवोत्साह रतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितैः ।
अनीयमाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवेत् ।।

३।३।१

२- आत्मोचितै विभावाद्यैर्नीता पुष्टि सतां हृदि ।
भवेच्छोकरति भक्ति रसोऽयं करुणाभिधः ।।

(५) रौद्रभक्तिरस -

भक्त का भगवत् प्रीति से क्रोधभाव उत्पन्न होने से यह रस की चर्वणा होती है।

'भक्तजनों के हृदय में क्रोध रति स्थायिभाव अपने उचित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर रौद्र भक्तिरस अभिव्यक्त होता है।'[१]

इसमें कृष्ण के प्रति हित-अहित भाव ही आलम्बन विभाव है। उपहास, वक्रोक्ति कटाक्ष, अनाद-रादि उद्दीपन विभाव है। हाथ मलना, ओंठ काटना, भुजा फड़कना आदि अनुभाव है। स्तम्भ आदि सात्विक भाव हैं। आवेग, जड़ता, गर्व, उग्रता आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

(६) भयानक भक्तिरस--

'आत्मोचित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर भय रति नामक स्थायिभाव भक्तिरस में परिणित हो जाता है।'[२]

देवता का दारुण होना आलम्बन विभाव है, भ्रू प्रक्षेपात, भ्रूभंग आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। मुखशोषास, भयदृष्टि, स्वेद, रोमाञ्च भ्रमित होना आदि सात्विक भाव हैं। शंका, आवेग, मरण आदि व्यभिचारी भाव है। भय नामक रति का होना अत्यन्त आवश्यक है।

१- नीता क्रोधरति: पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितै: ।
हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्तिरसोभवेत् ॥
४।५।१

२- वक्ष्यमाणै विभावाद्यै: पुष्टिं भयरतिंगता ।
भयानक भिधो भक्तिरसोधीरैरुदीर्यते ॥

(७) बीभत्सभक्तिरस --

'जुगुप्सा नामक रति अपने विभाव से परिपुष्ट होकर बीभत्स भक्तिरस की संज्ञा सुधा से अभिहित होती है ।'[१]

देव आश्रित और भक्त आलम्बन विभाव है । ग्लानि, मोह, दीनता, वेग, जाड्य आदि व्यभिचारी भाव है । थूकना, नासिका बन्द करना, दौड़ना, रोमांचित होना आदि अनुभाव है । अपने शरीर से घृणा ही भक्तजनों में जुगुप्सा भक्तिरस की चर्वणा कराता है ।

इस प्रकार गौण भक्तिरस में देवताविषयक भगवत् प्रीति नामक रति अप्रधान ही रहती है । किन्तु अप्रधान होकर भी अन्य रस की पुष्टि करती है । भगवत् प्रीति से सम्बन्धित होने के कारण इन रसों का अन्तर्भाव भक्तिरस में ही होता है ।

भाव का अर्थ :--

मम्मट के अनुसार --

'देवता, गुरु, मुनि, नृप एवं पुत्रादि विषयक रति और प्राधान्येन व्यंजित व्यभिचारी भाव को भाव कहते हैं ।'[२]

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार --

'विभावादि के द्वारा व्यङ्ग्य होने वाले हर्षादि (व्यभिचारी भावों) में किसी एक का होना ही भाव है ।'[३]

१- पुष्टिं निजविभावाद्यैर्जुगुप्सारतिरागता ।
असौ भक्तिरसो धीरैर्बीभत्सताख्य इतीर्यते ।।

२- रति र्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित: भाव प्रोक्त:
आदि शब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादि विषया ।
- काव्यप्रकाश ४। ३५

३- विभावादिव्यञ्ज्यमानहर्षादि न्यतमत्वं भावत्व ।
- रसगङ्गाधर, पृष्ठ ७४

व्यभिचारी भाव की तीन दशाएं होती हैं --

(१) भावोदय

इनमें किसी भाव का उदय वाली स्थिति को भावोदय कहते हैं ।

(२) भाव प्रशम

हर्षादि उत्पाद्यमान भावों की अपाय स्थिति को भावप्रशम या भावशान्ति कहते हैं ।

(३) तीसरी स्थिति तीन प्रकार की होती है --

एक भाव की स्थिति, दो भाव की स्थिति, दो से अधिक भावों की स्थिति ।

भावसन्धि --

एक दूसरे से न दबने वाले किन्तु एक दूसरे को दबाने में समर्थ दो भावों का एक ही स्थान में रहना भाव-सन्धि है ।[1]

भावशबलता --

जिस स्थान पर दो से अधिक भावों की उपस्थिति हो वहां भाव शबलता होती है । भावों की शबलता का तात्पर्य चमत्कृति है जो वाक्य में परिलक्षित होता है ।[2]

भावाभास --

`अनुचित विषय को आलम्बन बना लेना ही भावाभास कहलाता है ।[3]

१- भावसन्धिरन्योन्यानभिभूतयोरन्योन्याभिभव-
योग्ययो: समानाधिकरण्यम् ।
- रसगंगाधर, पृष्ठ १०४

२- भावशबलत्वं भावानां बाध्यबाधकभावमापन्नानामुदासीनां वात्याभिश्रणम् ।
- रसगंगाधर

३- एवमेवानुचितविषयाभावाभासा: । - रसगंगाधर, पृष्ठ १०२

रसाभास -

'अनुचित रूप में प्रवृत्त होने वाले रस को रसाभास कहते हैं । जैसे - उत्तम पात्र गतभय का वर्णन भयानक में तथा नीच पात्र में शम का वर्णन, शान्तरस का सूचक ही रसाभास होता है ।'[1]

उषः काले माले पतदरुणलाक्षारसनिभं
महस्ते मीनाक्ष्याः सशपथनतेऽपि प्रियतमे ।
स्वयं रक्तं रक्तिं रचयदपि चित्रं वितनुते,
मनोरागं नागन्तुकमपि सपत्नीरतिमतं ।।

यहाँ पर विस्मय नामक भक्तिरस के द्वारा सूर्य के प्रातःकालीन सौन्दर्य का वर्णन है । इसमें नायक रूप बहु कामुक विषयक अनुरक्ति, रमण आदि व्यापारों का वर्णन किया गया है । नायक की अनेक कामुक विषयक अभिलाषा को प्रकट करता है तथा बहुनायिका विषयक रति के कारण रत्याभास है ।

सूर्य स्तोत्रों में भाव-सौन्दर्य —

सूर्य स्तोत्रों में अलंकारिता की व्यञ्जना के साथ भावाभिव्यक्ति भी निहित है । यत्र तत्र नवीन भावों की उद्भावना भावों की आलौकिकता को प्रमाणित करती है । इन स्तोत्रों में भक्त हृदय की अनुभूति की मार्मिक व्यञ्जना है जो इष्टदेव के प्रति आत्मनिवेदन करता है । धर्मप्रधान होने के कारण भक्तिभाव की प्रधानता रहती है । क्योंकि जहाँ एक ओर भक्त के हृदय में अपने देव के प्रति अनुराग का भाव रहता है वहाँ दूसरी ओर अपना वैराग्य भाव निहित रहता है । इन सूर्य स्तोत्रों में दया, वैराग्य, माधुर्य आदि विविध भावों की ऐसी मोहक शृंखला रहती है कि काव्यतत्वज्ञाता उस भावरूपी समुद्र में डूबता, उतराता है । सरस भावों की झड़ी के साथ मर्मस्पर्शी स्तुति भी है । दया, कामना, आनन्दानुभूति आदि भावों का रमणीय चित्रण रहता है ।

१- अनौचित्यप्रवर्तिता: रसाभासा ।। काव्यप्रकाश ४। ४६

सूर्याह्निकशतकम् - ३२ ।

प्रस्तुत पद्य में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कवि अपने ईष्ट देव सूर्य के प्रति स्तुति करते हुए दैन्य भाव को व्यक्त करता है । यथा --

> भासा यस्यप्रवासायितम खिलतमो व्योमकासारवासाद्
> वल्लर्योविद्रुमाणामिव करनिकरौधद्विलासा यदीया: ।
> आसायं यस्य भासा सुरसरणिरुपासाभिरासाद्य तेज:
> प्रसाद भाति भानु: स इह मम रुजं हन्तु दासायितस्य [1] ।।

प्रस्तुत पद्य में कवि सूर्य की स्तुति में पद्य-रचना करते हुए गर्व भाव अनुभव करता है । यथा --

> केचित्षाण्मासिका: काव्ये कवयोमासिका: परे
> अन्वेषु पद्येषु वयं तु घटिकाशता: ।।

प्रस्तुत पद्य में सूर्य की किरणें समस्त कामनाओं की पूर्ति करती हैं । यहां पर हर्ष नामक भाव की चर्वणा हो रही है । यथा --

> नि:शेष श्रावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा ।
> पर्याप्तं नोदयादौ दिनगमसमयोपपल्वेऽप्युन्नतैव
> अत्यन्तं याऽश्रमिशा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तुं
> ब्रघ्नस्येष्टा रुचिर्वो रुचिरिव रुचितस्याप्तये वस्तोऽस्तु [2] ।।

प्रस्तुत पद्य में सूर्य की स्तुति करते हुए कवि सूर्य की सर्व अशुभों को भस्म करने की शक्ति को व्यक्त करता है । यहां पर श्रम, हर्षादि, घृणा आदि भावों की अभिव्यक्ति है । यथा --

> धर्मा देपीय: क्षपाम्भ: शिशिरतरजलस्पर्शतर्षाद्दृतेव ।
> घ्रागाशा नेतुमाशाद्विरदकर सर: पुष्कराणीव बोधम् ।।

१- सूर्यारुण्यशतक - १७, ८

२- सूर्यशतकम् - २१, २२

प्रात: प्रोल्लाङ्घ विष्णो: पदमपि घृणयेवातिवेगाद्वीय
म्युद्दाम द्योतमाना हरतु दिनपतेर्दुर्निमित्तं द्युतिर्व: ।

प्रस्तुत पद्य में कवि सूर्य के गुणों का वर्णन करते हुए उसके स्वरूप - वर्णन में रक्षा का भाव व्यक्त किया है । यथा --

त्राणं त्रैविष्टपानां तरणमथ पयस्तौमताम्यच्चूनां ।
नद्यन्तानामतर्क्यं त्रिगुणमयतया यत् त्रयाणां तुरीयम् ।।
तत् तादृक् तुन्दिलायास्तरुणतरतम: सन्ततेरन्तकृत् त्वां
तैजस्त्रैलोक्यतान्त्री करणचतुरिम् त्रायतां तीक्ष्णमानो: ।।[1]

मावोदय -

प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कवि सूर्य के अरुणवर्ण मण्डल रूप को अमर्ष भाव द्वारा व्यक्त करता है । यथा --

प्रेर्ण शोणं दृष्ट्वा तव तपन । बिम्बं सुरपति
धनस्पर्द्धाविद्धो धनुरुपधितो बिम्बमरुणाम् ।
चिकर्षिन् द्रुतं त्यजति च मुहु: सामि घटितम् ।
तदेतज्जानीय: क इह विवरीतुं प्रभवति ।।[2]

यहां पर अमर्ष रूप व्यभिचारी भाव का उदय सम्भावना मात्र से चमत्कृत करता है । इसलिए यह भावोदय का उदाहरण है ।

भावशान्ति -

भावशान्ति का उदाहरण इस प्रकार है --

क्षणं दृष्टे यस्मिन् हृदयमविरोहत्यनुदिनम् ।
सहस्त्रांशो । राजा सपदि कृतवीर्यस्य तनय: ।

१- सुधालहरी - १६
२- सूर्याष्टव्यशतकम् - २०

स्फुरत्यन्तत: पुंसामविरतममिदश्च युवयो-
स्तवेदं शौणत्वं तदिह मम खेदं शमयतु ।।[1]

यहां सूर्य की अरुणमय आभा के वर्णन में स्मरणादि व्यभिचारी भाव की प्रतीति है किन्तु यह भाव चमत्कारजन्य नहीं इस कारण भावशान्ति है ।

भावसन्धि -

प्रस्तुत पद्य भाव सन्धि का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है । यथा -

स्त्रंत: कैलासं सपदि परितो रत्नशिखरं
समेरोर्दर्पौर्घं कमपि दलयन्तोऽरुणतरा: ।
करास्तेऽमी हैमीकृतनिखिल पाषाण निवहा:
महाभासो मोदं ददतु शिवयोर्मोदनपरा: ।।[2]

यहां पर सूर्य की किरणों के वर्णन प्रसंग में पूर्वार्द्धगम्य गर्वरूप व्यभिचारी भाव है । मोद रूप व्यभिचारी भाव उत्तरार्द्धगम्य है । इन दोनों भावों का एक साथ आस्वादन होने से यहां भावसन्धि है ।

पुरस्तात्प्रत्यूषे भवदरुणिमानं निमिषतो
ममान्तर्वाल्यस्यौल्लसति महतीयं प्रबलता ।
त्रयीमूर्तौ त्वय्यप्यहह । यदि रागं वितनुते
परेषां लोकानामथ दिनपते का खलु कथा ।।[3]

यहां सूर्य की अरुणिमा से वेदत्रयीमूर्ति स्वरूप की कल्पना करने में पूर्वार्द्धगम्य औत्सुक्य रूप व्यभिचारी भाव है । तर्करूप व्यभिचारीभाव उत्तरार्द्धगम्य है । इन दोनों भावों का एक साथ आस्वादन होने से भावसन्धि है ।

१- सूर्यारुण्यशतकम् - १३

२- सूर्यारुण्यशतकम् - १२

३- सूर्यारुण्यशतकम् - १५

भावशबलता -

प्रस्तुत पद्य में भावशबलता का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है । यथा --

> अये ! शोणत्वं ते किमिति हृदि तत्त्वं विमृशतां
> सतामन्तस्तर्कानिनुदिनमिहाकानितनुते ।
> अहे स्वेतन्मन्ये चरमगत: संनिपतना-
> दथोच्चैरारोहादुदयगिरिमौलि: श्रमकृतम् ।।[1]

यहां सूर्य की लालिमा के विषय में कवि के मन में अनेक भावों की उत्पत्ति हुई है । वितर्क, संशय, भ्रम भाव है । प्रतीयमान उत्तरोत्तर भाव पूर्व भाव को उपमर्दित करके चमत्कार उत्पन्न कर रहा है । पूर्व में वितर्क आदि भाव का उपमर्दन कर उत्तरोत्तर संशय भ्रम आदि प्रतीयमान भाव की अभिव्यक्ति होने से भावशबलता का उदाहरण है ।

सूर्य स्तोत्रों में रसाभिव्यक्ति -

सूर्य स्तुतियां भक्तिरस से ओतप्रोत है । यत्र तत्र भक्तिरस के अङ्ग रूप रस भी परिलक्षित होते हैं । भक्तिरस के सम्बन्ध में समस्त आचार्यों की यह मान्यता रही है कि इन स्तुतियों में दीप्त रस की योजना होनी चाहिए । सूर्य स्तुतियों में अभिव्यक्त दीप्त रसों में से किसी एक का प्राधान्य होगा जोकि अङ्गी कहलाता है शेष दीप्त रस उसके अङ्ग होंगे । स्तुतियों के अध्ययन से इस धारणा की पूर्णतया पुष्टि हो जाती है । रस की रमणीयता सहृदयों के आनन्द की अनुभूति कराती है । भक्त अपने इष्ट देव के प्रति स्तुति करते हुए भावविभोर होकर परमब्रह्मानन्द की अनुभूति करता है । इन स्तुतियों में प्रकाशित होने वाला भक्तिरस में समस्तभाव अंग रूप है अङ्गी उनकी भक्ति है । वह भाव अन्य वृत्तियों से रहित अनेक जन्मवासना से वासित चित्त में व्यवच्छिद्यमान

१- सूर्यारुण्यशतकम् - ३६

विभावादि से रसरूपता को प्राप्त करता है । भक्ति की प्रधानता होने से भक्तिरस की प्रवाहमयी धारा समुद्र में विलीन होती हुई दृष्टिगत होती है । इन स्तुतियों में वहां एक ओर माधुर्य, शान्त, करुणारस की चर्वणा होती है वहां दूसरी ओर अद्भुत, वीर, आदि रसों की अभिव्यक्ति है । यह रसाभिव्यक्ति देव के अद्भुत गुणों के कारण है । भक्त वहां अपने देवता से वैराग्य, कामना आदि भाव को रखता है वहां उसकी क्रियाओं से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहता है । यह सब रसों की हृदयस्पर्शी योजना के कारण है ।

भक्तिरस —

भक्ति की प्रधानता होने के कारण इन स्तुतियों में भक्तिरस की चर्वणा है । इस रस में आध्यात्मिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । प्रस्तुत पद्य भक्तिरस का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है --

समायातुं प्रातर्विहितमनसो वासरमणेः
पुरो लग्नं बिम्बं रुचिरमिव कुम्भं गणपतेः ।
लसत्सिन्दूराभच्छविमनुपमं किञ्चिदपि तन्[1]
नमामः प्रोद्दामप्रचुरतरधामद्युतिकृते ।।

यहां सूर्य देवताविषयक रति स्थायिभाव है । साक्षात् भगवान् सूर्य आलम्बन विभाव है । दिव्य स्वरूप श्रवणादि उद्दीपन विभाव है ।

प्रणाम, रोमाञ्च आदि अनुभाव है । हर्ष, धृति इत्यादि संचारी भाव होने से भक्तिरस की चर्वणा हो रही है । स्तम्भ सात्त्विक भाव है ।

अन्तर्द्यावापृथिव्योरधिरजनि भूतानन्धकारानुदारान् ।
विद्राव्य द्राक् तदीयैरिव क्षतदरुण शोणितैर्यद् विभर्ति ।।

1- सूर्यारुणशतक - 1

सायं प्रातश्च सन्ध्याऽञ्जलिमवनिसुरा: सम्प्रयच्छन्तियस्मै
तस्मै कस्मैचिदेतन् मम परमहसे देवतायै नमोऽस्तु ।।[1]

प्रस्तुत पद्य में सूर्य देवता विषयक रति स्थायिभाव है । सूर्य भगवान् और भक्ति आलम्बन विभाव है । श्रवण, कीर्तन, दिव्यरूप, तेज आदि उद्दीपन विभाव है । जलाञ्जलि, प्रणाम आदि अनुभाव है । स्तम्भ, रोमाञ्च सात्त्विक भाव है । हर्ष, निर्वेद, औत्सुक्य इत्यादि संचारी भाव होने से भक्ति रस की अभिव्यक्ति है । यथा -

मौलीन्दोर्मैष मोषीद्द्युतिमिति वृषभाङ्केन य: शंकिनेव
प्रत्यग्रोद्घारिताम्भोरुहकुहरगुहासुस्थितेनेव धात्रा ।
कृष्णेन ध्वान्तकृष्णास्वततनु परिभवत्रस्नुनेव स्तुतो ऽञ्ं
त्राणाय स्ताञ्जीयानपि तिमिररिपो: स त्विषामुद्गमोव: ।[2]

प्रस्तुत पद्य में देवताविषयक रति स्थायिभाव है । भगवान् सूर्य आलम्बन विभाव है । तेजस्वी स्वरूप कीर्तन उद्दीपन विभाव है । नमन, स्तवन, वन्दना आदि अनुभाव है । औत्सुक्य, हर्ष, वितर्क आदि संचारी भाव होने से भक्ति रस की वर्णना है ।

(१) वात्सल्य भक्ति रस -

'विभावादि के द्वारा वात्सल्य रति नामक स्थायिभाव से परिपुष्ट होता हुआ चित्त में आनन्द की अनुभूति करता है ।'[3]

१- सुधालहरी - १५

२- सूर्यशतक - १६

३- विभावाद्यास्तु वात्सल्यं स्थायिम्पुष्टिमुपागत: ।
एष: वात्सल्यनामात्र: प्रोक्तोभक्तिरसोबुधै: ।।
- भक्तिरसामृत सिन्धु ३।३।१

प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा के माध्यम से वात्सल्य भक्तिरस की चर्वणा हो रही है । यथा --

धरित्री ध्वान्ताब्धौ धरणितनयेन ग्रहपते ।
सवित्री संमग्नामभिहितमहसोद्धर्तुं मनसा ।।
समानीतो मन्ये प्रतिपदमुपास्य प्रणमता ।
कृतानेकस्कन्धारुणतनुरुदीतो वयसि तत् ।।[1]

यहां वात्सल्य रति स्थायिभाव है । सूर्य देव आलम्बन विभाव है । सूर्य का रक्त वर्ण रूपादि उद्दीपन विभाव है । आशीर्वाद, प्रणमादि क्रियाएं अनुभाव हैं । औत्सुक्य, श्रम, हर्ष आदि संचारी भाव है । रोमाञ्च, स्तम्भ आदि सात्त्विक भाव है । आस्वदक के हृदय में वात्सल्य मूलक भक्तिरस की अभिव्यञ्जना हो रही है ।

लसित्सिन्दूराक्तं द्विरदवदनोऽङ्गे परिदध -
ल्लुठन्नङ्के शङ्के तव भवतमोरर्के ! रमते ।
तदाश्लेषादेषाप्यरुणिमा समेता समुदिता[2]
भवन्मूर्तिः केषामिह मनसि तर्कान्न तनुते ।।

प्रस्तुत पद्य में वात्सल्य नामक रति स्थायिभाव है । सूर्य नारायण आलम्बन विभाव है । सूर्य भगवान् रक्तता, दिव्य रूपादि उद्दीपन विभाव है । शिशु क्रीडा, आलिङ्गन आदि अनुभाव हैं । हर्ष, वितर्क, औत्सुक्यादि व्यभिचारी भाव है । रोमाञ्च, अश्रुपात आदि सात्त्विक भाव है । इसलिए भक्त हृदय में वात्सल्य मूलक भक्तिरस की अनुभूति हो रही है ।

१- सूर्यारुणशतक - २१

२- सूर्यारुणशतक - ३२

(२) प्रीतिभक्तिरस -

'अपने अनुरूप विभावादि के द्वारा भक्तों के हृदय में आस्वाद्यमान् होकर प्रीति भक्तिरस की संज्ञा सुधा से अभिहित है ।[1] यथा --

प्रत्यग्रोढ़ा: प्रगल्भा युवतिपरिषद: प्रोषितप्राणनाथा ।
यस्मिन्नस्ताद्रिमौलेरुपरिमणिमयच्छत्रलीलां दधाने ।
सत्रासं सप्रसादं परिणतकरुणं लोकनान्युत्क्षिपन्ति ।
स्थेमानं स प्रियाणां घटयतु भगवान् पद्मिनीवल्लभो वः ।।[3]

यहां प्रीति रति नामक स्थायिभाव है । भुवन भास्कर आलम्बन विभाव है । गुण श्रवण, कटाक्ष, आदि उद्दीपन विभाव हैं । कर्तव्यपालन, अनुराग आदि अनुभाव हैं । हर्ष, मोह, उन्माद आदि व्यभिचारी भाव हैं । अश्रुपात, स्तम्भ, रोमा ञ्च सात्त्विक भाव हैं । भक्त के हृदय में प्रीतिमूलक भक्तिरस की चर्वणा होती है ।

अखण्डब्रह्माण्डस्फुरदरुणभासां दिनपतेः ।
लवांशूनां कल्पे क इव महिमानं निगदतु ।
यदापातादाताम्रितमधरमवलोक्य सुदती
सपत्न्याः प्रेयांसं रतमपि रतेः शिलष्यति रसवत् ।।[3]

प्रस्तुत पद्य में प्रीति रति स्थायिभाव है । भगवान् आदित्य आलम्बन विभाव

१- आत्मोचितैः विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम् ।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीतिभक्तिरसो मतः ।।
- भक्तिरसामृतसिन्धु ३।२।३

२- सुधालहरी - १४

३- सूर्यशतक - ५०

है। रक्तमयी आभा, सान्निध्य, चिंतन आदि उद्दीपन विभाव है। रमण, प्रेमपाश, आलिंगन इत्यादि अनुभाव है। उन्माद, हर्ष, मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव है। कम्पन, स्तम्भ, रोमाञ्च सात्विक भाव है। आस्वादक के हृदय में प्रीतिमूलक भक्तिरस की अनुभूति हो रही है।

'सरागांग्लौ: श्यामां रजनिमभिमत्यैव रमसे।
निलीय क्वाप्यस्यामथ विगतवत्यां तु सहसा।
जटाधारी योगी भवसि विलसद्रक्तवसन:
दाणादेवं मुञ्चन् भ्रमसि किमुतायं दिनमणे ।।'[1]

यहां प्रीति रति स्थायिभाव है। सूर्यदेव आलम्बन विभाव है। सान्निध्य, मधुरचिंतन, रूपादि उद्दीपन विभाव है। रमण, प्रेमपाश, चुम्बनादि अनुभाव है। उन्माद, हर्षादि व्यभिचारी भाव है। कम्पन, रोमाञ्चादि सात्विक भाव है। इन सबसे परिपुष्ट प्रीति भक्तिरस की चर्वणा आस्वादक के हृदय में होती है।

(३) मधुरभक्तिरस -

'आत्मचित्त में विभावादि के द्वारा परिपुष्ट मधुररति स्थायीभाव सहृदयों के हृदय में मधुर भक्तिरस का अभ्युदय करता है।'[2] यथा --

परिच्छेत्तुं शुक्त: क इव तव रूपं दिनपते।
तथाप्यस्मानेष: मुखरयति वैप्री मुखरता।

१- सूर्यारुण्यशतक - ३३

२- आत्मोचितै विभावाद्यै: पुष्टिं नीतां सतां हृदि।
मधुराख्यां भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरारति: ।।

सुरासिन्धौ मग्नस्त्वमधिनिशमर्क । स्वयमभू -
स्तदुन्मादोल्लासादरुणिमभरोऽयं विलसति ।[१]

प्रस्तुत पद्य में मधुर रति स्थायीभाव है । कायिक सौन्दर्य रूप सूर्य आलम्बन विभाव है । प्रेयसी के गुण, नाम, चरितादि उद्दीपन विभाव है । नेत्र प्रदेपण आलिङ्गन, रमण आदि अनुभाव है । हर्ष, उन्माद, मोहादि व्यभिचारी भाव है । रोमाञ्च, कम्पन सात्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट सहृदयों के हृदय में मधुरभक्तिरस की व्यञ्जना है । यथा --

तमीसंगादुद्यत्कलुषभरभावस्त्रिजगतां
भवानेक चक्षुमर्कनमियातीति तरणे ।
प्रगे प्राची तामा स्नपयति सदा कौंकुमरसं -
मुदा मन्ये तस्मादयमरुणिमा ते विजयते ।।[२]

यहां मधुर रति स्थायिभाव है । दिव्य स्वरूप वाले भगवान् सूर्य आलम्बन विभाव है । रात्रिरूपी प्रेयसी के चरित,गुणादि उद्दीपन विभाव हैं । प्रक्षालन, रमण आदि अनुभाव हैं । रोमाञ्च, कम्पन, सात्विक भाव हैं । हर्ष, उन्माद और सुक्यादि व्यभिचारी भाव है । सहृदयों के हृदय में विभावादि से परिपुष्ट मधुर भक्तिरस की अनुभूति होती है ।

तन्वाना दिग्वधूनां समधिकमधुरालोकरम्यामवस्था ।
मारूढप्रौढिलेशोत्कलितकपिलिमालंकृति: केवलेव ।।
उज्जृम्भाम्भोजनेत्रद्युतिनि दिनमुखे किंचिदुद्भिद्यमाना
श्मश्रुश्रेणीव भासां दिशतु दशशती शर्म घर्मत्विषो व: ।।[३]

१- सूर्यारुण्यशतकम् - ३६
२- सूर्यारुण्यशतकम् - ७८
३- सूर्यशतक - १५

यहां मधुर रति स्थायि भाव है । सूर्यदेव आलम्बन विभाव है । वधू के सौन्दर्य, रक्तमयी आभा उद्दीपन विभाव है । वेश, अलंकरण, नेत्र प्रक्षेपण आदि अनुभाव है । हर्ष, मोह, गर्व, और सुख आदि व्यभिचारी भाव है । रोमाञ्च, कम्पन सात्विक भाव है । इन सबसे पुष्ट सहृदयों के हृदय में मधुरभक्तिरस का अभ्युदय है ।

(४) शान्त भक्तिरस -

'विभावादि से पुष्ट शम स्थायिभाव शान्तभक्ति रस संज्ञा सुधा से अभिहित होता है ।'[1]

शान्तरस की चर्वणा इन स्तुतियों में विशेष रूप से हुई है क्योंकि आध्यात्म पक्ष की ओर यह आकर्षित करता है । यथा --

सप्ताश्वमारूढं प्रचण्डं काश्यपात्मजम् ।
श्वेत पद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।
लोहितं रथमारूढं प्रचण्डं काश्यपात्मजम् ।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।
सूर्याष्टकं पठेन्नित्यं ग्रहपीडा प्रणाशनम् ।
अ पुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान्भवेत् ।।[2]

यहां शम स्थायिभाव है । श्वेत पद्मधर, सप्ताश्वमारूढं भगवान् सूर्य आलम्बन विभाव है । एकान्त सेवन, नित्य पूजन इत्यादि उद्दीपन विभाव है । स्तवन,

---

१- वाच्यमानैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः ।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरसस्मृतः ।।

३।१।४

२- सूर्याष्टक स्तोत्र - २

मन्त्रपठनीय, कीर्तनादि अनुभाव है । मद, श्रम, निर्वेद, धृति इत्यादि व्यभिचारी भाव है । इन सबसे परिपुष्ट सहृदयों के हृदय में शान्त रस की अभिव्यञ्जना है । यथा -

अन्तर्नीरं नदीनामनुदिनमुदये बिम्बता ये समन्ताद् ।
गीर्वाणाद्रिरुढञ्चन्मणिगणजटिलां मेदिनीं दर्शयन्ति ।
विप्रप्रोदित्प्रसन्ध्याञ्जलिजलकणिकाजालमाकाशमध्ये ।
माणिक्यव्रातयन्तो मम मिहिरकरा मान्ध्यमुन्मूलयन्तु ।।[1]

यहां शम स्थायिभाव है । सप्ताश्वरथमारूढ भगवान् सूर्य आलम्बन विभाव है । नित्य पूजन, स्तवन इत्यादि उद्दीपन विभाव है । प्रणामञ्जलि, जलाञ्जलि मन्त्रपठन कीर्तनादि अनुभाव है । श्रम, निर्वेद, इत्यादि व्यभिचारी भाव है । इन सबसे परिपुष्ट सहृदयों को शान्तरस की अनुभूति होती है । यथा --

धारा रायो धनायापदि सपदि करालम्बभूताः प्रपाते
तत्त्वालोकैकदीपास्त्रिदपतिपुरप्रस्थितौ वीथ्य एव ।
निर्वाणौ योगियो प्रगमनिकतनुद्वारि वेत्रायमाणा-
स्त्रायन्तां तीव्रभानोर्दिवसमुखसुखा रश्मयःकल्मषात्कः ।।[2]

प्रस्तुत पद्य में शम स्थायिभाव है । भगवान् सूर्य और भक्त आलम्बन विभ है । नित्य पूजन, दिव्य स्वरूप व आलौकिक कार्य उद्दीपन विभाव है । मोक्ष के लिए प्रार्थना, दर्शन आदि अनुभाव है । श्रम, निर्वेद, धृति व्यभिचारी भाव है । विभावादि से पुष्ट होकर सहृदयों को शान्त रस की चर्वणा होती है ।

(५) अद्भुत भक्तिरस --

'आत्मोचित विभावादि के द्वारा परिपुष्ट एवं

१- सूर्यालहरी - १३

२- सूर्यशतक - ३

स्वाधमान होकर विस्मय रति स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में अभिहित है ।[१]

इसमें भगवान् की अद्भुत लीलाएं ही भक्त के हृदय में रस में परिणत होती है, यथा --

तवारुण्यं प्रात: कथयतु कवि: को नु तरणे ।
यदीयैरुद्योते भवति भुवने कौतुकभर: ।
यतो गुञ्जामुक्ताभरणमखिलायं कलयतां
प्रवालालङ्कार: परिणमति तुल्यो मृग दृशाम् ।।[२]

यहां कौतुक पद अद्भुतरस का सूचक है । विस्मय रति स्थायिभाव है सूर्यदेवता आलम्बन विभाव है । रक्तवर्णता गुण, सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है । नेत्र विस्तार अनुभाव है । आवेग, प्रबोध, वितर्क औत्सुक्यादि व्यभिचारी भाव हैं । स्तम्भ सात्त्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट इस उदाहरण में अद्भुतरस की चर्वणा हो रही है । यथा --

युष्मदामोस्त्यपूर्वापरगिरिविपिनोज्जृम्भदुद्दामवह्नि -
ज्वालोद्योतावलीभिर्वलयितुमुभयो: सन्ध्ययोर्मण्डलं ते ।
प्रात: सायं वनानामरुणिमनि निधे हन्त । नानाविर्तका
नर्कान्त: संतनोति प्रयतमुनिवितीर्णाम्बुपश्चे । पुरस्तात् ।।

प्रस्तुत पद्य में नानाविर्तका पद अद्भुत रस का सूचक है । सूर्यदेव आलम्बन विभाव है । क्रियाशील गुण, रक्तमयी आभा उद्दीपन विभाव है ।

१- आत्मोचितैर्विभावाद्यै स्वाद्यत्वं भक्त चेतसि ।
सा विस्मय रवि नीताऽद्भुतभक्ति रसोभवेत् ।।

२- सूर्यारुण्यशतकम - १०, १३ ।

पुलकन, नेत्र-विस्तार आदि अनुभाव है। विस्मय, जाड्य, हर्ष इत्यादि व्यभिचारी भाव है। भक्तहृदय में सर्वलोकोत्तर में घटित होने वाला अद्भुत भक्तिरस है।

प्रस्तुत उदाहरण में अद्भुत रस की चर्वणा है यथा --

> न्यक्कुर्वन्नोषधीशं मुषितरुचि शुचेवौषधीः प्रोषिताभा
> भास्वद्ग्रावोद्गतेन प्रथममिव कृताभ्युद्गतिः पावकेन ।
> पक्षाच्छेदव्रणासृक्स्रुत इव दृषदो दर्शयन्प्रातरद्रे -
> रातामस्तीव्रभानोरनभिमतनुदे स्तादभस्त्युद्गमो वः ।।[1]

प्रस्तुत पद्य में विस्मय रति स्थायिभाव है। सूर्यदेव आलम्बन है। क्रियाशील गुण, किरणों के सौन्दर्यादि उद्दीपन विभाव है। वमन, नेत्र विस्तारादि अनुभ है। विस्मय, जाड्य विषाद इत्यादि व्यभिचारी भाव है। सर्वलोकोत्तर में घटि होने वाला अद्भुत भक्तिरस है।

(६) वीरभक्तिरस -

'अपने उचित विभावादि के द्वारा उत्साह रति नामक स्थायिभाव आस्वाद्यमान होकर वीरभक्तिरस की संज्ञा से अभिहित है।'[2]

इस रस में भक्त अपने देव की अलौकिक कार्यों का वर्णन करता है प्रस्तुत उदाहरण में वीर भक्तिरस की अभिव्यञ्जना है। यथा --

> तव: स्तोमा वीरा: समररस: सम्मुखगता:
> जाता मन्ये जात्रोऽद्भुतक। भवतो मण्डलमिदम् ।
> विभिद्योच्चैर्यान्ति प्रतिभटरुचैव वाणामत -
> स्तवाङ्गे रामोऽयं विलसति नरागोहर रव ।।[3]

१- सूर्यशतक - ६

२- हेवोत्साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितैः ।
आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवेत् ।। ३।३।१

३- सूर्याह्रस्वकम् - ८६

यहां पर उत्साह रति स्थायि भाव है । भुवनभास्कर आलम्बन विभाव है । विस्पर्धा, अस्त्रग्रहणादि उद्दीपन विभाव है । सिंहनाद, युद्ध, अस्त्रप्रक्षेपण आदि अनुभाव है । आवेग, गर्व, चपला आदि व्यभिचारी भाव हैं । इन सबसे परिपुष्ट होकर भक्त के हृदय में भक्तिरस की चर्वणा हो रही है ।

यामिन्यां कैरवाल्या विकसनामिषतो नीरजान्याहसन्त्या ।
कुर्वाणा: सर्वगर्वं निबरुचिभिरमी कोपताम्रा नु सद्यः ।
ध्वान्तप्राप्ताक्काशान् हिमकर किरणान् निर्दयपीडयन्त -
श्चोलूकानन्धयन्त: शमिह ददतु नो मेहरास्ते मयूखा: ।।[1]

यहां उत्साह रति स्थायि भाव है । सूर्य भगवान् आलम्बन विभाव है । सौन्दर्यमयी आभा, आत्मश्लाघा, विस्पर्धा, उद्दीपन विभाव है । आक्रो दलित करना, आदि अनुभाव है । गर्व, धृति, आवेग, क्रीडा उत्सुकता व्यभिचा भाव है । स्तम्भ, कम्पन, अश्रुपात आदि सात्त्विक भाव हैं । इस सबसे परिपुष्ट भक्त को वीर भक्ति रस की चर्वणा होती है ।

(७) रौद्ररस —

'क्रोध रति स्थायिभाव अपने उचित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर रौद्रभक्ति रस की संज्ञा से अभिहित होता है ।'[2]

१- सूर्यारुण्यशतकम् - १७४

२- नीताक्रोधरति: पुष्टिं विभावाद्यैनिजोचितै: ।
हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्तिरसोमवेत् ।।

४ । ५ । १

प्रस्तुत उदाहरण में रौद्ररस की अभिव्यक्ति है --

> क्षिप: सौनासीरी नियतमिह पर्वामिधिगत:
> समायास्यन्माथत्पर गवमतै: कौपितमना: ।
> प्रति प्रातर्मन्ये तन तपन । बिम्बं वितनुते ।
> समाघातकोमं तदनुगतसिन्दूर मिह यत् ।।[1]

यहां क्रोध रति स्थायी भाव है । सूर्यदेव के प्रति अहित-भाव आलम्बन है । क्रोति कटाक्ष, अनादरादि उद्दीपनविभाव है । ओंठ काटना, भुजा फड़काना समाघात शाति इत्यादि अनुभाव है । उग्रता, गर्व, शंका, आसूया इत्यादि व्यभिचारी भाव है । अश्रुपात, स्तम्भ, कम्पन सात्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट रौद्र भक्तिरस की चर्वणा सहृदयों के हृदय में अभिव्यक्त है ।

> तवारुण्यं मब्यं कथमिव दिनादौ दिनपते ।
> कवीनां यच्चान्तै तमसि गवभावं हृदयति ।
> यतो धी स्वस्मिन् कलङ्कुपिते तत्करशिरोऽ-
> मिषङ्गोत्संक्राम्यन्मदसलिलसिंदूरमरताम् ।।[2]

यहां क्रोध रति स्थायी भाव है । सूर्य देव के प्रति अहित भाव आलम्बन विभाव है । क्रोधितकटाक्ष, अरुणिमा अनादरादि कुपित उद्दीपन विभाव छलांग लगाना, आक्रमण करना, ओंठ काटना इत्यादि अनुभाव है । उग्रता,अ बहुता, गर्व आदि व्यभिचारी भाव है । स्तम्भ, कम्पन सात्विक भाव है । इ परिपुष्ट सहृदयों के हृदय में रौद्र भक्तिरस की चर्वणा हो रही है ।

> त्वदुत्कालादव्यैरुदयगिरिमौलावनुदिनं
> मणीनामुद्योतो विलसतितरां यो दिनमणे ।

१- सूर्यारुण्यशतकम् - ८६

२- सूर्यारुण्यशतकम् - ५४

तमेवं बानन्ती परिष्वक्नरागं परदिशो ।
रुषेवाभूत प्राचीहरिणनयना किञ्चिदरुणा ।।[१]

यहां क्रोध रति स्थायिभाव है । भुवनभास्कर के प्रति अहित आलम्बन विभ है । अरुणिमय सौन्दर्य, नेत्र विस्तार, कटाक्ष आदि उद्दीपन विभाव है । क्रु लगाना, ओंठ काटना, निश्वास छोड़ना आदि अनुभाव है । उग्रता, गर्व, आवेग इत्यादि व्यभिचारी भाव है । स्वरभेद, स्तम्भ सात्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट होकर सहृदयों के हृदय में रौद्रभक्तिरस की अभिव्यक्ति हो रही है ।

(८) वीभत्स भक्तिरस—

'जुगुप्सा नामक रति अपने विभावादि से पुष्ट होकर वीभत्स भक्तिरस कहलाता है ।'[२]

प्रस्तुत उदाहरण में वीभत्स भक्तिरस की अभिव्यञ्जना है --

यदेतत्कोणत्वं विवहकर । तस्यै तदिह ते ।
हरेर्ध्वान्तोन्मादद्विपकुलम मन्दं दलयतः ।
निशान्ते शान्तेऽग्रे करनखरघातोच्छलदसृक्-
छटासङ्गादङ्गच्छुरितमुत्र सि स्फूर्जतितराम् ।।[३]

यहां सूर्य अस्तवेला के प्रसङ्ग में जुगुप्सा नामक रति स्थायिभाव है सूर्य आलम्बन विभाव है । सौन्दर्यमयीगुण, चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव है । प्रबलदलन, आघात, अस्त्र प्रहार आदि अनुभाव है । ग्लानि, वेग, बाहुय इत्य

१- सूर्यशतकम् - ५६

२- पुष्टिं निजविभावाद्यै जुगुप्सारतिरागता ।
अस्रोभक्तिरसो धीरैर्वीभत्साख्यःइतीर्यते ।।
- भक्तिरसामृतसिन्धु

३- सूर्यशतकम् - ६१

व्यभिचारी भाव है । रोमा च, कम्पन, स्वरभेद इत्यादि सात्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट वीभत्सभक्ति रस सहृदयों के हृदय में उद्भासित होता है । यथा —

स्फुरत्ताराम‍ुक्तावलिमवहरन्निन्दुवदनां
क्विेषु क्रोशत्सु प्रतिदिनमहो रात्रिवनितां
निहत्यैतद्रक्तप्लुतवपुरुदीतो मुनिभिर -
प्यनालोक्य: शङ्के त्वमसि वशपङ्के रुहपते ।।[1]

प्रस्तुत पद्य में जुगुप्सा रति स्थायिभाव है । सूर्य आलम्बन विभाव है गुण चेष्टा, रक्तवर्णता उद्दीपन विभाव है । नेत्र विस्तार, अस्त्र प्रहार, रोमाञ्च आदि अनुभाव है । मोह, आवेग, ग्लानि ईर्ष्या इत्यादि व्यभिचा भाव है । स्तम्भ, कम्पन आदि सात्विक भाव है । विभावादि से परिपुष्ट हो भक्तहृदय में वीभत्सभक्ति रस की अभिव्यक्ति है ।

(६) भयानक रस -

'अपने विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर भयरति स्थायिभाव भयानक भक्तिरस में परिणत हो जाता है ।[2]

प्रस्तुत उदाहरण में भयानक रस की एक झलक है --

तमिस्त्राली व्याली हतिषु हरसे दीपकमणीन्
भमव्याली भीति पिदधति जनाेऽतिमहति
तदोव: स्वीकुर्वन्नरुणिमभरं नीरबकुले ।
दधानो भानो ! त्वं करुणमरुणामूर्तिविभयसे ।।[3]

१- सूर्यारुव्यशतकम् - १०७

२- वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं भयरतिर्गता ।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैरुदीर्यते ।।

३- सूर्यारुव्यशतकम् - ८३

यहां पर भय रति स्थायिभाव है । सूर्य के प्रति दारुणभाव आलम्बन विभाव है । मू प्रदेपात, आघात से नेत्र विस्तार आदि उद्दीपन विभाव है । स्वेद रोमाञ्च सात्विक भाव है । शंका, आवेग, मरण, आदि व्यभिचारी भाव है । इन सबसे परिपुष्ट भक्तहृदय में भयानक रस की अभिव्यक्ति हो रही है ।

(१०) करुणभक्ति रस -

'शोक रति अपने उचित विभावादि के द्वारा परिपुष्ट होकर करुण-भक्तिरस की संज्ञा सुधा से अभिहित होता है ।'[1]

प्रस्तुत उदाहरण में करुणभक्ति रस की चर्वणा है —

शीते शोकं शशाङ्के कुशलमरुविताभाशु नाशं निशायां
धिक्कारं ध्वान्तवर्गे कुमुदपरिषदि प्रोद्गमं दीनतायाः ।
पाण्डित्यं पुण्डरीकेष्वनुदिनमधिकां कान्तिमाशासुतन्व
न्मन्वञ्चत्यन्वहं मामुष सि करुणयाविश्वबन्धो विवस्वान् ।।[2]

प्रस्तुत पद्य में शोक रति स्थायिभाव है । भगवत प्राप्त न होने से दुःखभावरूप सूर्य आलम्बन विभाव है । गुण, रूप, कर्म, आदि उद्दीपन विभाव शोकाग्रस्त होना, दैन्य, तिरस्कृत करना आदि अनुभाव है । दीनता, ग्लानि, उन्माद, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है । वैवर्ण्य, अश्रुपात, कम्पनादि सात्विक भाव है । इन सबसे परिपुष्ट भक्तहृदय में करुण भक्तिरस की अभिव्यञ्जना है ।

१- आत्मोचितै विभावाद्यै नीर्तापुष्टिं सतां हृदि ।
भक्तशोकरतिर्भक्तिरसोऽयं करुणाभिधः ।।

२- सुधालहरी - ११

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य की स्तुतियों में प्रधान अङ्गी भक्ति रस की धारा प्रवाहित है। उसके अङ्गस्वरूप अन्य गौण रस रौद्र, वीर, अद्भुत आदि रस की अभिव्यञ्जना है। भावों की विचित्रता के लिए इन रसों का समावेश इन स्तुतियों में हुआ है। भक्त की प्रधानता ही सर्वत्र परिलक्षित है।

-o-

अष्टम् अध्याय

छन्दयोजना

'छन्द योजना'

छन्द काव्यों में भावाभिव्यक्ति के रमणीय एवं प्रभावशाली साधन है। कवि अपनी स्वाभाविक संगोपन प्रियता की मनोवृत्ति से प्रेरित होकर अपने हृदयगत भावों को शब्दों में अनुवादित करते हुए उन्हें प्रकट और अप्रकट रूप में रखने का प्रयास करता है। छन्द में प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट क्रम में बद्ध होने से उस वाङ्मय में सरसता, लयवाहिता, संगीतात्मकता एवं स्निग्धता - सदृश अनेक काव्यभावोपकारी वैशिष्ट्य उत्पन्न हो जाते हैं। छन्द भाषा की स्निग्धता तथा मोहकता का समस्त उत्तरदायित्व उस प्रयुक्त छन्द की प्रकृति पर ही निर्भर करता है। काव्य में कवि व्याकरणानुमो शब्द संगठन में विविध नियमों और नियंत्रणों का विचार रखते हुए भी कुछ ऐसे विधान करता है जिनके द्वारा अभिव्यञ्जना भाव बहुत कुछ छिपा रहे। अनुकूल छन्दोबद्ध भाषा द्वारा रस की सुष्ठु एवं सम्यक् अभिव्यञ्जना सम्भव होती है।

छन्द की उत्पत्ति -

वैदिक शब्दों में स्थूलता थी तथा आक्षरिक संयोजना सन्निहित थी। धीरे-धीरे लौकिक में मात्रात्मकता की प्रवृत्ति उद्भूत हुई और परिणाम स्वरूप मात्रात्मकता की प्रवृत्ति उद्भूत हुई और परिणामस्वरूप मात्रात्मक विक के कारण गणों की उत्पत्ति हुई और क्रम से गण व्यवस्था से ही छन्द का अभ्युदय हुआ। वैदिक अर्थ में अव्यक्त को व्यक्त करने वाला व्यक्त को अव्यक्त रखने वाला छन्द शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। इस अर्थ में इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है --

'छन्द का आविर्भाव ज्ञानस्वरूप, ब्रह्मसूचक एक वर्ण अथवा कतिप वर्ण विरचित शब्द से हुआ है।'[1]

1- छन्दशास्त्र - रमाशंकर शुक्ल

'देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन् ते छन्दोभिरच्छादयन् । यदोभिरच्छादयं स्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ।।[1]

उपरोक्त वर्णन के अनुसार छन्दोत्पत्ति भी अन्य प्रकार की ज्ञानोत्पत्ति के समान देवताओं की दिव्य शक्ति से हुई है यह भी वेद की तरह अपौरुषेय है ।

छन्द की परिभाषा -

छन्दोत्पत्ति के साथ-साथ छन्द की परिभाषा भी विभिन्न प्रकार से व्यक्त की गई है । क्योंकि छन्द का इस प्रकार का संगठन विधान विशेष है जिससे भाव गुप्त और प्रकट दोनों रूपों में ही रह सके । यह परिभाषाएं इस प्रकार हैं --

'छन्द उस रचना को कहते हैं जिसमें अक्षरों मात्राओं और यति का विशेष नियम हो ।'[2]

अवध उपाध्याय ने छन्द की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त की है --

'जिस रचना में वर्ण, मात्रा, लय, गति, यति और चरण सम्बन्धी नियमों का वर्णन हो उसे छन्द कहते हैं ।'[3]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध समीक्षक लैसल्स एवर क्राम्बी के अनुसार --

'लयात्मक आदर्श की निश्चित आवृत्ति को छन्द माना है ।'[4]

१- छान्दोग्योपनिषद् - १।४।२

२- पिंगल पीयूष - परमानन्द शास्त्री, पृष्ठ १६

३- नवीन पिंगल - अवध उपाध्याय, पृष्ठ ५

४- छन्दोदर्पण - गौरीशंकर मिश्र

पाणिनि[1] के अनुसार `छन्द` शब्द `चदि आह्लादने दीप्तौ च` के अर्थ में `चन्देरादेश्छ:` सूत्र द्वारा `चदि` का चकार छकार में परिवर्तित हो जाता है इस प्रकार `छन्दयति, आह्लादयति दीप्यति, प्रकाशयतीति छन्द:`[2]।

अर्थात् जो प्रसन्न करे, प्रकाशित करे वही छन्द है । ऋग्वेद, तैत्तिरीय संहिता में इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।

महर्षि यास्क के अनुसार `छन्द` शब्द ` संवरणे` धातु से व्युत्पन्न होता है और इस व्युत्पत्ति के अनुसार छन्द शब्द का तात्पर्य आच्छादन करना है[3]।

इस प्रकार साधारणतया छन्द शब्द का अर्थ छिपाना या संगोपित करना । भाव संगोपनार्थ संगीताधारित ऐसे शब्द संगठन विधान को जो व्याकरण सम्मत भाव स्पष्टीकरण विधान से बहुत दूर न पड़ जाय वही छन्द कहे जाते हैं । छन्द शब्द का प्रयोग कभी-कभी कैतव छद्म छल से रूप है जिसका तात्पर्य छन्द विधि एक प्रकार से भावाभिव्यक्ति की ऐसी छलना विधि है जिसके द्वारा मूलभाव को छिपाकर पाठक या श्रोता पढ़ते हुए लाभ करता है ।

छान्दोग्योपनिषद् के एक सन्दर्भ में मृत्यु से भयभीत देवताओं का वेदत्रयी के मन्त्रों में प्रवेशवर्णित है । इस प्रसंग के अनुसार चूंकि देवताओं ने वैदिक मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित किया अतएव वैदिक मन्त्र छन्द कहलाये ।

१- पाणिनि का व्याकरण शास्त्र ।

२- छन्दयति आह्लादयति इति छन्द: । - ऋग्वेद ३। २। २०

छन्दांसि छन्दयतीति वा -- ब्राह्म० १०।३

३- छन्दोभिरात्मान छादयित्वोपायंस्तच्छन्द सां छन्दस्त्वम् ।

- तै० सं० २।६।३।१

`छन्दांसि छादनात्` - निरुक्त दैवतकाण्ड ७। १२

पिङ्गल के अनुसार --

'छन्द शब्देनाक्षर संख्याकच्छन्दोऽत्राभिधीयते ।'[1]

नाट्यशास्त्र के अनुसार -- गति संयम ही छन्द है (गति संयम छन्द:)।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि छन्द काव्य में शब्द और वाक्य योजना के निश्चित नियमों से सुनियंत्रित, सुव्यवस्थित और स्थायी करते हुए रचना का निर्माण करते हैं ।

छन्दों का प्रयोग -

छन्द के प्रथम प्रयोग स्थल वेद हैं । ऋग्वेद तथा सामवेद में छन्दोबद्ध मन्त्रों के ही दर्शन होते हैं । देवताओं को प्रसन्न करने या अपनी कामनाओं के प्रकाशन में छन्द-मन्त्रों का प्रयोग किया गया । वैदिक युग में रस के साथ छन्दों का समन्वय दृष्टिगत होता है यथा उदाहरण में है --

सर्वाणि भूतानि मनोगतिश्च स्पर्शाश्च गन्धश्च रसाश्च सर्वे ।
शब्दाश्च रूपाणि च सर्वमेतत् त्रिष्टुप्जगत्यौ समुपैति ॥[3]

अर्थात् समस्त जीव, मन:स्थितियां, स्पर्श, गन्ध, रस, शब्द तथा रूप भक्ति के साथ त्रिष्टुप और जगती छन्दों में संगत होते हैं ।

वैदिक साहित्य की पादगत स्वच्छन्दता लौकिक साहित्य में सर्वथा विलुप्त हो गयी । प्रत्येक पद के चरण निश्चित कर दिये गये । लौकिक संस्कृत में छन्द तथा रस का सम्बन्ध व्यापक होता है । इस कारण विभिन्न स्थितियों

१- पिंगल छन्द सूत्र - २३ १

२- नाट्यशास्त्र, पृष्ठ ३१७

३- ऋक्प्रातिशाख्य खण्ड, १८।३२
पाताल

के वर्णन के सन्दर्भ में विविध छन्दों का विधान प्रदर्शित करते हुए आचार्य भरत मुनि की उक्ति है[1]--

`वीर के भुजदण्डों के वर्णन में स्त्रग्धरा तथा नायिका वर्णन में बसन्ततिलका आदि कोमल छन्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। शृङ्गाररस में रूपक, दीपक आदि अलंकारों में आर्या तथा अन्य मृदु वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए। उत्तरोत्तर वीररस में जगति, अति जगती तथा संस्कृति वर्ग के छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। शक्वरी और अति धृति छन्दों का प्रयोग अपेक्षित है। रौद्र में वीररस के लिए निर्दिष्ट छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। शेष छन्दों का रसानुकूल प्रयोग करना चाहिए।`

क्षेमेन्द्र ने `सुवृत्त तिलक` में छन्द योजना के विषय में नियम प्रस्तुत करते हुए लिखा है[2]--

सर्ग के प्रारम्भ में कथा का विस्तार क्रम करने के लिए सदुपदेश

१- वीरस्य भुजदण्डानां वर्णने स्त्रग्धरामवेत्।
नायिका वर्णने कार्यं वसन्ततिलकादिकम्॥

- भरत का नाट्यशास्त्र १५। १। २
१६। १०५-१०६।

२- आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तार संग्रहे।
शमोपदेश वृत्तान्ते सन्त: शसन्त्यनुष्टुभम्॥ १
शृङ्गारालम्बोदार नायिका रूप वर्णनम्।
वसन्तादित दंग च सच्छायमुपजातिभि:॥ २
शोभता क्रियाविधु भव्या चन्द्रोदयादिषु।
षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते॥ ३
वसन्ततिलकं भाति संकरे वीररौद्रयो:।
कुर्यात् सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीद्रुतं तालवत्॥ ४

(शेष पाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें)....

तथा वृत्तान्त कहने में सज्जन लोग अनुष्टुप छन्द का प्रयोग करते हैं । शृङ्गार और उसके आलम्बन नायिका आदि के सौन्दर्य वर्णन और वसन्त तथा उसके अंगों के वर्णन में उपजाति का प्रयोग किया जाता है । विभाव अर्थात् चन्द्रोदय आदि के वर्णन में रथोद्धता तथा षाड्गुण्य नीति का वर्णन वंशस्थ छन्द में शोभा देता है । वीर और रौद्र के योग में वसन्ततिलका तथा सर्ग के अन्त में द्रुतताल वाली मालिनी का प्रयोग किया जाना चाहिए । परिच्छेद या विभाजन के समय शिखरिणी तथा उदारता, रुचि एवं औचित्य के विचार में हरिणी का प्रयोग माना जाता है । आक्षेप, क्रोध तथा धिक्कार के प्रसंगों में पृथ्वी वृत्त और वर्षा एवं प्रवास के व्यसन में मन्दाक्रान्ता छन्द रमणीय कहा जाता है । राजाओं की स्तुति तथा उनके शौर्य वर्णन में शार्दूलविक्रीडित प्रयोग किया जाना चाहिए । आवेगयुक्त पवन आदि के प्रसंगों में स्रग्धरा का प्रयोग उचित होता है । दोधक, त्रोटक तथा नर्कुटक का प्रयोग मुक्तक सूक्तियों में ही शोभा देता है । रसादि की दृष्टि से इनके विषय में कोई नियम नहीं है । शेष छन्द जिसकी चर्चा यहां नहीं की गयी है वह केवल वैचित्र्य के लिए होते हैं और इनके प्रयोग के विषय में कोई भी विशेष नियम नहीं है ।

(पिछले पादटिप्पणी का शेष)

उपपन्नपरिच्छेद काले शिखरिणी मता ।
औदार्य रुचिरौचित्य विचारे हरिणीवरा ।।५
आक्षेप क्रोधधिक्कारे परं पृथ्वीभरक्षमा ।
प्रावृड् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।। ६
शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलविक्रीडितं मतम् ।
सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता ।। ७
दोधकत्रोटकनर्कुटक युक्तं मुक्तकमेव विराजति सूक्तम् ।
निर्विषयस्तु रसादिषु तेषां निर्नियमश्च सदाविनियोग: ।। ८
शेषाणामप्रयुक्तानां वृत्तानां विषयं विना ।
वैचित्र्यमात्र पात्राणां विनियोग नदर्शित: ।। ९

– सुवृत्ततिलक – ३ । १९–२१

छन्द के प्रकार -

छन्द: सूत्रकर्ता पिंगल आचार्य ने दो प्रकार के लौकिक छन्द माने हैं जो इस प्रकार हैं --

पिङ्गलादिभिराचार्यैर्यदुक्तं लौकिकं द्विधा ।
मात्रावर्णविभेदेनच्छन्दस्तादिह कथ्यते ॥[1]

(१) मात्रिक छन्द (२) वार्णिक छन्द ।

किन्तु वृत्तरत्नाकर की 'नारायणभट्टीय टीका' में तीन प्रकार के छन्दों का विवरण उपलब्ध होता है --

(१) गण छन्द, (२) मात्रा छन्द, (३) अक्षर छन्द ।[2]

वास्तव में गण छन्द मात्रा छन्द से भिन्न नहीं है । प्राचीन आचार्यों ने गण का मात्रा छन्द में समावेश कर दिया । आधुनिक रूप में दो प्रकार के छन्द माने गये हैं --

(१) मात्रिक छन्द - इसमें मात्रा के अनुसार छन्द की रचना होती है ।
(२) वार्णिक छन्द - इसमें वर्णों के अनुसार छन्द की रचना होती है ।

मात्रा, गण और अक्षर विचार -

छन्द में मात्रा और गण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि छन्दोबद्ध काव्य में इन्हीं के आधार पर छन्द की पहचान होती है --

मात्रा विचार -

साधारणतया मात्रा का अर्थ मान या परिमाण से लिया जाता है । अर्थात् किसी वर्ण का उच्चारण जिस मंदता या तीव्रता से किया जाता है

१- वृत्तरत्नाकर - १ ।४
२- आर्यादावक्षरगणाच्छन्दो मात्राच्छन्दस्ततः परम् ।
ततीयमक्षरच्छन्दः त्रेधा तु लौकिकम् ॥ --नारायणभट्टीय टीका,

यही मंदता, तीव्रता वर्ण का मान या मात्रा है जिसका सम्बन्ध समय से है। मात्राएं दो प्रकार की होती हैं --

(१) ह्रस्व मात्राएं   (२) दीर्घ मात्राएं

चिन्ह -   ।   S

इन्हें क्रमश: लघु और गुरु कहा जाता है। एक मात्रा वाले वर्ण `यथा क` लघु या ह्रस्व कहा जाता है। दुगुनी मात्रा वाले वर्ण यथा - का ` गुरु या दीर्घ कहा जाता है।

छन्द प्रभाकर में मात्रा को इस प्रकार कहा है --

`मात्रा को कल या कला भी कहते हैं।`[1]

जगन्नाथ प्रसाद के अनुसार मात्रा का अर्थ निम्नलिखित है --

`वर्ण के उच्चारण में जो समय व्यतीत होता है उसे मात्रा कहते हैं।`[2]

छन्दमञ्जरी में मात्रा के विषय में कहा भी गया है --

एक मात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजन चार्द्ध मात्रकम्[3] ।।

अर्थात् ह्रस्व की एक मात्रा, दीर्घ स्वर की दो मात्राएं, व्यंजन की आधी मात्रा और प्लुप्त की तीन मात्राएं मानी जाती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मात्रिक छन्दों में मात्रा की गणना की जाती है।

१- छन्द प्रभाकर : जगन्नाथ `भानु`, पृष्ठ ३

२- छन्द मंजरी

३- छन्द प्रभाकर : पृष्ठ १३

गण विचार -

छन्द: सूत्र कर्ता पिंगलाचार्य ने छन्दों की रचना के लिए गणों को रूप दिया। तीन वर्णों के समूह को `गण` कहते हैं। यह गण आठ प्रकार के होते हैं। इनमें एक सर्वगुरु अन्तगुरु, मध्यगुरु, आदिगुरु और चार लघु होते हैं।[१] इन गणों के नाम और उदाहरण इस प्रकार हैं --

(१) मगण - (SSS)
(२) यगण - (ISS)
(३) रगण - (SIS)
(४) सगण - (IIS)
(५) तगण - (SSI)
(६) जगण - (ISS)
(७) भगण - (SII)
(८) नगण - (I I I)[२]

अर्थात् सभी गण तीन-तीन अक्षरों के हैं। इनमें मगण सर्व गुरु और नगण सर्व लघु होते हैं। आदि गुरु भगण में तथा आदि लघु यगण होता है। अन्त्य गुरु सगण और अन्त्य लघु तगण होता है। मध्य में लघु रगण और मध्य गुरु जगण होता है।

१- ज्ञेया: सर्वान्तमध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कला:।
गणाश्चतुर्लघूपेता: पञ्चार्यादिषु संस्थिता:॥
- वृत्तरत्नाकर १।८

२- सर्वगुर्मो मुखान्तलौ यरावन्तगलौ सतौ।
मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलो नोऽष्टौ भवन्त्यत्रगणास्त्रिका:॥
- वही, १।७

वर्णों में गुरु और लघु मानने के कुछ नियम हैं जिसका वर्णन इस प्रकार है --

(१) पाद के अन्त में वर्तमान ह्रस्व अक्षर विकल्प से गुरु माना जाता है ।

(२) विसर्ग, अनुस्वार, संयुक्त अक्षर (व्यञ्जन), जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय से अव्यवहित पूर्व में स्थित होने पर ह्रस्व भी गुरु माना जाता है ।

(३) दीर्घ तो गुरु है ही ।[1]

यति विचार -

छन्दों में यति का प्रयोग होता है । यति का अर्थ छन्दमञ्जरी में निम्नलिखित है --

'यतिर्विच्छेदे विश्रामस्थानं कविभिरुच्यते ।।'[2]

अर्थात् स्थल विशेष पर किंचित विश्राम को यति कहा जाता है ।

कुछ इसी तरह का अर्थ वृत्तरत्नाकर में वर्णित है[3] --

विच्छेद को यति कहा गया है । यह यति व्यवस्थित होती है ।

वर्णीय अक्षर विचार -

अक्षरों या वर्णों की शुद्धि भी छन्दशास्त्र का आवश्यक भाग है नारायणीय भट्ट टीका में वर्ण या अक्षरों का विचार इस प्रकार है --

(१) वर्णमाला में क, ख, ग, ट, ठ, ड, ढ, ण, प, फ, ब, भ, व, र, ल, य, श, ह, छ आदि वर्णों तथा संयुक्ताक्षरों को छोड़कर समस्त वर्ण

१- सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्त परश्च यः ।
वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको ऋजुः ।।
- (वृत्तरत्नाकर १।९)

२- छन्दमञ्जरी -

३- ज्ञेयः पादश्चतुर्थांशो, यतिः विच्छेद संज्ञितः (वृत्तरत्नाकर)

(बाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें

का प्रयोग शुभ सूचक माना गया है ।

(२) काव्य के प्रारम्भ में दु:ख तथा दारिद्र य वाचक शब्दों के सन्दर्भ में वर्णों का प्रयोग अनुचित माना जाता है ।

(३) देवता आदि वाचक शब्दों के सन्दर्भ में गण या अक्षर का विचार नहीं किया जाता है क्योंकि देवताओं के वाचक स्वयं मंगल रूप होते हैं ।

वार्णिक छन्दों के प्रकार --

वार्णिक छन्दों में वर्णों की गणना होने के कारण यह तीन प्रकार के होते हैं यथा --

(१) समवार्णिक छन्द ।

(२) अर्धसम वार्णिक छन्द ।

(३) विषम वार्णिक छन्द ।

'युक्समं विषमं चायुक्स्थानं सद्भिर्निगद्यते ।
समम‍र्धसमं वृत्तं विषमं च तथापरम् ॥'

(१) समवार्णिक छन्द -

यह वर्ण वृत्त भी कहलाते हैं । वृत्तरत्नाकर के अनुसार इसका

१- अवर्णादिसम्पत्तिर्भवति मुदिवर्णाद्विलसता: ।
ऋवर्णादिस्याति: शरमलपूर्ण दरहिताद् ॥
तथा - ह्येव: सौस्यं ह०अ ण रहिताक्षरगणाद् ।
पदादौ विन्यासाद् म र भ ह क श हावरहितात ॥
(नारायणभट्टीय टीका, पृष्ठ -७)

देवता वाचका: शब्दा: ये च भद्रादिवाचका: ।
ते सर्वेष निषाना: स्वाहिंपितो गणतोपिता ॥

अर्थ निम्नलिखित है --

> 'अऽङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्य लक्षणलक्षिताः ।
> तच्छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥'[1]

अर्थात् जिसके चारो चरण एक समान हो वह समछन्द कहे जाते हैं ।

(२) अर्धसम वार्णिक छन्द--

जिसमें प्रथम चरण, तृतीय चरण के तुल्य तथा द्वितीय चरण, चतुर्थ चरण एक समान हो तो उसे अर्धसम छन्द कहते हैं यथा --

> 'प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ।
> द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते ॥'

(३) विषम वार्णिक छन्द -

जो छन्द न तो सम हो, न अर्धसम हो वह विषम छन्द कहलाते हैं जिसमें चारो चरण परस्पर भिन्न-भिन्न लक्षण वाले हों । वृत्तरत्नाकर के अनुसार --

> यस्यपाद चतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम् ।
> तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः ॥

वार्णिक विषम छन्द संस्कृत काव्य में कम पाये जाते हैं क्योंकि वैदिक साहित्य की पादगत स्वच्छन्दता लौकिक साहित्य में सर्वथा विलुप्त हो गयी इसलिए लौकिक साहित्य के चार चरण निश्चित कर दिये गये हैं ।

छन्दोऽनुशासन के अनुसार --

> 'वृत्तं जातिरिति द्वेधा पद्यं तच्च चतुष्पदी ।'

१- वृत्तरत्नाकर - समछन्द, अर्धसम छन्द, विषम छन्द ।

२- छन्दोऽनुशासन - रचयिता जयकीर्ति ।

संस्कृत के छन्दशास्त्र -

छन्द साहित्य, काव्य के मूल उद्देश्यों की गरिमा और महिमा के होते हुए भी छन्द की रमणीयता और चिरस्थायिता के बढ़ाने में सर्वथा सहायक रहा है । संस्कृत के छन्द साहित्य अधिक नहीं प्राप्त होते हैं । किन्तु कुछ उपलब्ध साहित्य में छन्द का विस्तार से वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है :--

(१) पिंगलाचार्य[1] --

इनका समय लगभग २०० वर्ष ई० पूर्व है । इनके द्वारा रचित `पिङ्गलसूत्र' है । इसमें लौकिक तथा वैदिक छन्दों का विवेचन है । यह आठ अध्याय में विभक्त है । सूत्र शैली में छन्दों का लक्षण दिया गया है । सूत्रों का निर्माण दशाक्षर (यमताराजभानसलग) है ।

(२) भरतमुनि[2] --

भरतमुनि का समय लगभग २०० वर्ष ईसा पूर्व माना जाता है । इनके द्वारा रचित `नाट्य शास्त्र' है जिसके १४, १५ अध्याय में लौकिक छन्दों का निरूपण है । छन्द के लक्षण व उदाहरण श्लोक में वर्णित है ।

(३) पुराण --

४ थीं, ५वीं पूर्व लगभग १८ पुराणों की रचना हुयी थी उनमें केवल तीन पुराणों में ही छन्दों का विवेचन है --

१- नारदीय पुराण -

नारद पुराण के ५० वें अध्याय में वैदिक एवं लौकिक छन्

१- पिङ्गल सूत्र - निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित ।

२- नाट्यशास्त्र - क्वार्टिंग प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित ।

की चर्चा की गई है । केवल छन्दों के नाम दिये गये हैं । इसमें गण, पाद, यति और दशाक्षर का विवेचन है ।

२- अग्निपुराण -

आठ अध्याय में छन्दों का विवेचन है । इसमें लौकिक एवं वैदिक दोनों के लक्षण हैं उदाहरण नहीं है । अग्निपुराण में छन्द के बारे में कहा गया है --

`छन्दोवक्ष्ये मूल वेस्तै: पिंगलोक्तं यथाक्रमम ।`

३- वराहमिहिर[1] -

वराह मिहिर द्वारा रचित ज्योतिष ग्रन्थ `बृहत्संहिता` है इसके १४ अध्याय में छन्दों का विवेचन किया गया है ।

४- जयदेव[2] -

जयदेव द्वारा रचित `जयदेवच्छन्द:` है । इसके ८ वें अध्याय में लौकिक तथा वैदिक छन्दों का विवरण है । वैदिक छन्द के लक्षण सूत्र शैली में है । लौकिक छन्दों के लक्षण केवल एक चरण में लिखे गये हैं ।

५- कालिदास[3] -

८ वीं शती में कालिदास द्वारा रचित रचना `श्रुतबोध` है इसमें केवल ४० छन्दों के लक्षण हैं । लक्षणों के विवेचन गणों के आधार पर न होकर लघु गुरु के विचार से दिया गया है ।

१- बृहत्संहिता : विजयानगरम् संस्कृत सीरीज, भाग १० बनारस से प्रकाशित

२- जयदेवच्छन्द : एच० डी वेलणकर द्वारा सम्पादित जयदामन हरितोष समिति बम्बई में संकलित ।

३- श्रुतबोध : चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी हिन्दी टीका सहित

६- जयकीर्ति[१] -

१० वीं शताब्दी के लगभग जयकीर्ति का समय माना जाता है इनके द्वारा रचित ग्रन्थ `छन्दोऽनुशासन` है । यह आठ अध्याय में विभक्त है । केवल लौकिक छन्दों में वर्णवृत्तों के साथ मात्रिक छन्द भी है । लक्षण और उदाहरण भी इसमें संगृहीत है ।

७- केदारभट्ट[२] -

१० वीं शती के लगभग केदारभट्ट ने `वृत्तरत्नाकर` की रचना की । यह छै अध्याय में है । इसमें लौकिक छन्दों का विशेष विवेचन है । इसमें दो प्रकार के छन्द के भेद बताये गये हैं । लक्षणों के साथ उदाहरण भी दिये गये हैं ।

८- राजशेखर[३] -

राजशेखर का समय लगभग ११-१२ वीं शती के पास माना जाता है । इनके द्वारा रचित ग्रन्थ `छन्दशेखर` है । इसमें पांच अध्याय है । प्राकृत और अपभ्रंश छन्द भी दिये गये हैं । छन्दों के लक्षण मात्रा गणों के आधार पर दिये गये हैं ।

९- हेमचन्द्र -

हेमचन्द्र का समय ११-१२ वीं शती के लगभग माना जाता है । इनके द्वारा रचित छन्द ग्रन्थ `छन्दोऽनुशासन`[४] है । यह आठ अध्याय में विभक्त है

१- छन्दोऽनुशासन - एच० डी० वेलणकर द्वारा सम्पादित, जयदामन में संकलित मूलमात्र ।

२- वृत्तरत्नाकर - चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी से प्रकाशित, संस्कृत हिन्दी टीका सहित ।

३- छन्दशेखर - एच० डी० वेलणकर द्वारा सम्पादित,

४- छन्दोऽनुशासन -

संस्कृत के वर्णवृत्त तथा प्राकृत, अपभ्रंश के मात्रिक छन्दों का उल्लेख किया गया है ।

१०- गंगादास[१] -

गंगादास का समय १५-१६ वीं शती के लगभग माना जाता है । इनके द्वारा रचित `छन्दोमञ्जरी` है । इसमें वर्णवृत्त तथा मात्रावृत्त दोनों का ही विवेचन है । इसकी शैली वृत्तरत्नाकर की शैली से मिलती है ।

११- रामचरण शर्मसूरि[२] -

इनके द्वारा रचित ग्रन्थ `वृत्तप्रत्ययकौमुदी` है । इसके दो प्रकाश हैं - प्रथम में प्रत्यय और द्वितीय में वर्णवृत्त छन्द का विवेचन है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छन्दशास्त्र का साहित्य बहुत अधिक विकसित नहीं था किन्तु धीरे-धीरे छन्द साहित्य का विकास हो रहा है । यहां पर केवल छन्द शास्त्र के प्राप्य ग्रन्थों का ही उल्लेख है ।

सूर्य के स्तोत्रों में प्रयुक्त छन्द -

महाकाव्यों में अनेक छन्दों की बहुरंगी प्रदर्शिनी दृष्टिगोचर होती है वैसी गीति या स्तोत्र काव्यों में परिलक्षित नहीं होती है । क्योंकि गीति या स्तोत्र काव्यों में कवि का ध्यान मुख्यत: भावों के प्रवाह की ओर रहता है । भाव, कल्पना, संवेदना, अनुभूति ही मुख्य तत्व होता है तथा कलापक्ष गौण रूप में होता है । अत: सरल एवं सुनियोजित छन्दों का प्रयोग ही अधिक

१- छन्दोमंजरी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी से प्रकाशित ।

२- वृत्तप्रत्यय कौमुदी - निर्णय सागर बम्बई से प्रकाशित सन् १९६८ सम्वत् १९५६

उपयुक्त माना गया है। अति वक्र छन्दों से स्तोत्रों में भावों का प्रवाह तीव्र गति से बढ़ता है। छन्दों का प्रयोग स्तोत्र काव्यों में सरलता और लयबाहिता के लिए नहीं अपितु भावों की वैचित्र्यता के लिए किये जाते हैं।

सूर्य की स्तुतियों में वैदिक छन्द ही नहीं अपितु लौकिक छन्द का प्रयोग है। वैदिक छन्दों के विषय में सूर्य स्तुतियों में यह मान्यता रही है कि[1] -- गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, जगती, पङ्क्ति, बृहती और उष्णिक् ये सात छन्द ही सूर्य के रथ के अश्व हैं जो स्वेच्छानुसार गमन करते हैं। इस कारण सूर्य की स्तुतियों में सर्वत्र यही छन्द प्रयुक्त हुए। दार्शनिक भाव में सूर्य की यह व्याहृतियां सूर्य की सप्तरश्मि से उद्भूत है। यह सातों व्याहृतियां रश्मियों के अवयव है जिनके द्वारा जगत् में ज्ञान (चेतना संचित) संज्ञा उपलब्ध होती है। इन रश्मियों के प्रभाव से व्याहृतियां मुनि जनों के हृदय में आविर्भूत होकर छन्दोबद्ध सूर्य-स्तुति करते हैं। इन स्तुतियों में सूर्य ही छन्द है ऐसा कहने पर सूर्य की छन्दोमयता का परिबोध करते हैं जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत के अनुसार है --

'विष्णु परब्रह्म है उसका वाहन गरुड छन्द है। विष्णु रूप सूर्य होने के कारण गरुड पर अधिष्ठित होता है। इसलिए सूर्य स्वयं ही छन्द है उनके अश्व भी छन्दोमय हैं।'

इस प्रकार वैदिक छन्दमयता का परिबोध सूर्य स्तुतियों में स्पष्ट हो जाता है। वैदिक छन्दों के अतिरिक्त वर्णानुकूल छन्दों का प्रयोग सूर्य स्तुतियों में रहा है। क्योंकि सूर्य के विषय के आधार चमत्कृतभाव के लिए इन छन्दों का प्रयोग किया है। स्तुत्य काव्यों में विषय की गम्भीरता, पदविन्यास अलंकारादि के कारण छन्द का स्वरूप स्वत: निर्धारित हो जाता है। लौकिक छन्दों में शिखरिणी, हरिणी, स्त्रग्धरा इत्यादि छन्द प्रयुक्त है। यह भाव व रस के अनुकूल ललित छन्द है। वैदिक छन्दों में गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप छन्द प्रयोग किये गये हैं।

१- मत्स्यपुराण - वर्णित रथ चक्र के सन्दर्भ में।

अनुष्टुप छन्द -

वैदिक छन्दों में इसका परिगणन होता है। सूर्य की सर्वस्तुतियों में प्राय: अनुष्टुप छन्द है क्योंकि अनुष्टुप सूर्य की सप्त व्यवहितियों में से एक है। सूर्य का स्तुत्यभाव इस छन्द में समर्पित है।

अनुष्टुप छन्द में प्रत्येक पाद आठ अक्षरों का होता है। आदि गुरु या लघु और अन्त लघु या गुरु प्रत्येक पाद में होता है। अर्थात् प्रत्येक पाद में एक गुरु, एक लघु होता है।[1]

'सूर्यस्तवराज स्तोत्र' में शरीर, रोग शमन व धन, ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु सूर्य की स्तुति की गयी है। इस स्तुति में यह छन्द द्रष्टव्य है यथा --

ॐ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रवि: ।
लोक प्रकाशक: श्रीमल्लोक चक्षुर्महेश्वर: ।।
लोकसाक्षी त्रिलोकेश: कर्ता हर्ता तमिस्त्रहा ।
तपनस्तापनश्चैव शुचि: सप्ताश्व वाहन: ।।[2]

आदित्यहृदय स्तोत्र में अगस्त्य ऋषि ने शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सहस्त्र किरणों वाले भगवान् भास्कर की आराधना में स्तुति करने के लिए राम को प्रेरित किया। इस स्तुति में यह छन्द प्रयुक्त है यथा --

आदित्य हृदयं पुण्यं सर्वशत्रु विनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षयं परमं शिवं ।।

१- अनुष्टुप का लक्षण -

युक्तं नाद्यान्नसौ स्यातामब्धेर्योऽनुष्टुभिख्यातम् ।

- वृत्तरत्नाकर, पंचम अध्याय । २१

२- सूर्य स्तवराज स्तोत्र - साम्बपुराण, २५ सर्ग १२-२४ तक ।

सर्वदेवात्मकोह्येष तेजस्वी रश्मिभावन: ।
एष देवासुरगणा लोकान् पाति गभस्तिभि: ।।[1]

'सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र' में धर्मराज युधिष्ठिर ने अनुष्टुप् छन्द से युक्त सूर्य भगवान् के विभिन्न नामों की संस्तुति ब्राह्मण अतिथि सेवा के लिए की थी यथा --

'सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्क: सविता रवि: ।
गभस्तिमान जो कालो मृत्युर्धाता प्रभाकर: ।।[2]

'सवित्र स्तोत्र' में याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद के ज्ञान के लिए सूर्य की स्तुति की गई । इस स्तुति में सूर्य भगवान् की सर्वशक्तिमयता का भाव अनुष्टुप् छन्द में दृष्टव्य है यथा --

'नमोऽग्नी षोमभूताय जगत: कारणात्मने ।
भास्कराय परं तेज: सौषुम्न गुरु बिभ्रते ।।
नम: सवित्र द्वाराय विमुक्ते: स्तिततेजसे ।
ऋग् युज: सामभूताय त्री धामवते नम: ।।[3]

'सूर्यारूण्य शतकम्' में कवि ने भगवान् भुवन भास्कर की स्तुति करते हुए सूर्य की उदित होती हुई किरणों से रक्षा के लिए आवाहन करते हुए इस छन्द को प्रयुक्त किया है, यथा --

' प्राचीभालेन्दु सिन्दूर सीमन्त तिलकद्युति ।
उदितैक करं पायात् प्रातरतिग्ममण्डलम् ।।[4]

१- वाल्मीकि रामायण - १०७ । ९-१०

२- महाभारत वनपर्व - ९-१६

३- विष्णुपुराण - ३।५।१६-२४ तक

४- सूर्यारुण्यशतकम् - ५८ श्लोक

'सूर्याष्टकम् स्तोत्र' में भगवान् सूर्य की स्तुति ग्रह पीडा, पुत्र लाभ के लिए की गई है। इस स्तुति में यह छन्द द्रष्टव्य है यथा --

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते ।।
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेत पद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।[1]

इसके अतिरिक्त मित्र कृत सूर्य स्तोत्र, महेश्वर कृत सूर्य स्तोत्र, ब्रह्मकृत सूर्य स्तोत्र में भगवान सूर्य की स्तुति के सन्दर्भ में अनुष्टुप् छन्द द्रष्टव्य है। सर्वत्र सूर्य की स्तुतियों में अनुष्टुप् छन्द का प्राधान्य है।

गायत्री छन्द -

वैदिक छन्दों में गायत्री छन्द भी एक छन्द है। अनुष्टुप् की भांति गायत्री भी सूर्य की सप्तरश्मियों में से एक है। सूर्य की स्तुतियों में यह छन्द प्रयुक्त है।

गायत्री छन्द में प्रत्येक पाद छः अक्षर का होता है। कुल मिला कर चौबीस अक्षर होते हैं।

'सूर्योपनिषद्' में ब्रह्म ऋषि ने कल्याण हेतु सूर्य की स्तुति की। उस स्तुति में यह छन्द द्रष्टव्य है। यथा --

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।।
पर्जन्योऽन्नमात्मा ।
नमस्ते आदित्याय त्वमेव केवलं कर्तासि ।।[2]

१- सूर्याष्टक स्तोत्र - १-११ तक
२- सूर्योपनिषद -

'सूर्यकवच स्तोत्र' में ब्रह्मा जी ने सर्वविघ्न विनाश तथा रक्षा के लिए सूर्य की आराधना की। रक्षात्मक हेतु स्तुति में गायत्री छन्द प्रयुक्त है यथा --

व्याधितोमुच्यते स्त्वं च कवचस्यास्य प्रसादत: ।
भवान रोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशय ।।[1]

'चाक्षुषोपनिषद्' में अहिर्बुध्न्य ऋषि ने नेत्र रोग के शमन के लिए भुवन भास्कर की स्तुति की। उस सूर्य स्तुति में गायत्री छन्द दृष्टिगत है। यथा -

ॐ नम: चक्षुस्तेजो दात्रे दिव्यायभास्कराय ।
ॐ नम: करुणा करायामृताय ।।[2]

'सूर्यकवच स्तोत्र' में भैरव ने सर्वकामनाओं की पूर्ति तथा रक्षा हेतु सूर्य कवच का पाठ किया। उस सूर्य स्तुति में गायत्री छन्द प्राधान्य रूप से दृष्टव्य है यथा --

भक्त्या य: शृणुते दिव्यं कवचं प्रत्यहं प्रिये ।
इहलोके श्रियं भुक्त्वा देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ।।[3]

इस प्रकार वैदिक छन्दों का बाहुल्य सूर्य की स्तुतियों में रहा किन्तु लौकिक छन्दों का भी प्रयोग सूर्य की स्तुति में कवि ने अपने कल्पनात्मक भाव को व्यक्त करने के लिए किया। शिखरिणी, आर्या, हरिणी इत्यादि छन्द भक्तिरस का उद्बोधित करते हैं यथा --

आर्याछन्द--

आर्या छन्द की गणना लौकिक छन्दों के अन्तर्गत की जाती है यह मात्रिक छन्द है।

१- सूर्यकवच स्तोत्र - ब्रह्मवैवर्तपुराण २।१९।१४-१८ तक

२- चाक्षुषोपनिषद् -

३- सूर्यकवच स्तोत्र -

आर्या छन्द में प्रथम पाद और तृतीय पाद में द्वादश मात्राएं और द्वितीय में अष्टादश तथा चतुर्थपाद में पञ्चदश मात्राएं होती हैं।[1]

'सूर्याभिरूण्यशतकम्' में स्तुति प्रदान के लिए कवि ने सूर्य की स्तुति की। इस स्तुति में आर्याछन्द का प्रयोग कवि ने सूर्य के गुणों का वर्णन करने में किया है यथा --

'भक्तीति भञ्जन। भगवन्। भासां निधे। भानो।
भावय नमोविभूषण। सूर्य-मूर्ति गिरां किमे॥'[2]

हरिणी छन्द -

हरिणी छन्द भी लौकिक छन्द है।

हरिणी में प्रत्येक पाद में क्रम से एक नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु होता है। चार, छः और सात पर यति होती है।[3]

'सूर्याभिरूण्यशतकम्' में कवि ने सूर्य स्तुति के सन्दर्भ में भी की गई पद रचना पर दुष्टों के विकृत भाव को व्यक्त करने में हरिणी छन्द प्रयुक्त किया है यथा --

----

१- आर्या छन्द -

यस्या: पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादशद्वितीये चतुर्थे तेपञ्चदश साऽर्या॥

- वृत्तरत्नाकर

२- सूर्याभिरूण्यशतकम् - ६

३- हरिणी --

रसयुगहयैन्सौ म्रौ स्लौ गो यदाहरिणी तदा।

- वृत्तरत्नाकर ३। ९६

सुकवि कविता श्रावं श्रावं विभाव्य च दूषणम्
यदि न लभते दुष्टो दृष्टुकाथितमप्यदः ।
तदपि वदन ग्लान्त्या सभो मुहुः शनकैः पठ-
न्नहह मलिनामितां कर्तुं व्यवस्यति साहसी ।।[1]

शिखरिणी --

शिखरिणी में प्रत्येक चरण में क्रम से एक यगण और एक मगण तथा नगण, सगण, मगण तथा एक लघु एवं एक गुरु होता है । छः और ग्यारह पर यति होती है ।[2]

कवि ने सूर्य की स्तुति करते हुए अपनी वाणी को स्फुरित करने के लिए प्रार्थना में यह छन्द प्रयुक्त किया है यथा --

प्रयागे कालिन्दीं सरसरितमप्यापिदधतः ।
क्षणं शोणाद्वैतं जगति जनयन्तस्त्व कराः ।।
सरस्वत्याः स्फूर्तिं विदधतु ममाप्यम्बुजपते ।।
तदैक्यं कुर्वाणाः विहितमपि सारस्वतमयः ।।[3]

कवि ने प्रस्तुत छन्द को वात्सल्यमूलक भक्ति रस के उद्बोधन में प्रयुक्त किया है यथा --

धरित्रीं ध्वान्ताब्धौ धरणितनयेन ग्रहपते ।
सवित्रीं समग्नामखिलमखोद्धर्तुं मनसा ।

1- सूर्यशतकम्

2- शिखरिणी - रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।
- वृत्तरत्नाकर 3।93

3- सूर्यशतकम् - 11, 21, 36

समानीतो मन्ये प्रतिपादमुपास्य प्रणमता ।
कृतानेकक्लेशा लघणातनुलदीतो वयसि तत् ।।[1]

प्रस्तुत पद्य में कवि सूर्य की स्तुति में सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया है यथा --

परिच्छेत्तुं शक्त: क इव तव रूपं दिनपते ।
तथाप्यस्मानेष: मुखरयति वेद्री मुखरता ।
सुरा सिन्धौ मग्नस्त्वमपि विनिशमकं । स्वयमम्
रजुन्मादोल्लासादकणिममरोऽयं विलसति ।।[2]

प्रस्तुत श्लोक में सूर्य के आलौकिक रूप की अभिव्यंजना करते हुए कवि ने शिखरिणी छन्द को व्यक्त किया है यथा --

अधेरावीवानामुषसि खलु बीवातुलहरी ।
मम राम किंनु अभिव जगतीमेष दक्षे ।
स स्वाय प्रात: प्रभवति समुच्छ्वासयत्ते ।
प्रभामावं वेत्तु प्रतिदिव समन्त: कलयति ।।[3]

स्त्रग्धरा -

स्त्रग्धरा छन्द में प्रत्येक पाद में क्रम से एक मगण, रगण, भगण,[4] नगण और तीन यगण होते हैं । सात, सात और सात पर यति होती है ।

१-

२-

३- सूर्याष्टकशतकम् - ५६
४- स्त्रग्धरा का लक्षण -
म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
(वृत्तरत्नाकर ३।१०७)

कवि ने हृदय की मार्मिक अनुभूतियों के उद्गार इन सूर्य की स्तुतियों में स्रग्धरा छन्द के माध्यम से अभिव्यक्त किया है यथा --

शीते शोकं शशाङ्के कृशतमरुचितामाशु नाशं निशायां
धिक्कारं ध्वान्तवर्गे कुमुदपरिषदि प्रोद्गमं दीनतायाः ।
पाण्डित्यं पुण्डरीकेष्वनुदिनमधिकां कान्तिमाशासु तन्व
न्नन्व बत्यन्वहं यामुषसि करुणया विश्वबन्धो विवस्वान् ।[1]

प्रस्तुत छन्द की अभिव्यक्ति सूर्य से रक्षा करने के लिए प्रेरित करते हुए कवि ने की है । यथा --

त्राणं त्रैविष्टपानां तरणमथ पयस्तोमतात्म्यस्सूनां
नक्षत्तानामलक्ष्यं त्रिगुणमयतया यद् त्रयाणां तुरीयम् ।
तद् तादृक तुन्दिलायास्तरुणतरतमः सन्ततेरन्तकृद् त्वां
तेजस्त्रैलोक्यताम्रीकरणचतुरिम त्रायतां तीक्ष्णभानोः ।।[2]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने सूर्य की सौन्दर्यमयी किरणों के गुणों का वर्णन करते हुए यह छन्द प्रयुक्त किया है यथा --

मा गान्म्लानिं मृणालीमृदुरिति दययेवाप्रविष्टो हिलोकं ।
लोकालोकस्य पार्श्वं प्रतपति न परं यस्तदास्त्यार्थमेव ।।
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डस्फुटनभयपरित्यक्तदैर्ध्योद्युसीम्नि ।
स्वेच्छावश्याकाशावधिरतु स वस्तापनो रोचिरोघः ।।[3]

कवि ने सूर्य के आलौकिक गुणों का वर्णन अपनी लेखनी से किया । प्रस्तुत

१- पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा रचित - सुधालहरी, ११, १६

२- मयूर कवि द्वारा रचित 'सूर्यशतकम्' १६ ।

३-

छन्द में भक्तिरस की भावगम्य धारा दृष्टिगत होती है । यथा --

> ससंज सिकमूलादभिनवमुक्तोधान कौतूहलिन्या ।
> याभिन्या कन्ययेवामृतकर कल शावर्जितेनामृतेन ।
> क्ष्मांठीक् क्रियाद्वो भुवभुवयशिरश्चक्रवालवालाल-
> दुधन्वाऽलप्रवालप्रतिम रुचिरह: पादपद्माक्प्रोह: ।।

कवि ओजगुण से समाहित होकर सूर्य के प्रति अपने भावों को व्यक्त करता है और प्रतिभा सामर्थ्य वश काव्य में उत्पन्न दोषों का विचार न करने में इस छन्द का प्रयोग किया है ।

> अस्माकं स्वच्छ सारस्वत जलधि मिलल्लोलकल्लोलधुपत्
> काव्य-सूक्तवैस्तदुक्ति प्रकार परिलसन्मौक्तिक स्त्रग्धराणाम् ।
> वाग्गुम्फे कोऽपि दोषोऽप्यसदितरजने व्यकरोत्येद गमानां ।
> सामर्थ्यादा शुवद्धो मरकत सुषमां नूनभावि करोति ।।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सूर्य की स्तुतियों में सर्वत्र ही छन्द का प्रयोग किया गया है । कहीं पर यह छन्द भाव को उद्घोषित करते हैं, कहीं पर अलंकार का अलंकरण करते हैं और कहीं भक्तिरस की मधुरछाया परिलक्षित करते हैं । इस प्रकार छन्द सर्वत्र छाये रहते हैं ।

१-

२-

सप्तम अध्याय

अलंकार - सौन्दर्य

काव्यतत्व के भारतीय समीक्षकों ने वाल्मीकि व्यास आदि महाकवियों की रचनाओं को लक्ष्य बनाकर आवश्यक तथा सामान्य तत्वों के विश्लेषण के प्रसंग में किसी एक तत्व की प्रधानता के आधार पर एक सिद्धान्त को दृढ़ता प्रदान करने का समुचित प्रयास किया है - प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीनतम साहित्य-शास्त्री आचार्य अपने-अपने निबन्धों में यह विचार करते देखे गये हैं कि रुचिरार्थक शब्दों का समुचित सन्निवेश रूप काव्य किन-किन साधनों से सहृदयों के हृदयावर्जन में अधिक समर्थ हो सकेगा । इस दृष्टि से विचार करते हुए आलङ्कारिक आचार्य काव्य के शरीर स्थानीय शब्द तथा अर्थ के उत्कर्ष के द्वारा गुण अलंकार आदि बाह्यतत्वों को ही काव्य के चमत्कार का कारण मानते थे । इन आचार्यों में भामह, वामन, रुद्रट, उद्भट आदि प्रमुख थे । इनके अनुसार जिस प्रकार कामिनी का अतीव सुन्दर मुख भी आभूषणों के बिना नहीं सुशोभित होता उसी प्रकार कविता कामिनी के शरीरतत्व शब्द एवं अर्थ की शोभा अलंकारों के बिना नहीं हो सकती । इन आचार्यों के द्वारा यद्यपि काव्य के शरीर तत्व के सौन्दर्य के लिए गुण रीति तथा वृत्ति का भी पर्याप्त विवेचन किया गया है तथापि इन सबमें अलङ्कारतत्व की ही प्रधानता के कारण इनका समस्त विश्लेषण अलङ्कार सम्प्रदाय के रूप में अभिव्यक्त हुआ । सम्पूर्ण अलङ्कारवादी आचार्यों के ग्रन्थों में ध्वन्यमान अर्थ को वाच्योपकारक मानकर उसको अलङ्कार कोटि में ही समाविष्ट कर लिया गया था जिस प्रकार चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ज्ञात होने वाले स्थूल तत्वों के अतिरिक्त सूक्ष्म तत्वों के प्रति अनास्था व्यक्त करते हैं उसी प्रकार भामह आदि प्राचीन आलङ्कारिक आचार्य वाच्यार्थ के अतिरिक्त प्रतीयमानार्थ को पृथक न मानकर उसे वाच्यार्थ का उपकारक मान लेते हैं । आचार्यों की इस मान्यता का कारण सम्भवतः यह था कि काव्य का वह जीवितभूत आत्मतत्व उस समय अनालोचित अर्थात् अस्पष्ट था जिसके कारण कविताओं में स्वाभाविक सौन्दर्य स्वतः प्रवाहित होने लगता है तथा उनमें सजीवता आ जाती है । ध्वन्यालोक

आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्यात्मतत्व के रूप में जिस व्यङ्ग्य अर्थ की महान् संरम्भ के साथ आगे चलकर प्रतिष्ठापना की थी उस अर्थ का यद्यपि उन आचार्यों को यत्किञ्चित् आभास मात्र मिल चुका था तथापि वे उसे काव्य के चारुत्व का हेतु मानने के लिए कथमपि प्रस्तुत नहीं थे । भामह आदि विद्वानों की दृष्टि व्यङ्ग्यार्थ को समझने में समर्थ होकर भी उसको वाच्यार्थ से व्यतिरिक्त तथा कविता के सौन्दर्य हेतु के रूप में न देख सकी । उन आचार्यों ने व्यङ्ग्य को भी वाच्य का ही पोषक स्वीकार किया, इसीलिए व्यङ्ग्य अर्थ भी इनके द्वारा अलङ्कार की ही श्रेणी में परिगणित हुआ । रुद्रट आदि आचार्यों ने यद्यपि वाच्यता के संस्पर्श लेश से भी रहित रस-भाव आदि पदार्थों को पहचान लिया था तथापि पूर्वाचार्यों का संस्कार इनमें इतना दृढ था कि उन्होंने रस भाव आदि को वाच्यार्थ का पोषक मानकर रसवत् प्रेय आदि अलङ्कार ही कहा । इस प्रकार प्राचीन आचार्य कविता कामिनी के बाह्य सौन्दर्य का ही विश्लेषण कर आनन्द प्राप्त करते रहे ।

काव्यों में विद्यमान आलङ्कारिक प्रयोगों के आधार पर काव्य-शास्त्रियों ने रसादि के अभिव्यञ्जक शब्द एवं अर्थ में चारुता उत्पन्न करने वाले गुणालङ्कारादि का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है । काव्य की निष्पत्ति में आचार्यों ने हेतुओं का विश्लेषण करते हुए यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि जन्मान्तरागत संस्कार विशेष प्रतिभा काव्य के निर्माण में प्रधान कारण है । यह कवित्व का बीज है इसके बिना काव्य का विस्तार नहीं हो सकता किसी तरह काव्य बन भी जाय तो उसमें मन को मुग्ध कर देने वाली चारुता नहीं आ सकती । प्रतिभावान् कवि स्वतन्त्र प्रकृति का होता है । अपनी भूमिका का निर्माण वह स्वयं करता है । कवि यह सोचकर कविता की रचना करने नहीं बैठता कि यहां अमुक अलंकार, अमुक गुणादि का प्रयोग करना है, वस्तुत: उसके द्वारा 'वस्तु' के व्याख्यान में अलंकारादि तत्व स्वत: उपस्थित हो जाते हैं । इतना अवश्य है कि भावों के उतार चढ़ाव से ही उसकी रचना में अलङ्कारादि तत्वों की स्थिति का निर्धारण होता है । इन कविताओं में

लावण्य की प्रधानता रहती है। जिस प्रकार आकर्षक आभूषणों से रहित भी आभीरकन्या वल्कलादि को धारण किए हुए ही स्वाभाविक लावण्य-विशेष के कारण रसिकजनों में रागात्मकता का उदय करा देती है उसी प्रकार अपभ्रंश का भी प्रयोग करने वाले कवि की कारती है। अत: जिन कविताओं में नैसर्गिक शोभा प्रोद्दीप्त हो रही हो वहां अलंकारादि की अप्रधानता ही रहती है। फिर भी अलंकार आदि की कविताओं में आवश्यक स्थिति इसलिए स्वीकार की जाती है कि ये उक्ति के अविभाज्य अंग बनकर अन्तस्तत्व लावण्य में ही अन्तर्भूत होकर कवि के अभिप्राय के समग्ररूप को और अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। इसीलिए कवि-प्रसङ्गविशेष के अनुरूप गुणों तथा अलंकारों का प्रयोग करते हैं। अन्यथा शृङ्गाररस की अभिव्यक्ति के लिए ओजोगुण तथा यमक आदि अलङ्कारों का प्रयोग अनुपपन्न ही होगा।

यहां पर एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अलंकार तथा अलंकार्य दोनों में भेद है या अभेद। दण्डी, भामह, वामन आदि आचार्यों ने अलंकार एवं अलङ्कार्य में अभेद की स्थापना की है। इनका विचार यह है कि अलंकार काव्यशोभा अर्थात् अलंकार्य के कारण अथवा पर्याय हैं। इसी दृष्टि से इन्होंने समस्त रसप्रपञ्च को रसवदादि अलङ्कारों में अन्तर्भूत माना है। इनके अनुसार अलंकार तत्व ही प्रधान है तथा इसके बिना काव्य चमत्काररहित होने के कारण वार्ता मात्र रह जाता है उसमें काव्यत्व नहीं माना जा सकता क्योंकि काव्यत्व का अर्थ ही चमत्कारयुक्तता है।

'गतोऽस्तमर्को भातीन्दु: यान्ति वासाय पक्षिण:' इस प्रयोग में भामह ने स्पष्ट रूप से काव्यत्व का निषेध किया है तथा इसे वार्ता कहा है। किन्तु रसध्वनिवादियों की मान्यता भिन्न है। इन्होंने अलंकार तथा अलंकार्य में भेद स्वीकार किया है। मूलत: रस अलङ्कार्य है, रस के अभिव्यञ्जक शब्द एवं अर्थ भी प्रणालत: अलङ्कार्य हैं तथा यमकोपमादि अलङ्कार हैं। इनकी विवक्षा रस को प्रधान मानकर होती है। इन अलंकारों की सार्थकता रस के उत्कर्ष की वृद्धि में ही होती है।

काव्यजगत् में काव्यात्मक उक्तियों को अधिकाधिक चमत्कारपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अलंकृत किया गया। क्योंकि चमत्कार की सृष्टि में ही कवि-प्रतिभा की सार्थकता है। संस्कृत साहित्य में अलङ्•कार-प्रयोग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अलङ्•कार को राजशेखर ने सप्तम वेदाङ्•ग माना है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने अलङ्•कारवर्णना के प्रसङ्•ग में उपकारक तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए 'सप्तमाङ्•गम' कहकर अलंकारों की प्रधानता स्पष्ट की है।[१] काव्यों में अलङ्•कारों की प्रधानता होने के कारण ही अलंकारवादी आचार्यों ने निरलङ्•कार काव्य की उपमा एक विधवा स्त्री से दे डाली है।[२]

काव्यकारों द्वारा अपने-अपने काव्यों में अनेकत्र समावेश से सत्कृत तथा अलङ्•कारवादी आचार्यों द्वारा काव्यतत्त्वों की समालोचना के प्रसङ्•गों में बहुधा व्याख्यात अलङ्•कार शब्द की निष्पत्ति भूषणवाचक अलशब्द के पूर्व-प्रयोग से युक्त करणार्थक 'कृञ्' धातु से करण या भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय करने पर होती है। इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियां इस प्रकार हैं -- (१) अलङ्•करोतीति अलङ्•कारः।

(२) अलङ्•क्रियते अनेनेत्यलङ्•कारः।

(३) अलङ्•करणमलङ्•कारः।

अलंकारों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य भामह ने स्पष्ट किया है कि वक्रता से युक्त शब्दों की उक्ति अलंकार है।[३] आचार्य रुद्रट भी इन्हीं

१- उपकारत्वादलङ्•कारः सप्तममङ्•गम।
- का० प्र० सप्तम उल्लास

२- अर्थालङ्•काररहिता विधवेव सरस्वती।
- अग्निपुराण ३४३, १०२

३- वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्•कृतिः।
- काव्यालंकार १। ३६

के मत का अनुगमन करते हुए प्रतीत होते हैं। जबकि वामन अपने 'काव्यालंकार सूत्र वृत्ति में अलङ्कारों को काव्य के सौन्दर्य का पर्याय कहकर अलङ्कारयुक्त काव्य की ग्राह्यता तथा अलंकारहीन काव्य की अग्राह्यता का प्रतिपादन करते हैं।[1] इस प्रकार कुछ आचार्यों ने जहां अलंकार आदि को शोभाधायक तत्व कहा है जिससे काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि होती है तो वहीं कुछ ने इनकी व्युत्पत्ति काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने वाले साधन मात्र के रूप में की है अर्थात् अलंकृत शब्द और अर्थ से काव्य चमत्कारपूर्ण बनता है।

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति अर्थात् कथन के वैदग्ध्यपूर्ण ढंग को काव्य अर्थात् शब्द और अर्थ का अलंकार कहा है।[2]

आचार्य रुद्रट कथन के प्रकार विशेष को अलङ्कार का स्वरूप मानते हैं।[3] आचार्य विश्वनाथ काव्यालङ्कार के स्वरूप निर्धारण में मम्मट के निकट प्रतीत होते हैं इन्होंने अलंकारों को शब्द एवं अर्थ का अस्थिर शोभातिशायी धर्म एवं रसादि का उपकारक कहा है।[4] वाग्देवतावतार मम्मट ने अलङ्कारों का लक्षण प्रस्तुत करते हुए माना है कि जिस प्रकार हार आदि आभूषण कण्ठादि

१- काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ।
काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् । - का० सू० वृत्ति १११

२- उभावेतावलंकार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः ।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणितिरुच्यते ॥
- व० जी० १।१०

३- अभिधाविशेषप्रकार एवालङ्कार ।
- अलंकारसर्वस्व, पृ० ८

४- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥
- साहित्यदर्पण, पृ० १०।१

अङ्गों में उत्कर्षाधान के द्वारा शरीरी को भी उपकृत करते हैं उसी प्रकार शब्द एवं अर्थ के उत्कर्ष का प्रतिपादन करते हुए जो तत्व काव्य के प्राणभूत रसतत्व का उपकार करते हैं वे अनुप्रास उपमादि अलंकार कहे जाते हैं।[1] कुछ ऐसे भी प्रयोग कवियों द्वारा किये गये हैं जहां रस नहीं रहता इस प्रकार के प्रयोगों में अलंकार केवल शब्दों के सुश्रवत्व तथा बन्ध कौशलादि के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनके प्रयोग से अर्थों में भी मनोहारिता आ जाती है। कहीं-कहीं तो रस रहता है तब भी उसका उपकार अलंकारों से नहीं होता। ग्रामीण अलंकरण भला अत्यन्त सुकुमार नायिका के अङ्गों का अलंकरण कैसे कर सकते हैं। इस स्थिति में भी इनका प्रयोग उक्तिवैचित्र्य के लिए ही किया जाता है। अत: अलंकारों की शब्द एवं अर्थ में अस्थिर स्थिति होती है। ये कभी इनका उत्कर्ष करते हैं कभी नहीं। यही गुणों एवं अलंकारों में भेद का मूल कारण है। जिस प्रकार से शौर्य आदि धर्म आत्मा के उत्कर्ष की अभिव्यक्ति करते हैं उसी प्रकार गुण अङ्गी रस के उत्कर्ष की अभिव्यक्त करते हैं। इनकी स्थिति अव्यभिचरित होती है, ये रस के बिना नहीं रह सकते, रहने पर रस का उपकार अवश्य करते हैं,[2] जबकि अलंकारों की स्थिति स्थिर नहीं होती वे कहीं उपस्थित होकर भी रस का उपकार नहीं करते तथा कहीं रस के न होने पर भी उपस्थित रहते हैं। अत: गुणों से पृथक् माने जाते हैं।

इस प्रकार आचार्यों ने अलंकारों के स्वरूप की दृष्टि से विचार करते समय यह स्वीकार किया है कि अलंकारादि के प्रयोग से काव्यों में उत्कर्ष

१- उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय: ।

- का० प्र० पृ० ४६५

२- ये रसस्याङ्गिनो धर्मा: शौर्यादय इवात्मन:
उत्कर्षहेतवस्तेस्युरचलस्थितयो गुणा: ।।

- का० प्र० पृ० ४६२

(३) तीसरी स्थिति में रस के अभाव में भी उनकी सत्ता रहती है । अर्थात् केवल उक्ति वैचित्र्य मात्र ही अलंकार रहते हैं ।[१]

इसमें प्रथम प्रकार की स्थिति काव्य में सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि इसी में अलंकारों की अलंकारिकता है । काव्य के चारुत्व के हेतु अलंकार रस की परम्परया उपकारक हैं साक्षात् नहीं । अलंकार किसी भी स्थिति में काव्य का प्रधान तत्व नहीं, रसतत्व का अलंकरण करने वाला है । विद्याधर ने भी रस के उपकारक रूप में अलंकारों की स्थिति मानी है ।[२] साहित्यदर्पणकार ने अलंकार के औचित्य को मानते हुए अलंकारों को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म एवं रस का उपकारक तत्व माना है ।[३] इसी को अलंकारवादी आचार्यों ने भी माना है -

'अलंकाराणामुपकारकत्वाद् रसादीनां च प्राधान्येन उपस्कार्यत्वात् ।।'
- अ० सं०, पृष्ठ १०

अलंकार प्रयोग के औचित्य के विषय में ध्वनिकार का कथन है --

'रसाभिव्यक्ति और अलंकारों का विन्यास दोनों कवि के एक ही प्रयास से सिद्ध होने चाहिए । पृथक् प्रयत्न-साध्यता से अलंकार रस का बाधक होता है ।'[४]

१- यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिन: ।।
- का० प्र० ८

२- अलंकारास्तु हाराववत् - रसमुपकुर्वन्ति ।
- एकावली ५।१ पर वृत्ति ।

३- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।
- सा० दर्प० १०।१

४- रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध: शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य: सोऽलंकारो ध्वनौ मत: ।।
- ध्वन्यालोक २।१६

जा जाता है तथा वक्ता आदि के अभिप्रायों की सशक्त अभिव्यक्ति होती है ।

निष्कर्ष यह है कि अलंकार शब्द और अर्थ के ही आभूषण हैं प्रत्यक्षत: काव्य के वाच्यार्थ का उपकार करते हैं । अलंकार की उपादेयता तभी है कि उससे वर्ण्य वस्तु के रूप, गुणादि का उत्कर्ष हो तथा रस, भावादि के सहज सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो इसलिए रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है -- `भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है ।`

<u>अलंकारों का औचित्य -</u>

काव्यशास्त्र में ध्वनि की अवतारणा के साथ रस को उचित मान्यता मिली एवं आत्मतत्व के रूप में उसकी प्रतिष्ठा हुई । रस को प्रधान मानकर अलंकारों को गौण स्थान देते हुए ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं समर्थकों ने अलंकारों के औचित्य की व्याख्या अपने ढंग से की । इन आचार्यों ने बाह्य प्रसाधन, कटक, कुण्डल आदि के समान शब्दार्थ रूप काव्य शरीर के शोभाधायक-तत्व के रूप में अलंकारों को स्थान दिया किन्तु आचार्य मम्मट ने काव्य में अलंकारों की स्थिति तीन प्रकार से मानी है यथा --

(१) प्रथम प्रकार की स्थिति में अलंकार अंगभूत शब्द एवं अर्थ के अलंकरण के द्वारा अन्तत: आत्मतत्व रस का उपकार करते हैं ।[1]

(२) दूसरी स्थिति में विद्यमान होने पर भी रस का उपकार नहीं करते हैं ।[2]

१- ये वाच्यवाचकलक्षणाङ्गातिशयमुखेन मुख्यं रसं सम्भाविनमुपकुर्वन्ति ते कण्ठा-द्यङ्गानामुत्कर्षाधानद्वारेण शरीरिणोऽपि उपकारका हारादयवदा-लङ्काराः ।

- का० प्र०, पृष्ठ २८६

क्वचित्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति ।

- का० प्रकाश, पृष्ठ २८६

अन्त में कहा जा सकता है --

`अलंकार की छटा अविकसित भाषाओं का रूप है ।`

- रिमार्क्स आफ सिमलीज इन संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ ११)

अलंकारों का उद्भव एवं विकास -

काव्य अनुभूति का सौन्दर्य के साथ अटूट योग है । सौन्दर्य साधना कवि कर्म का अभिन्न रूप बन गयी । वैदिक ऋचाओं से लेकर आधुनिक लोक गीतों तक कवि अपनी अनुभूति को सुन्दरतम रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया । इन वैदिक मन्त्रों में ऋषियों ने सौन्दर्य साधना का अनायास प्रयोग किया और यही अलंकार का बीज रूप बनकर प्रस्फुटित हुआ ।

ऋग्वेद की ऋचाओं में अलंकारों का प्रयोग दृष्टिगत होता है । इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध नहीं है तथापि मूलभूत अलंकारों में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं । इसमें उपमा अलंकार प्रमुख रहा है । राजशेखर ने उपमा अलंकार के बारे में यहां तक कहा भी है --

`उपमा कविवंश की माता है ।`[1]

ऋचाओं में एक साथ चार उपमाएं दृष्टिगत होती हैं यथा --

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ।।[2]

इसके पश्चात् `निरुक्त` में अलंकारों का विवेचन शास्त्रीय ढंग से प्राप्य है । यास्क ने उपमा के अनेक भेद तथा गार्ग्य नामक वैयाकरण द्वारा

१- `उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ।`

- राजशेखर

२- ऋग्वेद १। १२४ । ७

रचित उपमा अलंकार के लक्षण का वर्णन भी किया है --

`उपमा अलंकार वहां होता है, जहां एक वस्तु दूसरी वस्तु से भिन्न होते हुए भी उसी के सदृश हो ।`[1]

उपमा अलंकार की परिभाषा के साथ-साथ उपमाद्योतक निपात-इव, यथा, न चित् तु और आ इत्यादि शब्दों का विवेचन भी है । इससे ज्ञात होता है कि यास्क के समय में अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन आरम्भ हो चुका था । इसके अनन्तर पाणिनि के समय में भी उपमा का शास्त्रीय विवेचन स्पष्ट है क्योंकि अष्टाध्यायी में उपमा, उपमान आदि अलंकारशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ था, यथा --

`उपमानानि सामान्यवचनैः ।`[2]

इसी के आधार पर पतञ्जलि ने भी पाणिनि के द्वारा प्रयुक्त `उपमान` पद की व्याख्या महाभाष्य में करते हुए लिखा है --

`मान उस वस्तु की संज्ञा है जो किसी अज्ञात वस्तु के निर्धारण के लिए प्रयुक्त की जाती है । उपमान मान के समान होता है । वह किसी वस्तु का अत्यन्त रूप से नहीं प्रत्युत सामान्य रूप से निर्देश है, जैसे - गौरिवगवयः ।`[3]

इस प्रकार अलंकारों के प्राप्यता के कारण अलंकारशास्त्र का इतिहास भरतमुनि के `नाट्यशास्त्र` से पहले `अग्निपुराण` में मिलता है । किन्तु साक्ष्य उपलब्ध न होने से भरतमुनि के `नाट्यशास्त्र` की व्याख्या की ओर अग्रसर होना पड़ता है ।

१- `उपमा यद् अतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यः `। - निरुक्त २।१३

२- `अष्टाध्यायी`, पाणिनि द्वारा रचित २।१।५५

३- `मानं हि नाम अनिर्ज्ञातार्थमुपादीयते अनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामीति तत्समीपे यद् नात्यन्ताय मिमीते तद् उपमानम् - गौरिवगवयः ।
- पाणिनि अष्टाध्यायी महाभाष्य २।१।५५

भरतमुनि का `नाट्यशास्त्र` अलंकारशास्त्र का आदि ग्रन्थ ही नहीं अपितु विश्वकोष है। `नाट्यशास्त्र` के १७ वें अध्याय में वाचिक अभिनय के प्रसंग में अलंकारों का निरूपण है। इसी प्रसंग में अलंकार की व्याख्या की गयी है।

भरत के पश्चात् भामह के मध्य एक लम्बा काल अलंकारशास्त्र के विवेचन से सर्वथा शून्य रहा। भामह का `काव्यालंकार` नामक ग्रन्थ ही अलंकारशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। भरत से स प्रेरणा प्राप्त कर भामह ने मुख्यतया अलंकारों का ही विवेचन किया। इनका मुख्य उद्देश्य अलंकारों की व्यवस्था तथा व्याख्या करना था। इसके अतिरिक्त काव्य, न्याय, शब्द-शुद्धि आदि विषयों पर भी अध्याय हैं।

इसके बाद वामन ने अपने ग्रन्थ में रीति के साथ अलंकार का वर्णन किया। दण्डी, उद्भट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि प्रमुख हैं। रुय्यक ने `अलंकार सर्वस्व` का प्रणयन किया। इन सभी आचार्यों ने प्रधान अथवा गौण रूप में अलंकारों का वर्णन किया है। विभिन्न आचार्यों द्वारा अलंकारों का विश्लेषण होने से अलंकारों में बहुत मतभेद हुए - यह मतभेद अलंकारों के स्वरूप, अलंकारों की संख्या के विषय में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

कालान्तर में ध्वनि को विषय बनाकर लिखा गया `ध्वन्यालोक` नामक ग्रन्थ में अलंकार को औचित्यपूर्ण अतिशयोक्ति के रूप में प्रतिस्थापित किया दण्डी ने स्वाभावोक्ति को आदि अलंकार माना और उपमा आदि अलंकार उनकी दृष्टि में वक्रोक्ति ही है यथा --

श्लेष: सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वाभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।[१]

१- दण्डी द्वारा रचित (काव्यादर्श)

इसी प्रकार अलंकारों की संख्या के विषय में दृष्टिगोचर होने वाला मतभेद कोई आश्चर्यपूर्ण नहीं क्योंकि उक्ति की विचित्रता ही अलंकार रूप में काव्य में परिणत होती है। पण्डितराज जगन्नाथ ने इस विचित्रता के बारे में कहा भी है --

'यह उक्ति विचित्रता की कोई इयत्ता नहीं है, अनन्त है।'[1]

इस प्रकार शब्द और अर्थ की ओर आकृष्ट शब्दार्थ धर्म वाला अलंकार काव्य में मुख्य तत्व माना जाने लगा। और तब अलंकार काव्यात्मक पद पर आसीन होने से अलंकारशास्त्र का पृथक् रूप से महत्व स्वीकार किया जाने लगा। इन अलंकारों का इतिहास जान लेने पर काव्यों में अलंकारों की उत्पत्ति का स्वत: आभास होने लगा। क्योंकि काव्यों में अलंकारशास्त्र का उदय होने से काव्य का साहित्यिक रूप अधिक दृढ़ हो गया।

<u>अलंकार के भेद --</u>

काव्य की अनुभूति तत्वत: और अव्यवहित ही होती है। सभी काव्य तत्व एक अखण्ड काव्य-सौन्दर्य के अन्तरंग में सहायक होते हैं। इन्हीं तत्वों में अलंकार-तत्व भी है जिसके भेद के विषय में आचार्यों में सदैव मतभेद रहा है।

अलंकार के मुख्यत: शब्दगततत्व और अर्थगततत्व को भारतीय पुराणों में आचार्यों ने इस तरह माना है --

'अर्थगत और शब्दगततत्व शिव और शक्ति की तरह परस्पर सम्पृक्त है।'[2]

१-- अनन्ताहि वाग्विकल्पास्तत्प्रभेदरूपा एव चालंकाराः' (?) — 'अनन्ताद् गमयन्त्यस्य नैव स्यैव विचित्रता'

'रसगंगाधर', 'पण्डितराज जगन्नाथ'।

२-- अर्थ: शम्भु: शिववाणी लिंग-पुराण

इसी आधार पर आचार्यों ने अलंकारों के भेद स्वीकार किये हैं। यास्क तथा भरत ने `अर्थानुरोधिन` अलंकार के भेद माने किन्तु इसके विपरीत जो वक्रोक्ति अतिशयोक्ति को अलंकार मानते हैं उन्होंने `प्रयोगानुरोधिन` अलंकार के भेद स्वीकार किये हैं। इस विधि वाले ने शब्द और अर्थ के आधार पर दो वर्गों में विभक्त किया है।

राजशेखर ने दो भेद स्वीकार करते हुए लिखा है --

`द्विधा अलंकार कवि: शब्दार्थ भेदेन।`[1] +

अग्निपुराण में कुछ इसी तरह का साक्ष्य प्राप्य है जिनके आधार पर दो भेद कहे गये हैं यथा --

`केचिदर्थस्य सौन्दर्यमपरे पदसौष्ठवम्।
वाचामलं क्रियां प्राहुस्तद् द्वयं नो मत मतम्।`[2]

इसी प्रकार वर्गीकरण का एक और संकेत दण्डी की परिभाषा से भी मिलता है। यथा --

`शब्दार्थालंक्रिया: चित्रमार्गा: सुकर दुष्करा:।`

मम्मट तथा रुय्यक ने अलंकारों के भेद के विषय में `अन्वयव्यतिरेक` तथा `आश्रयाश्रयिभाव` को मानकर अलंकारों के त्रिवर्गीकरण को काव्य में किया है, यथा --

(१) शब्दगत, (२) अर्थगत, (३) शब्दार्थगत।

इस प्रकार त्रिवर्ग में भेद होने का उदाहरण `अलंकार सर्वस्वम्`

१- राजशेखर की काव्यमीमांसा।

२- अग्निपुराण

में इस प्रकार है --

> 'एवमेतेशब्दार्थोभयालंकारा संक्षेपत: सूचिता: ।
> तत्र शब्दालंकारा: यमकादय: । अर्थालंकारा: उपमादय: ।
> उभयालंकारा: लटानुप्रासादय: ।'[1]

पण्डितराज जगन्नाथ की भी अलंकारों के भेद के विषय में यही धारणा रही । उनके कथनानुसार अलंकार व्यापक अर्थ का द्योतक है । संकुचित अर्थ का नहीं अर्थात् अलंकार काव्य चमत्कारोत्पादक सभी प्रकार के साधनों का वाचक है केवल अनुप्रास, उपमा आदि का नहीं । इसी को इस प्रकार व्यक्त किया है --

> 'तत्र त्रिविधम्, शब्दचित्रम्, अर्थ चित्रम्, उभयचित्रमिति ।'

अन्त में यह निष्कर्ष निकलता है कि जिन अलंकारवादी[2] आचार्यों ने अलंकार को शोभादायक तत्व माना, उन्होंने उसके केवल दो भेद किये क्योंकि अलंकार काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है, किन्तु दूसरे वर्ग के आचार्यों ने अलंकार को सौन्दर्य अभिवृद्धि का कारण माना, उन्होंने अलंकार के तीन भेद किये । उनके अनुसार शब्दगत अलंकार शब्दों की शोभा बढ़ाते हैं, अर्थगत अलंकार अर्थ की शोभा बढ़ाते हैं तथा शब्दार्थ अलंकार शब्द और अर्थ दोनों को ही चमत्कृत करते हैं । जिस कारण 'अलंक्रियते नेनिति' की व्याख्या होकर अलंकार के तीन भेद स्पष्ट हो गये । यह भेद निम्नलिखित हैं --

(१) शब्दालंकार --

शब्दालंकार में शब्द का चमत्कार प्रमुख रूप से रहता है । यह शब्द पर आश्रित है फलत: अपने आश्रयभूत शब्दों का पर्याय परिवर्तन सहन

१- 'अलंकार सर्वस्वम्' पृष्ठ २५६

२- रसगंगाधर : पण्डितराज जगन्नाथ, पृष्ठ १६

नहीं कर सकता है। अतः 'अन्वयव्यतिरेक' से सिद्ध होता है कि शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख देने से अलंकारत्व नष्ट हो जाता है।[1]

(२) अर्थालंकार --

अर्थ पर आश्रित होने के कारण यह अर्थालंकार कहा जाता है। अर्थ आश्रयभूत होने के कारण शब्द की जगह उसके वाचक शब्द रखने पर अलंकारत्व की हानि नहीं होती है, अर्थ का चमत्कार ही मुख्य रूप से रहता है।[2]

(३) शब्दार्थालंकार --

जिसे उभयगत अलंकार भी कहते हैं इसमें शब्द और अर्थ दोनों ही काव्य में चमत्कार के लिए प्रयुक्त होते हैं। यह अलंकार शब्द और अर्थ के आश्रित रहकर कटक कुण्डल आदि के समान शब्दार्थ शरीर के शोभाधायक हैं।[3]

निष्कर्ष यही निकलता है कि अलंकारों के भेदों के अनुसार अलंकारों की गणना काव्यशास्त्रों में की गई है। इन अलंकारों के भेद-उपभेद भी वर्णित हैं।

सूर्य के स्तोत्रों में प्रयुक्त अलंकार -

सूर्य की स्तुतियों में शब्दालंकार और अर्थालंकारों का सुष्ठु एवं स्वाभाविक विन्यास मिलता है। क्योंकि अलंकारों के प्रयोग में कवि ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया। यह स्तुतियां अत्यधिक अद्य च, अनावश्यक

१- अलंकाररीति और वक्रोक्ति - सत्यदेवचौधरी

२- अलंकारों का स्वरूप एवं विकास - डा० ओमप्रकाश

३- अंगाश्रितास्त्वलंकारा: मन्तव्या: कटकादिवत्।

- ध्वन्यालोक, २-६

अलंकारों के भार से आक्रान्त कामिनी की भांति मंद-मंथर गति से चलने वाली नहीं अपितु स्फुट चन्द्रतारिका विभावरी की भांति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयों के चित्त आकृष्ट कर लेती है। इन स्तुतियों में अनुप्रास सर्वत्र अप्रयास ही आ गये हैं। यमक में रसभंग की आशंका से क्वचित् ही यमक का उपयोग किया है और श्लेष के अधिक प्रयोग से क्लिष्टता आने की सम्भावना से दूर रखा है। इन स्तुतियों में अर्थों में चारुता का समावेश किया, सुन्दर उत्प्रेक्षाएं, दृष्टान्त, मधुर उपमाएं आदि के माध्यम से काव्यों एवं स्तुतियों में रुचिरता से विभूषित किया। अलंकारों में स्वाभाविकता, रसानुकूलता है।

इस प्रकार इन स्तुतियों में स्वाभाविक रूप से अनुप्रास यमकादि शब्दालंकारों एवं उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिङ्ग, उल्लेख, दृष्टान्त आदि अर्थालंकारों के समुचित सन्निवेश से भाषा को संवारने का कवियों ने प्रयास किया है तथा अपने भावों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। कुछ प्रमुख आलङ्कारिक स्थलों का इस शोधप्रबन्ध में अन्वेषण कर विश्लेषण करने का जो प्रयास किया जा रहा है वह इस प्रकार है :—

अनुप्रास -

विचित्र परम्परा में लिखी गई कविताओं में अनुप्रास अलंकार की बहुलता अनुपद दृष्टिगत होती है। आचार्य मम्मट ने अनुप्रास अलंकार को लक्षित करते हुए लिखा है — "वर्णसाम्यमनुप्रासः"[1] इसका अभिप्राय है वर्णों की समानता अनुप्रास है। स्वरों के भिन्न होने पर भी व्यञ्जनसादृश्य वर्णसाम्य है।

अनुप्रास शब्द की व्युत्पत्ति से लभ्य अर्थ की व्याख्या करते हुए आचार्य मम्मट का मन्तव्य है कि अनति व्यवधानपूर्वक चमत्कृति का आधान करने वाली प्रतिपाद्य रस विशेष के अभिव्यञ्जक वर्णों की आवृत्ति अनुप्रास है।

1- काव्यप्रकाश: सूत्र संख्या १०४

अलंकारादि का प्रयोग प्रायश: रस की परिपुष्टि के लिए होता है किन्तु कुछ कविताओं में रस के अभाव में अलंकार द्वारा चमत्कार का आधान किया जाता है। चमत्कार ही तो काव्यत्व है, ऐसे प्रकृतरसप्रतिकूल काव्य में जो अनुप्रास का प्रयोग किया जाता है वह लाक्षणिक है।

सूर्य की स्तुतिमूलक, विचित्र परम्परा में लिखित सुधालहरी में रस, भाव, रसाभास, भावाभासादि के अनुकूल अनुप्रास अलंकार का प्रचुर प्रयोग किया गया है। यथा --

जीवातुर्जाड्यजालाधिजनितरुजां तप्तजाम्बूनदाभं,
जङ्घालं जाङ्गिकानां जलधिजठरतो जृम्भमाणं जगत्याम्।
जीवाधानं जनानां जलजमधुलिहां जीवजैवातृकादेः -
ज्योतिर्जाज्वल्यमानं जलजहितकृतो जायतां वो जयाय ॥
- सु० ल० १८

कमलों के हित सम्पादक सूर्य की जाड्यजालादिक व्याधियों वाले व्यक्तियों के लिए जीवनमूल दौड़ने वालों में बारहसिंहा हिरण स्वरूप जीवों के लिए कान्तियों की जनक, लोगों में प्राणों का संचार करने वाली देदीप्यमान ज्योति आप सबके लिये मंगलकारी हो।

आचार्य मम्मट वर्णानुप्रास के प्रथमत: दो भेद करते हैं --
१- छेकानुप्रास तथा २- वृत्त्यनुप्रास।

छेकानुप्रास वह है जहां अनेक व्यञ्जनों का एक बार सादृश्य हो, जबकि एक ही व्यञ्जन की अनेधा आवृत्ति वृत्त्यनुप्रास है। उपर्युक्त उदाहरण में मात्र ज व्यञ्जन की अनेक बार आवृत्ति हुई है अत: यहां वृत्त्यनुप्रास अलंकार प्रयुक्त है। ज माधुर्य व्यञ्जक वर्ण है अत: उपनागरिका वृत्ति है। क्योंकि

१- "सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः एकस्याप्यसकृत् परः"। - का० प्र० सू० १०६-७

माधुर्य को अभिव्यक्त करने वाले वर्णों से युक्त वृत्ति उपनागरिका कहलाती है।[1]

> गीर्वाणग्रामणीभिर्गगनतलगतैर्गीभिरुद्गीथगाभि-
> र्गन्धर्वैर्वापि गीता गुणगणगरिमोद्गारिगाथा-सहस्रैः।
> गाहं गाहं गृहालीरगतिकगदिनां गन्धयन्तो गदार्तिः
> ग्लानिग्रामं ग्रसन्तां गहरुविगुरवो गोपतेर्गो विलासाः॥[2]

उद्गीथों का गायन करने वाली प्रधान ग्रामदेवियों की वाणी द्वारा तथा आकाशमण्डल में संचरण कर रहे गन्धर्वों के द्वारा भगवान् भास्कर के अनेक गुणगरिमाओं को अभिव्यक्त करने वाली हजारों गाथाओं के माध्यम से गाये गये, प्रत्येक घरों में खोज खोजकर असाध्य रोगियों की रोगव्यथा को परिसमाप्त करते हुए गो अर्थात् सूर्य के कर विलास (जो कि गृहरुविगुरु हैं) समस्त प्राणियों के व्यथासमूह को नष्ट करें।

इस उदाहरण में भी स्वर के विसदृश होने पर भी ग् व्यञ्जन की अनेक बार आवृत्ति हुई है अतः यहां वर्णानुप्रास का वृत्यनुप्रास भेद स्पष्ट दृष्टिगत हो रहा है। इस उदाहरण में 'गाहम्' शब्द की यद्यपि आवृत्ति हुई है अतः 'शब्दानुप्रास' का भेद लाटानुप्रास भी माना जा सकता था किन्तु मम्मट के अनुसार इसके लिए शर्त है कि तुल्यार्थक = एकार्थक शब्दों का या एक शब्द का सादृश्य हो किन्तु इन शब्दों की आवृत्ति में तात्पर्यभेद आवश्यक है।[3] तात्पर्य भेद का अर्थ है अन्वयभेद। एक यदि विधेयरूप में प्रयुक्त हो तो दूसरा उद्देश्य रूप में। अन्य कर्तृकर्मेत्यादि रूपों से भी अन्वयभेद प्रयुक्त हो सकता है। यहां

१- माधुर्यव्यञ्जकवर्णैरुपनागरिकोच्यते।

२- सुधालहरी - १७

३- शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः।

- का० प्र० सू० ११२

'गाढं' शब्द आधिक्य प्रतिपादन के लिए आवृत्त है, किसी प्रकार का तात्पर्य-भेद नहीं है अत: लाटानुप्रास की शङ्का नहीं करनी चाहिए । इस प्रसङ्ग में एक तथ्य और अवधेय है कि वर्णानुप्रास के भेदों में निरर्थक व्यञ्जनों की आवृत्ति होती है जबकि शब्दानुप्रास के भेदों में सार्थक शब्दों की ही आवृत्ति पर स्वरूप-निर्धारण किया जाता है ।

ब्रह्माण्डं मण्डयन्तो वियति वलयिनो मण्डलैरण्डजानां
पाखण्डान् दण्डयन्तो दनुतनुजनुषां शोभितारवण्डलाशा: ।
ये चण्डान् पौण्डरीकान् विदलयितुमथोद्दण्डपाण्डित्यभाज:
स्तै चण्डांशोरचण्डास्त्वरितमिह करा: पाण्डुतां खण्डयन्तु ।
- सू० श० -२६

आकाशमण्डल में पक्षियों के समूहों द्वारा वलययुक्त, ब्रह्माण्ड को सुशोभित करती हुई पाखण्डियों को दण्डित करती हुई, प्राची दिशा को प्रकाशित करती हुई तथा जो चण्ड पुण्डरीक पुष्पों के विकास में अतीव निपुण है वे प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य की अचण्ड अर्थात् कोमल किरणें शीघ्र ही अन्धकार को नष्ट कर दें ।

इस उदाहरण में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है क्योंकि णकारडकारात्मक अनेकव्यञ्जन 'ण्ड' की अनेक बार आवृत्ति हुई है । आचार्य मम्मट का इस अभिप्राय का सूत्र है -- "एकस्याप्यसकृत् पर:" अर्थात् एक व्यञ्जन की यदि अनेक बार आवृत्ति हो तो वृत्त्यनुप्रास अलंकार होता है तथा 'अपि' शब्द के प्रयोग करने के कारण अनेक व्यञ्जनों की भी अनेकधा आवृत्ति होने पर वृत्त्यनुप्रास अलंकार समझना चाहिए । किन्तु जहां अनेक व्यञ्जनों की केवल एकबार आवृत्ति होगी वह छेकानुप्रास का उदाहरण होगा । यथा --

[illegible]कोणाल्ये दिवाकर । तल्पे ललित है,
हरिर्ध्वान्तोन्मादा[illegible]मन्दं पल्लव: ।

निशान्ते शान्तेऽब्जे करनखरघातोच्छलदसृक्-
छटाछङ्गाच्छङ्गच्छुरितमुषसि स्फूर्जतितराम् ।।
- सूर्यारुण्यशतक ६४

हे सूर्य ! रात्रि की समाप्ति पर कमलों के बन्द रहते उषःकाल में जो तुम्हारी लालिमा है वह अन्धकाररूपी मद वाले हाथी-समूह का दलन करते हुए तुम्हारे किरणरूपी नाखूनों के आघात से उछलते हुए खून के छींटे पड़ने से मानों वह अत्यधिक सुशोभित हो रही है ।

इस उदाहरण में अनेक व्यञ्जन तद् शान्ते एवं `ङ्ग` की केवल एकबार आवृत्ति हुई है अतः यह वर्णानुप्रास के छेकानुप्रास भेद का समीचीन उदाहरण है ।

स्तोत्र साहित्य में शब्दों की चारुता पर विशेष ध्यान दिया जाता है । इसका प्रधान कारण यह है कि विभिन्न शब्दों में एक विलक्षण जादुई शक्ति होती है इस प्रकार के शब्दों के समुचित प्रयोग से देव विशेष की प्रसन्नता पर अपनी अभीष्टों की सिद्धि भी होती है । आचार्य मम्मट ने तभी तो काव्यनिर्माण के प्रयोजनों का परिगणन करते समय "शिवेतरक्षतये" कहा है, अर्थात् काव्यनिर्माण से शिव से इतर अकल्याण आदि का विनाश होता है । वस्तुतः यह प्रसिद्धि है कि मयूर कवि का असाध्य कुष्ठ रोग "सूर्यशतक" के निर्माण एवं पारायण करने से नष्ट हो गया था ।

शब्दों के चमत्कारिक प्रयोग में विभिन्न शब्दालंकार अनुपद प्रयुक्त होते हैं तथा उनमें स्वाभाविकता भी रहती है, वे कथमपि चित्र-काव्य का रूप नहीं धारण करते, न ही दुरूह होते हैं ।

सूर्यशतक का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है —

निःशेषाशापूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्तं नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ।

अत्यन्तं यानभिज्ञा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तुं
ब्रध्नस्येदा रुचिर्वो रुचिरिव रुचितस्याप्तये वस्तुनोऽस्तु ।
- सू० श० २४

सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाश से परिपूर्ण करने वाली अतएव महनीय गुणों के द्वारा श्लाघनीय स्वरूपवाली, दिन की प्रारम्भ वेला में तो उन्नत रहती ही है दिवसावसानकाल में भी समुन्नत रहने वाली तथा न एक स्थान में अन्धकार के साथ कभी भी न निवास करने वाली अर्थात् अपने निवास स्थल पर अन्धकार को परिसमाप्त कर देने वाली भगवान् सूर्य की देदीप्त कान्ति जो कि अभिलाषा के समान है समस्त प्राणियों को अभीष्ट वस्तुएं प्रदान करें ।

इस उदाहरण में `न`, `द`, `स्तु` आदि व्यञ्जनों की आवृत्ति से वर्णानुप्रास तो है ही रुचि शब्द की आवृत्ति होने से यह एक पदगत लाटानुप्रास का सुसंगत उदाहरण है । इव शब्द के साथ प्रयुक्त रुचि शब्द एवं रुचितस्य में प्रयुक्त रुचि शब्द समानार्थक है । दोनों का अर्थ अभिलाषा है किन्तु प्रथम रुचि शब्द उपमेय अर्थ में प्रयुक्त है तो दूसरा व्यक्तियों के अभिलाषा के अर्थ में ।

आदित्यस्तोत्र के भी अनुप्रासमूलक उदाहरणों की व्याख्या प्रसङ्गानुकूल है । यथा --

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः ।
आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ।।

नमोनमः सर्ववरप्रदाय नमोनमः सर्वसुखप्रदाय ।
नमोनमः सर्वधनप्रदाय नमोनमः सर्वमतिप्रदाय ।।
- आदित्यस्तोत्रम्

ईश्वर सूर्य तुम देवों में आदि देवता हो, तुम ऐश्वर्य हो, तुम

प्राणियों के आदि निर्माता हो, देवताओं के भी देवता हो तथा दिन करने वाले हो ।

सम्पूर्ण वरों को, समस्त सुखों को, सम्पूर्ण सम्पत्तियों को तथा समस्त विवेक मति को प्रदान करने वाले सूर्य तुम्हें बहुश: प्रणाम करता हूं ।

प्रथम छन्द में देव शब्द की तथा द्वितीय छन्द में नमोनम: एवं प्रदाय शब्द की अनेकधा आवृत्ति होने के कारण यह लाटानुप्रास अलंकार का उदाहरण है । यहां अनुप्रास के प्रयोग से भक्तिमूलक भाव की पुष्टि हो रही है ।

बुद्धो बुद्धासनो बुद्धिर्बुद्धात्मा बुद्धिवर्धन:
बृहद्भानुर्बृहद्भासो बृहद्धामा बृहस्पति: ।

इसका अभिप्राय है सूर्य बुद्धस्वरूप है, बुद्धासन है, बुद्धिस्वरूप हैं, बुद्धात्मा एवं बुद्धि की वृद्धि करने वाले हैं । वे बृहद् भानु हैं विशालकान्ति एवं अत्यधिक तेजस्वी एवं बृहस्पति हैं ।

इस स्तुति में बुद्ध शब्द की बुद्धि शब्द की एवं बृहद् शब्द की आवृत्तियां हुई हैं । ये तीनों समानानुपूर्वीक एवं एकार्थक हैं । इनकी आवृत्ति का तात्पर्य भिन्न है ।

आचार्य मम्मट लाटानुप्रास के पांच भेद मानते हैं --

१- अनेक पदों की आवृत्ति या साम्य ।

२- एक पद की आवृत्ति ।

३- नाम अर्थात् प्रातिपदिक की एक ही समास में साम्य ।

४- नाम की ही भिन्न-भिन्न समासों में साम्य ।

५- नाम की ही समास में तथा बिना समास अर्थात् स्वतन्त्र प्रयोग में आवृत्ति होने से लाटानुप्रास पांच प्रकार का - होता

है ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण का सूक्ष्म विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वृद्धि एवं वृद्ध शब्द समस्त एवं असमस्त (स्वतन्त्र) रूप में आवृत्त हैं इसलिए यहां लाटानुप्रास का समासासमासगत भेद प्रयुक्त है । तथा च बृहद् शब्द विभिन्न शब्दों के साथ समस्त रूप में ही प्रयुक्त है अत: लाटानुप्रास के विभिन्नसमासगत भेद का भी यही उदाहरण है ।

सूर्यारिण्यशतक में म् व्यञ्जन की अनेकधा आवृत्ति का उदाहरण द्रष्टव्य है --

मक्मीति मञ्जन । भगवन् । भासां निधे । भानी ।
भावाय नमी विभूषणं । भूयौ भूतिं गिरां विभवै ।।

एकमात्र म् व्यञ्जन की अनेकबार आवृत्ति होने के कारण वृत्त्यनुप्रास अलंकार का यह उदाहरण है ।

सुधालहरी के निम्नलिखित उदाहरण में पण्डितराज का अनुप्रास-प्रयोग द्रष्टव्य है --

स्वापं स्वापाकुलानां मदमव मदिनामन्धकारं त्रिलोक्या:
पापं पापाविलानां सपदि परिहरन्नागतो वासवाशाम् ।
नित्यप्रस्थानलीलाकुपितकमलिनी नर्मनिर्माणकर्म
विश्वाविश्रान्ता कर्मा गगनमणिरसौ पातु शर्माणि वश्च।
- सु० ल० १२

१- पदानां स: पदस्यापि वृत्तावन्यत्र तत्र वा ।
नाम्न: स वृत्त्यवृत्त्योश्च तदेवं पञ्चधा मत: ।।
- का० प्र० सू० ११३-११६

निद्रायुक्त व्यक्तियों की निद्रा को रोगियों के रोग को पापियों के पाप को तथा समस्त त्रिलोक के अन्धकार को सद्य: दूर करते हुए पूर्व दिशा में उदित हुआ प्रतिदिन प्रस्थान करने के कारण कुछ कमलनियों के नर्म अर्थात् विलास को सम्पन्न करने वाला समस्त विश्व को विभिन्न कष्टों से बचाने वाला, यह आकाशमणि सूर्य अविरत प्राणियों के कल्याण की रक्षा करे ।

इस कविता में एकार्थक तथा समानानुपूर्वीक स्वाप एवं पाप शब्द भिन्न तात्पर्य में आवृत्त हैं अत: यह लाटानुप्रास का उदाहरण है । उत्तरार्ध में `मा` व्यञ्जनों की अनेकधा आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास भी है ।

यमक

यमक अलंकार के लक्षण एवं भेदोपभेदों के विषय में अलंकारवादी आचार्य प्राय: एकमत हैं । आचार्य मम्मट ने यमक का लक्षण करते हुए लिखा है कि -- `अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुन:श्रुति:,यमकम्` । इसका तात्पर्य है जब अर्थ हो तो एक क्रम से प्रयुक्त असमानार्थक अनेक वर्णों की (कम से कम दो वर्णों की) आवृत्ति यमक अलंकार है । लाटानुप्रास से यमक का भेदक यही है कि लाटानुप्रास में एकार्थक ही शब्दों की आवृत्ति अपेक्षित होती है केवल प्रयोग में तात्पर्य भेद होना चाहिए जबकि यमक वहीं होगा जहां भिन्नार्थक समानानुपूर्वीक शब्दों की आवृत्ति होगी । कुछ ऐसे उदाहरण हैं जहां एक शब्द यद्यपि सार्थक है किन्तु वही द्वितीय आवृत्ति में निरर्थक दृष्टिगत होता है । उदाहरण -- समरसमरसो यम् । प्रथम समर संग्रामार्थक है द्वितीय समर निरर्थक । कुछ ऐसे भी हैं जहां दोनों आवृत्तियां निरर्थक हैं । उदाहरण -- `अमदे मतेवहि पार्थिव ( रघु० नवां सर्ग श्लो० ४ ) में `मदे` `मदे` दोनों आवृत्तियां निरर्थक हैं तब `भिन्नार्थानाम्` विशेषण के कारण इन यमक के प्रसिद्ध उदाहरणों में लक्षण अव्याप्त न हो जाय इस शङ्का के निवारणार्थ आचार्य मम्मट ने लक्षण में `अर्थे सति` इस विशेषण को समाविष्ट किया है । इस विशेषण के प्रयोग से स्पष्ट है कि शब्द की

भिन्नार्थकता का विचार उसी स्थल पर होगा जहां सार्थक आवृत्तियां होंगी। यह यमक पादावृत्ति पादभागावृत्ति आदि से अनन्त भेदों से भिन्न है। कहीं प्रथम पाद की श्लोक के द्वितीय पाद में, द्वितीय की तृतीय पाद में तृतीय की चतुर्थ पाद में आवृत्ति होती है। कहीं पर एक पाद के कुछ अंश की क्रमिक आवृत्ति होती है कहीं अनियत स्थान में। इस प्रकार प्रभूततम भेदों से समन्वित होने के कारण इस यमक अलंकार को काव्य के अन्तर्गत ग्रन्थिभूत कहा गया है। जिस प्रकार `ईख` में मध्य में ग्रन्थि होती है तथा उससे रस चूसने में विघ्न पड़ता है उसी प्रकार काव्य में ग्रन्थिभूत यमक के प्रयोग से अर्थ के अनुसन्धान में विलम्ब होता है एवं रसानुभूति में व्यवधान। फिर भी काव्यकारों ने यमक अलंकार का अपने अपने काव्यों में व्यापक समावेश किया है, विशेषकर विचित्र परम्परा के कवि भारवि आदि।

पण्डितराज जगन्नाथ की सुधालहरी के निम्नलिखित उदाहरण में यमक अलंकार का प्रयोग इस रूप में किया गया है --

> वृन्दैर्वृन्दारकाणां दनुजतनुभृतां रक्षसां च क्षपान्ते,
> गन्धर्वाणां धुरीणैः प्रणतमहिवरैः किन्नरैर्यन्नरैश्च।
> पित्र्यां दृश्यां निबध्यां वितरदविरतं दीप्तिभिर्दीपयद् द्या-
> मामधादाधामविद्यामिवमुदयगिरेरुत्पतत्सूर्य बिम्बम् ॥
>
> - सु० ल० २०

देवताओं और शरीरधारी दानवों तथा राक्षसों के समूहों द्वारा, प्रमुख गन्धर्वों, प्रधान नागों, किन्नरों एवं मानवों द्वारा रात्रि की समाप्ति पर जिसे प्रणाम किया गया है, आत्मीय जनों के लिए समीचीन विद्या को निरन्तर वितरित करता हुआ भूमण्डल को अपनी कान्तियों से प्रदीप्त करता हुआ उदयाचल से उदित होता हुआ सूर्य का बिम्ब।

इस उदाहरण में श्लोक के द्वितीय पाद के अन्त में "नरैः" वर्णों की आवृत्ति हुई है। प्रथम नरैः शब्द किं के साथ प्रयुक्त होने से किन्नर नामक

एक विशेष जाति का वाचक है जबकि द्वितीया वृत्ति में `नरै:` मानव समुदाय के अर्थ में प्रयुक्त है अत: भिन्नार्थक समानुपूर्वीक `नरै:` की आवृत्ति के कारण यमक अलङ्कार है। इसी प्रकार इसी उदाहरण में प्रथम वृन्द शब्द समूह का वाचक है किन्तु वृन्दारक में आवृत्त वृन्द वर्ण अकेले कोई अर्थ नहीं रखता अत: इसके निरर्थक होने से भिन्नार्थकता की शर्त नहीं लगती तथा च यहां सुस्पष्ट यमक अलंकार है।

या सूते सर्वभूतेष्वनुदिनमुदये चेतनाया विलासान्
यान्ती सायं निकायं जलनिधि जठरं संचरी हर्ति सद्य:।
अत्यर्थं वर्धयन्ती मणिगणसुषमासम्पदं रत्नसानो:
सा नो भानो: प्रभा नो नयनसरणितो दूरतो जातु यातु ।।

- सू० श० ६

जो उदयवेला में प्रतिदिन समस्त प्राणियों में चेतना का संचार करती है,सायंकाल अपने निवास को जाती हुई सद्य जलनिधि समुद्र की जठराग्नि को शान्त करती है तथा रत्नसानु सुमेरु पर्वत की मणिसमूहों की सुषमा-सम्पत्ति को अत्यधिक बढ़ाने वाली है वह सूर्य की प्रभा हमारे नेत्र पथ से कभी दूर न जाय।

इस कविता में `सानो` की जो कि शिखर का वाचक है की आवृत्ति हुई द्वितीयावृत्त सानो का अर्थ है `वह हमारी` अत: दोनों सार्थक आवृत्त शब्द भिन्नार्थक हैं इसलिए यमक अलंकार है। इसी उदाहरण में `भानो:` शब्द सूर्य का वाचक है द्वितीयवृत्त `भानो` निरर्थक है अत: यहां भी अनियत स्थानावृत्ति यमक है।

यमक का तृतीय उदाहरण --

विभ्रान्तिं भ्राजमानां सुखमतिशयिनं कामिनां स्थायिलीला-
मम्भोजानां प्रबोधं कुसुमपरिषदां अरिकर्कीर्षन् क्याई:

नियास्यन्त: समुद्रं सकलमपि नृणां भारमाधाय वह्ना -
वह्नायाह्नामधीश: स भवतु भवतां भूयसे मङ्गलाय ।।

ब्राह्मणों के लिये विश्राम, कामियों के लिए अत्यधिक सुख,कमलों की लीला का स्थगन एवं कुसुमसमूहों के विकास को करता हुआ दयार्द्र जो सम्पूर्ण मानवों का भार वह्नि में स्थापित कर समुद्र में प्रविष्ट हो रहा है वह दिवसाधीश भास्कर समस्त प्राणियों के अत्यधिक कल्याण का सम्पादन करे ।

इस उदाहरण में तृतीय पाद के अन्त में आए हुए वह्ना की आवृत्ति चतुर्थ पाद के आदि में हुई है दोनों निरर्थक है अत: यमक अलंकार है ।

श्लेष :-

अर्थ भेद के कारण परस्पर भिन्न शब्द एक ही उच्चारण (आनुपूर्वी) के विषय बनकर जहां परस्पर श्लिष्ट होते हैं अर्थात् अपने भिन्न स्वरूप को छिपाकर एकरूप प्रतीत होते हैं वहां श्लेष नामक अलंकार होता है । वर्णादि पद आदि भेद से वह आठ प्रकार का होता है । इस श्लेष के दो भेद होते हैं शब्द श्लेष एवं अर्थ श्लेष । श्लेष की शब्दनिष्ठता या अर्थनिष्ठता का निर्धारण शब्द के परिवृत्तिसहत्व या परिवृत्त्यसहत्व के द्वारा होता है । जहां शब्द के परिवर्तन कर देने पर अर्थ पर्यायवाची रख देने पर अर्थ सङ्गत न हो तो वह 'शब्दश्लेष' का उदाहरण होगा,किन्तु यदि शब्द के स्थान पर उसके पर्याय रख देने पर भी अर्थ लग जाय तो परिवृत्ति सहत्व में अर्थश्लेष होगा ।

१- वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृश: ।
श्लिष्यन्ति शब्दा: श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ।।
- का० प्र० सूत्र ११७

शब्द श्लेष का सुधालहरी में उदाहरण द्रष्टव्य है --

कीलालै: कुड्.कुमानां निखिलमपि जगज्जालमेतन्निषिक्तम् ।
मुक्ता रम्बोन्मत्तभृङ्.गा विदलितकमलकोशकारागृहेभ्य: ।
उत्सृष्टं गोसहस्रं बहलकलकल: श्रूयते च द्विजानां
भाग्यैर्वृन्दारकाणां हरिद्यहरिता सूयते पुत्ररत्नम् ।।

- सु० ल० ८

सूर्यरश्मियों से हरित पूर्व दिशा (कोई स्त्री) देवताओं के भाग्य से सूर्य (पुत्र) को उत्पन्नकर रही है। तदुपलक्षण में सम्पूर्ण संसार में कुड्.कुमों के केसर बिखेर दिये गये हैं (कुड्.कुमों का लेप घरों में लगा दिया गया है) खिले हुए कमल रूपी कारागारों से उन्मत्त भौंरे छोड़ दिये गये हैं (विशिष्ट व्यक्ति के जन्म में कैदी छोड़ दिये जाते हैं) अनेक किरणें छोड़ दी गयी हैं, (पुत्रोत्पत्ति पर गायें उन्मुक्त विचरण के लिए छोड़ी जाती हैं) तथा ब्राह्मणों की पूजा-ध्वनि सुनायी पड़ रही है (पुत्र प्रसव पर शङ्.खादि की ध्वनि विप्रों द्वारा की जाती है)। इस प्रकार इस उदाहरण में श्लिष्ट विशेषण कुड्.कुमकीलालों का निषेचन, कमलकोशकारगृहों से उन्मत्तों का विसर्जन, गौ सहस्रों की उत्सृष्टि तथा ब्राह्मणों की बहलध्वनि आदि श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा श्लेष अभिव्यक्त हो रहा है। `गोसहस्रं` का गो शब्द पर्यायपरिवर्तन नहीं सहन कर रहा है अत: शब्द श्लेष है। गो का एक अर्थ है किरण तथा दूसरा अर्थ है गायें।

उपमा -

उपमा की काव्योपयोगी रूप में प्रथम व्याख्या आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होती है। तदनन्तर यह अलङ्.कार कई काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रधानरूप में व्याख्यात हुआ। आचार्य महिम जहाँ उपमा को `सर्वेष्व-लंकारेषु बीजिकायते` कहकर समस्त अलंकारों में प्राणभूत मानते हैं वहीं

अप्पयदीक्षित 'उपमेव शैलूषी' कहकर नर्तकी जिस प्रकार नृत्य करती हुई सर्वत्र दिखाई देती है उसी प्रकार उपमा की सार्वत्रिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं। अलंकारसर्वस्वकार रुय्यक भी अर्थालङ्कारों में उपमा को मूलतत्व मानते हैं।

आचार्य भरत ने उपमा का लक्षण माना है कि काव्यबन्धों में जहां सादृश्य के आधार पर किसी वस्तु से किसी अन्य वस्तु की तुलना प्रतिपादित की जाय वह उपमा अलंकार का स्थल माना जायेगा। यह उपमा वर्ण, आकृति तथा गुण के सादृश्य के आधार पर होती है।[1] भरत का यही उपमा लक्षण परवर्ती काव्यशास्त्रियों में यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ मान्य रहा। जहां भामह विश्वनाथ आदि ने लक्षण में सादृश्य के स्थान पर साम्य शब्द का प्रयोग किया वहीं दण्डी ने सादृश्य का ही, जबकि उद्भट तथा मम्मट आदि ने साधर्म्य शब्द का प्रयोग किया है। सादृश्य एवं साम्य तो पर्याय वाचक शब्द हैं किन्तु साधर्म्य शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट अभिप्राय रखता है। वस्तुत: उपमा का पर्यवसित लक्षण होता है -- उपमान एवं उपमेय के साथ सादृश्यप्रयोजक साधारण धर्म का सम्बन्ध उपमा है।[2] यहां पर सादृश्य तथा साधर्म्य का भेद स्पष्ट कर दिया गया है। साधर्म्य को सादृश्य से पृथक् मानने का आधार यह है कि सम्बन्ध में एक प्रतियोगी तथा एक अनुयोगी अवश्य होता है जैसे - राज्ञ: पुरुष: में जो 'स्वस्वामिभाव' सम्बन्ध है उसका राजा प्रतियोगी तथा पुरुष अनुयोगी होता है। साधर्म्य भी उसी प्रकार का एक सम्बन्ध ही है। इस

१- यत्किञ्चित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते ।
उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृति समाश्रया ।।

- ना० शा० १६।४१

२- उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणयो: साधर्म्यं
भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध: उपमा ।।

- का० प्र०, पृ० ५५४

साधर्म्य नामक सम्बन्ध का प्रतियोगी है - 'साधारण धर्म' तथा अनुयोगी है --'उपमान एवं उपमेय दोनों ही, जबकि सादृश्य नामक सम्बन्ध का प्रतियोगी उपमान तथा अनुयोगी उपमेय होता है । यही दोनों के भेद का मूल कारण है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सादृश्य का प्रयोग उपमान तथा उपमेय में विद्यमान साधारण धर्म की अपेक्षा से होता है अर्थात् साधर्म्य उपमा का प्रयोजक है । इससे यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी आचार्यों द्वारा प्रस्तुत उपमा के लक्षणों में उपमा अलंकार के प्रयोजक -- १- उपमेय, २- उपमान, ३- साधारण धर्म तथा ४- साधारण धर्म के वाचक शब्द इन चार तत्वों का प्रयोग अवश्य मिलता है ।

आचार्य भरत से प्रारम्भ होकर परवर्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों ने उपमा का लक्षण प्रतिपादित करते हुए उसके अनेक भेदों का भी प्रतिपादन किया है । व्याकरण के नियमों के आधार पर उपमा के भेद प्रतिपादित करने के कारण भेदों की संख्या २५ को भी पार कर गयी । प्रथमत: उपमा के दो भेद हैं । १- पूर्णा, २- लुप्ता । समस्त उपमा प्रयोजकों (उपमान, उपमेय तथा साधर्म्यवाचक शब्द) का जहां उपादान किया गया रहता है वहां पूर्णा उपमा होती है तथा जहां एक दो या तीन उपमा प्रयोजकों का लोप (अप्रयोग) हुआ रहता है वहां लुप्ता उपमा होती है । इन पूर्णा एवं लुप्ता उपमाओं के भी अनेक भेद विश्लेषित किए गये हैं । अधिक भेद-प्रभेद हो जाने के कारण इसमें आचार्यों ने अरुचि भी दिखायी है । भेद-प्रभेदविवेचन व्याकरण-व्युत्पत्ति का प्रदर्शन मात्र है इसमें कोई चमत्कार नहीं है अत: अलंकारशास्त्र में इसकी कोई उपादेयता नहीं है । फिर भी काव्यशास्त्री आचार्यों ने अनेक भेदोपभेदों का विश्लेषण किया है इसी दृष्टि से यथासम्भव स्तोत्र साहित्य में प्रयुक्त उपमा स्थलों के विश्लेषण का प्रयास किया जा रहा है ।

जानकी महापात्र-विरचित सूर्यालम्बनाष्टक के प्रथम श्लोक में पूर्णा उपमा प्रयुक्त है । यथा --

समायातुं प्रातर्विदितमसौ वासरमणे:
पुरो लक्ष्यं बिम्बं रुचिरमिव कुम्भं गणपते: ।
लसत्सिन्दूराच्छच्छविमनुपमं किञ्चिदपि तन्
नमाम: प्रोद्दामप्रचुरतरधाम क्षिति कृते ।।

इसका अभिप्राय है - प्रात:काल उदित होते हुए वासरमणि सूर्य के सामने दृश्यमान अकथनीय उत्कृष्ट एवं देदीप्यमान ऐसे बिम्ब को समस्त प्राणियों के मंगल के लिए प्रणाम करते हैं जो सिन्दूर से सुशोभित निर्मल छवि वाले गणेश जी के मस्तक के समान है।

इस उदाहरण में `गणपते: लसत्सिन्दूराच्छच्छविं रुचिरं कुम्भम्` यह उपमान है तथा वासरमणि सूर्य का प्रात:कालीन बिम्ब `वासरमणे: लसत्सिन्दूराच्छच्छविम् अनुपमं रुचिरं बिम्बं` यह उपमेय है, उपमान एवं उपमेय के साधर्म्य का वाचक `इव` शब्द उपात्त है । दोनों में साधर्म्य है लालिमायुक्त रुचिरता अत: उपमान, उपमेय, एवं साधर्म्य वाचक इव शब्द तीनों उपमाप्रयोजकों का उपादान होने के कारण यह पूर्णा उपमा का उदाहरण है ।

उपमा के अन्य कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

शीतातुर्याश्चबालाधिक वनित रुचां तप्तजाम्बूनदाभम्,
बद्ध्वालं बाहिम्पकानां ज्वलितकठरतो भ्रम्यमाणं जगत्याम् ।
शीतायानं जनानां जनकमथरुचो शीतशैत्यातुकारे -
ज्योतिर्विभ्राज्यमानं ज्वलदितवृत्तो भावतां वो भवाय ।।

इस कविता का अर्थ अनुप्रास अलंकार की व्याख्या में स्पष्ट किया जा चुका है । इसमें सूर्य की देदीप्यमान (चमकती हुई) ज्योति की आभा की आग में तपाये गये उज्ज्वल स्वर्ण की आभा से दी गयी है । `तप्तजाम्बूनदाभं` शब्द की व्याख्या है -- `तप्तजाम्बूनदस्य आभा इव आभा यस्य तत् तप्तजाम्बून-

जाज्वल्यमान ज्योति, साधारण धर्म का वाचक इव शब्द लुप्त है। उपमान एवं उपमेय में साधारण धर्म है देदीप्यमानता एवं उज्ज्वलता। इव शब्द के लुप्त होने के कारण यह 'धर्मलुप्ता' उपमा का उदाहरण है। यथा -

> अन्तर्नीरं नदीनामनुदिनमुदये बिम्बिता ये समन्ताद्
> गीर्वाणाद्रिप्रजन्मणिगणजटिलां मेदिनी दर्शयन्ति।
> विप्रप्रोदित सन्ध्याजलिजलकणिकाजालमाकाशमध्ये,
> माणिक्यव्रातयन्त: मम मिहिरकरा मान्द्यमुन्मूलयन्तु॥

जो उदयवेला में अर्थात् प्रात:काल नदियों के जल में प्रतिबिम्बित हो रही है देवपर्वत की उत्पन्न होती हुई अनेक मणियों से व्याप्त पृथ्वी को दिखाती है, ब्राह्मणों के द्वारा आकाश में फेंकी गई सन्ध्याजलि की जल-कणिकाओं (बूंदों) को माणिक्य समूह के समान बनाती हुई वे सूर्य की किरणें मेरी मन्दता जड़ता को दूर करें।

इस उदाहरण में विप्रों के द्वारा फेंकी गई सन्ध्याजलि की जलकणिकाएं सूर्यकिरणों के प्रभाव से माणिक्य के समान हो जा रही हैं। यहां उपमान 'माणिक्यव्रात' समूह है 'विप्रोदितसन्ध्याजलिजलकणिकाजाल' उपमेय है, साधारण धर्मवाचक इवादि का प्रयोग न होने से वह लुप्त है। उसके स्थान पर 'उपमानादाचारे' पा० सू० ३।१।१० से क्यच् प्रत्यय हुआ है माणिक्यव्रातं इव आचरन्ति (कुर्वन्ति) इति माणिक्यव्रातयन्ति (व्रात + क्यच् + क्वि) माणिक्यव्रातयन्तीति माणिक्यव्रातयन्त: (शतृ-प्रत्ययान्त रूप) इस प्रकार यह 'कर्मक्यच्' में वादिलुप्ता उपमा का उदाहरण है। कणिकाजाल उपमेय द्वितीया विभक्ति है अत: व्रात उपमान द्वितीयान्त से ही क्यच् होगा, क्योंकि 'उपमानोपमेययो: समानविभक्तिकत्वं' नियम है। अर्थात् उपमान एवं उपमेय समानविभक्तिक ही होते हैं।

> प्रक्रीडा: प्राप्ता: युवतिपरिवृढ: प्रोषितप्राणनाथा:
> [illegible] दधाने।

सत्रासं सप्रासं परिणतकरुणं लोचनान्युत्क्षिपन्ति
स्थेमानं स प्रियाणां घटयतु भगवान् पद्मिनी -
- वल्लभो व: । सु० श० १४

जिनके पति परदेश गये हुए हैं ऐसी प्रौढ़ एवं प्रगल्भ युवतियों के समूह `अस्ताचल` पर मणिमय-छत्र के समान अपनी अरुणिमा को बिखेर देने पर जिनको त्रास, प्रसन्नता एवं करुणा के साथ नेत्रों से देख रहे थे वे पद्मिनीवल्लभ भगवान् भास्कर समस्त प्राणियों के लिए स्थायी रूप से प्रियकारी होवें ।

इस उदाहरण में `मणिमयच्छत्र` उपमान है उपमेय अस्ताचल पर सूर्यास्त के समय पड़ने वाली अरुणिमा है वह गम्य है उसका उपादान नहीं किया गया है इवादि वाचक लीला शब्द है अत: यह उपमेय लुप्ता उपमा का उदाहरण है ।

सूर्यारुणशतक के निम्न पद्य में सुन्दर उपमा का प्रयोग द्रष्टव्य है --

परदेशनिवृत्तात्प्रियाप्तारुणशाटीभिरुपस्कृताश्वेता: ।
अरुणा हरितो विभान्ति यस्मिन्नुदिते स्तात् स हि सुखप्रदो न: ।
श्लोक - ६१

जिसके उदित होने पर रक्तिम हुई दिशायें उसी प्रकार सुशोभित होती हैं जिस प्रकार परदेश से लौटे हुए अपने पति द्वारा लाई गयी रक्तवर्ण की साड़ियों से रक्तिम हो हुई स्त्रियां सुशोभित होती हैं वह भगवान् सूर्य हम प्राणियों के लिए सुखप्रद हो । सूर्य के अस्त होने से उदय काल तक रात्रि का समय कवियों की दृष्टि में विदेशगमन का काल है उदित होने पर जैसे वह विदेश से वापस आ गया है, वह भी दिशाओं में अरुणिमा ऐसी बिखेर रहा

है जैसे अपने प्रियतम द्वारा लायी गयी लाल साड़ी पहन कर कामिनी रक्तवर्ण की ही दिखने लगती है। इस प्रकार इस उदाहरण में उपमान है -`परदेश-निवृत्तव्यत्प्रियाप्तारुणशाटीभिरुपस्कृता: अरुणा: स्त्रिय:` तथा उपमेय है अरुणा: हरित: साधर्म्यवाचक इवादि अप्रयुक्त है किन्तु गम्य है साधारण धर्म है अरुणत्व, आह्लादकत्व आदि अत: यह सुन्दर उपमा का निदर्शन है।

सूर्यशतक में उपमा का उदाहरण यथा --

उत्कीर्णस्वर्णरेणुद्रुतखुरदलिता पार्श्वयो: शश्वदश्वै
रश्रान्तभ्रान्तचक्रमनिखिलभिलन्नेमिनिम्नामरेण ।
मेरोर्मूर्धन्यं वो विघटयतु रवैरेकवीथी रथस्य
स्वोष्मोषिकाम्बुरिक्तप्रकटित पुलिनोद्भास स्वर्धुनीव ।।
- सू० श० -६८

निरन्तर अश्वों के द्वारा दो पार्श्वमार्गों में वेग से दौड़ने वाले घोड़े के खुरों से दलित स्वर्णरेणुओं से उत्कीर्ण, भार के कारण अनरत रथचक्र के भ्रमण से मिलती हुई चक्रधारा के द्वारा जिसमें नीची (अमित) रेखा बन गयी है तथा अपनी उष्मा से जल को सुखा देने से रिक्त तटप्रान्त जिसके पाण्डुवर्ण के हो गये हैं, वह सुमेरु पर्वत के शिखर में अवस्थित सूर्य के रथ की एकवीथी (एक मार्ग) जो कि जल के सूर्य द्वारा सुखा दिये जाने पर चाली हुए तटप्रान्तों वाली, धूसर अर्थात् पाण्डुवर्ण की आकाशगङ्गा के समान है वह आपके पापों को नष्ट करे। यहाँ कवि ने अच्छी उपमा का आश्रय लिया है। सूर्य के रथ में मात्र एक पहिया होता है ऐसी कवियों में प्रसिद्धि है। सुमेरु पर्वत पर बार-बार चलने से रगड़ के कारण उस पहिए से एक रेखाकार "लीक" बन गई है स्वर्ण के चूर्ण चमकीले हैं, पानी न होने से दोनों तट पाण्डुवर्ण के हैं इस प्रकार की सूर्य रथ की एकवीथी उपमान है, उपमेय "स्वर्धुनी" अर्थात् आकाश-गंगा है इसमें जल के शुष्क होने पर बालू चमकते हैं तथा किनारे पाण्डुवर्ण के

होते हैं, तथा व साधर्म्यवाचक इव शब्द प्रयुक्त है अत: यह पूर्णोपमा का ही सुन्दर निदर्शन है ।

उत्प्रेक्षा[1] -

भामह दण्डी आदि आचार्य उत्प्रेक्षा अलंकार का प्राय: एक ही स्वरूप मानते हैं उपमेय की उपमान के साथ तादात्म्य अर्थात् एकरूपता से जो सम्भावना की जाती है वह उत्प्रेक्षा अलंकार है । `मन्ये,` `शंके`, `ध्रुवं`, `प्राय:`, `नूनम्` आदि उत्प्रेक्षा-वाचकों के प्रयोग में वाच्योत्प्रेक्षा होती है अन्यथा गम्योत्प्रेक्षा । इन उत्प्रेक्षा प्रतिपादकों के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा की सामग्री रहने पर इव शब्द भी कभी-कभी उत्प्रेक्षा का प्रतिपादन करता है । आचार्य दण्डी ने `इव` शब्द के प्रयोग पर होने वाली उत्प्रेक्षा का प्रसिद्ध निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया है --

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभ:
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ।

इस उदाहरण में कुछ आचार्यों को अभिमत उपमा का वारण करते हुए दण्डी एक एक महत्वपूर्ण तथ्य का विचार किया है । इनका मत है कि जहां क्रिया पद के साथ इव शब्द प्रयुक्त होगा तथा उपमानानि उत्प्रेक्षा प्रयोजक होंगे वहां उत्प्रेक्षा ही होगी उपमा नहीं । अपने अभिमत की पुष्टि के लिए आचार्य दण्डी ने वैयाकरण महर्षि पतञ्जलि के `न वै तिङन्तेनोपमानमस्ति` को उद्धृत किया है । अभिप्राय है कि तिङन्त के साथ इव शब्द

1- सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत् ।

- का० प्र०

के प्रयुक्त होने पर उपमा नहीं हो सकती। इसे `क्रियास्वरूपोत्प्रेक्षा` नाम दिया गया है।

सूर्यशतक में क्रियास्वरूपोत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है --

> पर्याप्तं तप्तचामीकरकटकतटे श्लिष्टशीतेतरांशा-
> वासीदत्स्यन्दनाश्वानुकृतिमरकते पद्मरागायमाणः।
> यः सोत्कर्षां विभूषां कुरुत इव कुलक्ष्माभृदीशस्य मेरो
> रेनांस्यह्नाय दूरं गमयतु स गुरुः काद्रवेयद्विषो वः।।

सूर्य से संश्लिष्ट रथ के बैठने या ईषत-भिन्न होते हुए अश्वों के प्रतिबिम्बरूप मरकट मणियों से युक्त तप्त होने के कारण उज्ज्वल सौवर्ण-पाषाण में पद्मरागमणि का-सा अनुकरण करता हुआ जो सभी पर्वतों के ईश सुमेरु पर्वत को मानों अत्यधिक विभूषित कर रहा है वह गरुण का बड़ा भाई अरुण समस्त प्राणियों के पापों को शीघ्र दूर कर दे। जैसे किसी राजा के मस्तक पर सुवर्ण हो उस पर पद्मरागमणि सुशोभित होगी उसी प्रकार मानों अरुण सुमेरु पर्वत के सुवर्णमयता पर अरुण पद्मरागमणि की भूमिका निभाता हुआ पर्वत को सुशोभित कर रहा है। उपमेयभूत अरुण उपमानभूत पद्मरागमणित्वेन सुमेरुपर्वत के शोभाकारित्व रूप में सम्भावित है। इस प्रकार यह उत्प्रेक्षा का उदाहरण है। इव शब्द क्रिया के साथ प्रयुक्त है अतः वाच्योत्प्रेक्षा का क्रियास्वरूपोत्प्रेक्षाभेद यहाँ प्रयुक्त है।

सुधालहरी में वाच्योत्प्रेक्षा का उदाहरण --

> अन्तर्द्यावापृथिव्योरधिरजनि भूतान्धकारानुदारान्।
> विद्राव्यद्राक् वदीयैरिव सवदरुणं शोणितैर्यद् विभर्ते।।
> सायं प्रातश्च सन्ध्या-व्यलिमवनिसुराः सम्प्रयच्छन्ति यस्मै।
> तस्मै कस्मैचिदेतन्मम परमदसे देवतायै नमोऽस्तु।।

जो आकाश एवं पृथ्वी में व्याप्त रात भर के प्रभूत एवं घने अन्धकारों को समन्तत: विदीर्ण करके मानो उन्हें अन्धकारों के रक्त से सम्पूर्ण संसार को लाल कर दे रहा है जिसे प्रात: एवं सायंकाल पृथ्वी के देवरूप ब्राह्मण सन्ध्याञ्जलि प्रदान करते हैं ऐसे उस किसी परमतेजस्वी सूर्य देवता को मैं प्रणाम करता हूं ।

इस उदाहरण में कवि ने सम्भावना की है कि अन्धकार के विदीर्ण करने पर मानो रक्त निकल रहा है और उसी रक्त से मानो संसार रक्तिम किया जा रहा है । संसार को रक्तिम करने में अन्धकार विदारण जन्य उत्प्रेक्षित रक्त हेतुत्वेन प्रतिपादित है अत: यह हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण है । इन शब्द उत्प्रेक्षा का वाचक है । सुधालहरी में ही उत्प्रेक्षा का दूसरा उदाहरण --

> आलेपा हिङ्गुलीनामिव धरणिभुजामङ्कसौधाग्रमौलि-
> ष्वग्रेषु दमारुहाणामभिनवविदलत् पल्लवोल्लासलीला:
> प्रौढप्रालेयपुञ्जोपरि कितवदिराङ्गार मारा इवारात्
> पारावारात् प्रयान्तो दिनकर किरणा मङ्गलं न: क्रियासु ।
>
> - सु० ल० ७

राजाओं की सुन्दर महलों के ऊपर मानों हिङ्गुलियों के आलेप है । ऐसी पर्वतों के वृक्षों के नूतन कोरकित होते हुए पल्लवों का विकास करने वाली, कठोर बर्फ-समूह पर मानो विचित्र गैरिक का लेप करती हुई तथा समुद्र से प्रस्थान करती हुई भगवान् सूर्य की किरणें आपके लिए मंगल का आहरण करें ।

इस कविता में कवि पण्डितराज जगन्नाथ ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है ।

राजमहलों के अग्रभाग में जो सूर्य की किरणें चमक रही हैं उसकी सम्भावना कवि ने हिङ्गुली नामक पदार्थ के आलेप से की है इसी प्रकार पर्वतों

पर पड़ी बर्फ के ऊपर जब रक्तिम किरणें पड़ रही हैं तो मानो चित्र-विचित्र गैरिक उनके ऊपर डाल दी गयी है। इस प्रकार इस श्लोक में कवि ने दो उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है। सिङ्गुलियों के आलेप एवं बर्फ के ऊपर गैरिक का आरोप ये दोनों उपमान हैं, रविकिरणें उपमेय हैं `इव` शब्द उत्प्रेक्षा का वाचक है अत: यह `वस्तूत्प्रेक्षा` का उदाहरण है।

सूर्यशतक एवं सूर्याभिरूप्यशतक में तो उत्प्रेक्षा अलंकार बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है। एक ही श्लोक में कवियों ने कई कई उत्प्रेक्षाएं की हैं। यथा --

शात: श्यामालताया: परशुरिव तमोऽरण्यवह्नेरिवार्चि:
प्राच्यैवाग्रे गृहीतुं ग्रहकुमुदवनं प्रागुदस्तोऽग्रहस्त: ।
ऐक्यं भिन्दन्भूम्योरवधिरिव विधातेव विश्वप्रबोधे
वाहानां वो विनेता व्यपनयतु विपन्नाम धामाधिपस्य ।
- सू० श० ५५

रात्रिरूपी लता के लिए मानो तीक्ष्ण फरसा है, अन्धकार रूप जङ्गल के लिए मानो दावाग्नि है, ग्रहरूप कमलों के वन को पकड़ने के लिए मानो प्राची अर्थात् पूर्व दिशा के द्वारा प्रात:काल उठाया गया हाथ है, आकाश एवं पृथ्वी के ऐक्य को खण्डित करने वाली मानो सीमा है विश्व को उद्बुद्ध करने वाला मानो विधाता है ऐसा धामाधिप अर्थात् सूर्य के अश्वों को ले जाने वाला सारथि अरुण आपकी जो विपत्तियां हों उन्हें नष्ट करे।

इस उदाहरण में स्पष्ट है कि सूर्य सारथि अरुण, परशु, अर्चि, अग्रहस्त, अवधि एवं विधाता रूपों में उत्प्रेक्षित है। इव शब्द भी प्रयुक्त है अत: वाच्योत्प्रेक्षा है। यथा --

पौरस्त्यस्तोयदर्तो: पवन इव पतत्पावकस्येन धूमो
विश्वस्येवादिसर्ग: प्रणव इव परं पावनो वेदराशे : ।
सन्ध्यानृत्योत्सवेच्छोरिव मदनरिपोर्नन्दिनान्दी-निनाद:,
सौरस्याग्रे सुखं वो वितरतु विनतानन्दन:स्यन्दनस्य ।।

- सू० श० ५५

सूर्यरथ के आगे स्थित विनता का पुत्र अरुण आपके लिए कल्याण बांटे । अन्य समस्त अरुण की उत्प्रेक्षाएं हैं । वह अरुण मानो वर्षाकालीन पूर्वदिशा से चलने वाली (पुरवैया) हवा है, समाप्त होते हुए के पूर्व उपलब्ध होने वाला मानो धुंआ है, विश्व की आदि सृष्टि है - वेदराशि का परम पवित्र प्रणव है, सन्ध्याकालीन नृत्य के इच्छुक मदनशत्रु शङ्कर के सामने नान्दी का मानो निनाद है ।

इस उदाहरण में भी पूर्व उदाहरण की तरह अरुण उपमेय (प्रकृत की तमाम पवन, धूम, आदि सर्ग, प्रणव आदि उपमानों के रूप में सम्भावना की गयी है, इव शब्द भी प्रयुक्त है अत: उत्प्रेक्षा अलंकार है ।यथा-

गम्योत्प्रेक्षा का सूर्यारुण्यशतक में विद्यमान उदाहरण -

सुवर्णाण्डं भित्वा सरसिरुहयोनेरनुदिनं
दिशां यात्रामेत्रीमवसि मनसीति स्फुरति नो-
यतस्त्वत्तेजोभिस्तपन तपनीयं हि पतित:
प्राप्तं प्रत्यूषे भवदरुणिमानं प्रथयति ।

हे सूर्य प्रतिदिन आप कमलयोनि ब्रह्मा जी के सुवर्णाण्ड अर्थात् स्वर्णिम ब्रह्माण्ड को विदीर्ण कर दिशाओं की यात्रा करते हो तथा ब्रह्म से टूटा हुआ सोना तुम्हारे तेज से प्राप्त होकर तुम्हारी रक्तिमा को बढ़ा देता है । ब्रह्माण्ड से निकली हुई किरणों की उत्प्रेक्षा स्वर्णिम ब्रह्माण्ड से की गयी है तथा इस उत्प्रेक्षा सुवर्ण को अरुणिमा बढ़ाने वाले तत्व के रूप

में उत्प्रेक्षित किया गया है। इव अप्रयुक्त है अतः यह गम्योत्प्रेक्षा का उदाहरण है।

सूर्यशतक में प्रयुक्त अनेक उत्प्रेक्षाओं में निम्नलिखित उत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है --

> आवृत्तिभ्रान्तविश्वाः श्रममिव दधतः शोषिणः स्वोष्मणेव,
> ग्रीष्मे दावाग्नितप्ता इव रसमसकृद्ये धरित्र्या धयन्ति
> ते प्रावृष्यात्तपानातिशयरुज इवोद्वान्ततोया हिमर्तौ-
> मार्तण्डस्याप्रचण्डाश्चिरमशुभभिदेऽभीशवो वो भवन्तु ।
>
> - सू० श० १५

सम्पूर्ण विश्व में बार-बार भ्रमण करने से मानो थकी हुई सी, ग्रीष्म ऋतु में से दावाग्नि द्वारा तपाये गये से एवं मानो अपने संताप से अवशोषकों के रूप में पुनः पुनः पृथ्वी के जल का पान कर रही है, जो अत्यधिक जल पी लेने के कारण रुग्ण हुई सी वर्षाकाल में जल को उद्गीर्ण कर देती है अर्थात् अत्यधिक वर्षा करती हैं। वे शीत ऋतु में सूर्य की अप्रचण्ड अर्थात् मन्द किरणें आप सभी के अकल्याण का विनाश करें।

इस उदाहरण में सूर्य की किरणों की उत्प्रेक्षा अनेक रूपों में की गयी है उपमेय 'मार्तण्डस्य अप्रचण्डाः अभीशवः' अर्थात् सूर्य की किरणें हैं उपमान- श्रमम्, स्वोष्मणा, दावाग्नितप्ता, अतिशयरुज हैं इव शब्द वाचक है। अतः उत्प्रेक्षा वाच्य है। जब प्रश्न होता है सूर्य की किरणें किं रूप हैं तब उत्तर में उत्प्रेक्षा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। वे शोषक सी हैं, दावाग्नि द्वारा तपायी गयी सी हैं अत्यधिक पान कर लेने के कारण रुग्ण सी हैं। इसी प्रकार अनेक उदाहरण उत्प्रेक्षामूलक हैं।

सूर्यारुण्यशतक में सुन्दर उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है --

परााशां संभुज्य प्रतिदिनमथै रक्तहृदय -
स्त्रपाहीन: प्रातर्मममवनमायासि विट रे ।
इति प्राचीवध्वा इव कृतरुषो लककरसौ-
ल्लसत्पादाघादरुणतनुराभाति तरणि: ।

- सूर्यश० ७०

अरे विट ! प्रतिदिन परकीया अर्थात् पश्चिम दिशा का उपभोग करके प्रात:काल निर्लज्जता के साथ रंगे हुए हृदय से मेरे घर आते हो ? इस प्रकार सोचकर प्राचीवधू द्वारा लाक्षारस से सुशोभित चरणों से आघात करने के कारण रक्तिम हुए सूर्य सुशोभित हो रहे हैं।

सूर्य की स्वाभाविक रक्तिमा में प्राचीवधू के चरण में लगे हुए लाक्षारस के रक्तत्व की सम्भावना की गई है अत: यह उत्प्रेक्षा का उदाहरण है ।

रूपक -

परस्पर विरुद्ध धर्मवत्वेन उपस्थित भिन्नस्वरूपवाले भी उपमान एवं उपमेय में अत्यधिक साम्य दिखाने के उद्देश्य से काल्पनिक अभेद का आरोप रूपक अलंकार है । रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार में भेदक तत्त्व यही है कि निगीर्याध्यवसानरूपा अतिशयोक्ति में उपमेय की उपमेयगतधर्मवत्त्या उपस्थिति नहीं होती जबकि रूपक में होती है । इसी प्रकार अपह्नुति अलंकार उपमेय के गोपन से भेद का अह्नव अर्थात् गोपन होना आवश्यक है किन्तु रूपक में उपमान एवं उपमेय के वैधर्म्य को स्पष्ट रखना चाहिए । निष्कर्षत: गौणी सारोपा लक्षणा के स्थलों में रूपक अलंकार होगा तथा गौणी साध्यवसाना लक्षणा स्थल में अतिशयोक्ति अलंकार होगा ।

स्तोत्र साहित्य में प्रयुक्त रूपक के कतिपय उदाहरणों की व्याख्या-यथा --

उल्लास: फुल्लपङ्केरुहपटलपतन्मत्तपुष्पन्धयानां
निस्तार: शोकदावानलविकलहृदां कोकसीमन्तिनीनां
उत्पातस्तामसानामुपहतमहसां चक्षुषां पक्षपात:
संघात: कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्तत: प्रादुरासीत ।

- सु० ल० १

विकसित कमलों के समूहों पर गिरते हुए मत्त भौरों के लिए उल्लास-स्वरूप वियोगजन्यशोक रूपी दावानल संतापाग्नि से विकल हुए हृदयों वाली चक्रवाक-वधूटियों संताप को दूर करने वाला अन्धकारों के लिए उत्पातस्वरूप तेजोविहीन नेत्रों के लिए हितकर कोई अनिर्वचनीय शोभावाला तेज:समूह उदयपर्वत के प्रान्तभाग से उदित हो रहा है ।

इस उदाहरण में एक उपमेयभूत अनिर्वचनीय तेजों के संघात सूर्य में अनेक भ्रमरों के लिए उल्लास, चक्रवाकवधूटियों के शोक का निस्तार, अन्धकारों के लिए उत्पात आदि उपमानों का आरोप किया गया है अत: यहां माला रूपक है । जिस प्रकार मालोपमा में अनेक उपमानों से एक उपमेय की तुलना की जाती है उसी प्रकार मालारूपक में भी अनेक उपमानों का एक उपमेय में आरोप किया जाता है ।

मालारूपक का सुधालहरी का ही दूसरा उदाहरण --

त्रातामीवार्तलक्षा: प्रतिदिन विहितानेक गीर्वाणरक्षा
भक्तानां कल्पवृक्षा: स्फुरदनलगत स्वर्णभासां सदृक्षा:
लोकेमा कक्षीदा नलिनपरिषदां दत्तसौभाग्यलाक्षा
दुर्दैवध्वंसदक्षा मम रविकिरणा: सन्त्वघानां विपक्षा: ।।

- सु० लहरी -२

जिन्होंने लाखों आर्तों अर्थात् दु:खियों की रक्षा की है प्रतिदिन अनेक

देवताओं की रक्षा की है, भक्तों के लिए जो कल्पवृक्ष स्वरूप हैं, देदीप्यमान अग्नि में तपाये जा रहे स्वर्ण की आभा वाले, संसार के कल्याण करने में जिन्होंने दीक्षा पा ली है, कमलसमूहों के लिए सौभाग्यलाक्षारूप तथा पापों के विनाश में दक्ष सूर्यकिरणें भेरे पापों का विनाश करें। यहां भी उपमेय सूर्य की किरणें हैं उनपर अनेक कल्पवृक्षादि उपमानों का आरोप हुआ है अतः मालारूपक है।

रूपक के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं --

बन्धध्वंसैकहेतुं शिरसि नतिरसाबद्धसन्ध्याञ्जलीनां
लोकानां ये प्रबोधं विदधति विपुलाम्भोजखण्डाशयेव।
युष्माकं ते स्वचित्तप्रथितपृथुतरप्रार्थनाकल्पवृक्षाः,
कल्पन्तां निर्विकल्पं दिनकरकिरणाः केतवः कल्मषस्य ।।

- सू० श० १०

नमस्कार करने के उद्देश्य से सिर पर जिन्होंने अञ्जलि बना रखी है ऐसे समस्त प्राणियों को सांसारिक बन्धनों के विनाश का एकमात्र कारण प्रबोध अर्थात् तत्वज्ञान मानों विपुल अम्भोजखण्डों की आशा से प्रदान करने वाली सबके चित्त (मन) की प्रथित एवं विशाल जो प्रार्थना उसके लिए कल्पवृक्षरूप सूर्य की किरण निश्चित ही आप सबके पाप का विनाश करें।

इस उदाहरण में सूर्य किरणें उपमेय हैं। उनका उपमान कल्पवृक्ष से अभेद प्रतिपादित किया गया है तथा आरोप्यमाण यहां शब्दोपात्त है अतः यह 'समस्तवस्तुविषय' रूपक अलंकार का उदाहरण है। उल्लेख्य है कि आचार्य मम्मट ने रूपक की समस्तवस्तुविषयता की व्याख्या में कहा है --

'समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा।' इसका अभिप्राय है कि आरोपविषय अर्थात् उपमेय के समान आरोप्यमाण अर्थात् उपमान जब शब्दोपात्त हों तथा इनका अभेदेन उपादान किया जाय तब समस्तवस्तुविषय रूपक होता है।

शात: श्यामालताया: परशुरिव तमोऽरण्यवह्नेरिवार्चि:
प्राच्येवाग्रे गृहीतु ग्रहकुमुदवनं प्रागुदस्तोऽग्रहस्त: ।
ऐक्यं भिन्दन्भुमूम्योरवधिरिव विधातेव विश्वप्रबोधं
वाहानां वो विनेता व्यपनयतु विपन्नाम धामाधिपस्य ।।

इस उदाहरण की व्याख्या उत्प्रेक्षा अलंकार के सन्दर्भ में की जा चुकी है, अर्थ भी वहीं निर्दिष्ट है। रूपक अलंकार का प्रयोग इस कविता में दो स्थानों पर है --

(१) श्यामालताया:, (२) ग्रहकुमुदवनम् ।

`श्यामा रात्रि: सा एव लता` रात्रि जो लतारूप है, यहां रात्रि उपमेय है लता उपमान है दोनों का अभेद प्रतिपादित है। इसी प्रकार `ग्रहा: एव कुमुदानि तेषां वनम्` अर्थात् ग्रहरूप कुमुदों के वन को। यहां भी उपमान एवं उपमेय का अभेद बताया गया है अत: रूपक अलंकार है।

प्रातर्निर्गत्य गोभि: सह रुचिविषये संचरन्त्यो दिन ताभि:
साकं सायं निकायं प्रति पुनरपि या: सम्प्रयातुं त्वरन्ते ।
यासां दिव्यप्रभावस्त्रिजगदघवनश्रेणिदावैकदाव:
क्षेमं तन्वन्तु ता व: शिवमयवपुषो वासरेशस्य गाव: ।।

प्रात:काल जो गायों के साथ निकल कर दिन भर उनके साथ संचरण करती हैं सायंकाल पुन: अपने आवास को गायों के साथ मानो लौट आती हैं तथा जिनका दिव्य प्रभाव तीनों लोकों के अघ अर्थात् रूपी वनपङ्क्ति के लिए एकमात्र दावाग्नि है वे कल्याणमयि सूर्य की किरणें समस्त प्राणियों के लिए कल्याण का वितरण करें।

इस उदाहरण में सूर्यकिरणों के दिव्य प्रभाव को दावाग्नि रूप में प्रतिपादित किया गया है तथा अघ अर्थात् पाप को वन।

दिव्य प्रभाव उपमेय है उसमें उपमान दावाग्नि का आरोप किया गया

है इसी प्रकार उक्त रूपक को उपपन्न करने के लिए अब उपमेय में वन उपमान का आरोप किया गया है । अत: रूपक अलंकार का संगत निदर्शन है ।

यत्तत्क्षीणत्वे दिवसकर । तत्वे तदिह ते
हरेर्ध्वान्तोन्माधद्द्विपकुलममन्दं दलयत: ।
निशान्ते शान्तेऽवके करनखरघातोच्छलदसृक्
छटासङ्गाद्रङ्गत्कुरित मुदसि स्फूर्जतितराम् ।।
- सूर्यारुण्यश० ६४

इस उदाहरण की व्याख्या अनुप्रास अलंकार के उदाहरण के रूप में की जा चुकी है । रूपक अलंकार की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने दो रूपक बनाए हैं एक तो है -- ध्वान्तोन्माधद्द्विपकुलम्, दूसरा है -- करनखरघातोच्छल० ।

पहले का अभिप्राय है अन्धकाररूपमदमस्त हाथियों का समूह । यहां अन्धकार उपमेय है उसमें मत्तहस्तिसमूह का आरोप किया गया है इसी प्रकार किरणों में तीक्ष्ण नाखूनों का आरोप किया गया है । आरोप विषय किरण है आरोप्यमाण नाखून हैं अत: रूपक अलंकार है । इस उदाहरण में सुन्दर उत्प्रेक्षा भी है ।

कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य की उष:काल की लालिमा अन्धकाररूप हस्तिसमूह के किरण रूपी नाखूनों द्वारा विदीर्ण कर दिये जाने पर मानों जो रक्त चारों दिशाओं में फैल रहा है उससे और भी सुशोभित हो जा रही है । अत: रूपक एवं उत्प्रेक्षा का संकर है ।

काव्यलिङ्ग[1] -

स्वत: अनुपपद्यमान अर्थ की उपपत्ति के लिए वाक्य का अनेक

1- काव्यलिंग का लक्षण - हेतोर्वाक्यपदार्थता: ।
- काव्यप्रकाश १०।११४

पदों का एक-एक पद का हेतु रूप प्रतिपादन काव्यलिङ्ग अलंकार है। अभिप्राय यह है कि कहीं पूरा वाक्यार्थ हेतु रूप उपन्यस्त होगा कहीं अनेक पद होंगे तथा कहीं मात्र एक पद हेतु के रूप में प्रयुक्त होगा।

सूर्य की स्तुतियों में यह अलंकार मुख्य रूप से विद्यमान है क्योंकि इन स्तुतियों में फलश्रुतियां ही हेतु रूप होकर काव्यलिंग अलंकार के रूप में परिणत हुई।

त्रैलोक्य मङ्गलकवच सूर्य स्तोत्र में कुष्ठादिरोगशमन धनारोग्यविवर्धन, कीर्ति आदि कारणों के कारण यहां काव्यलिंग अलंकार है --

श्रीप्रदं कीर्तिदं नित्यं धनारोग्यविवर्धनम्
कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधि विनाशनम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं आरोग्यबलवान् भवेत्।[1]
बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ॥

प्रस्तुत पद्य में कवि ने सूर्य को एकमात्र चक्षु रूप में प्रतिष्ठित करते हुए प्रातःकालीन मलिनता के वर्णन प्रसंग में काव्यलिंग अलंकार प्रयुक्त किया है --

तमीसंगाद्युत्कलुषमरभावस्त्रिजगतां
भवानेकं चक्षुर्भवनमियातीति तरणे।
प्रगे प्राची बाला स्नपयति सदा कौङ्कुमरसं
मुदा मन्ये तस्मादयमणिमा ते विजयते।

यहां पर सदा कौङ्कुमरसे स्नपयति में काव्यलिंग अलंकार है। कौङ्कुमकेरस से प्रक्षालित सूर्य की मलिनता के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

१- त्रैलोक्यमंगलकवचस्तोत्र ११, १२, बृहत्स्तोत्ररत्नाकर से उद्धृत।

अये चक्षुस्तथ्यं त्वमरुणमरीचिर्यदुदये ।
स्फुटं लोके शोणं भवति नयनं मीलनवशात् ।
त्रिलोकीकानां कलक्षितनयामर्तुरथवा ।
त्रिजस्याशो स्वित्तदिति न हि विद्मो वयममी[1] ।।

यहां पर सूर्य की किरणें चक्षु के समान हैं जो मुंदने से चक्षु लाल हो जाती है । इस 'मीलनवशात्' इत्यादि वाक्य के चक्षु हेतु का प्रतिपादन होने से काव्यलिंग अलंकार है ।

शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान् ।
दीर्घाघ्रातानघौघै: पुनरपि घटयत्येक उल्लाघयन् य: ।
घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्ते ।
र्दत्तार्घा: सिद्धसंघैर्विदधतु घृणय: शीघ्रमंहोविघातम्[2] ।।

प्रस्तुत पद्य में घृणादि विकारों को विनष्ट, पाप, समूहों को दूर करने इत्यादि हेतुओं का वर्णन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है । यथा --

प्रालेयानां करालाः कवलितजगतीमण्डलध्वान्तजाला:
जातस्वर्लोकपाला विदलदरुणिमदिप्तबालप्रवाला: ।
विश्लिष्यत्कोकबाला स्वरहरणभवत्कीर्तिजालौर्वटाला
व्योमव्यस्तौ विशालास्त्वयि दधतु शिवं भास्वतोभानुमाल:[3] ।।

यहां पर 'विश्लिष्यत्कोकबालाज्वरहरण' आदि वाक्य में हेतु का वर्णन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है ।

1- सूर्यारुण्यशतकम् - ३१ ।

2- सूर्यशतकम् - ६,

3- सुधालहरी - ४

पद्मदोहैदुराणां ध्वलितहरितामैन्दवीनां द्युतीनां
दर्पं द्राग् द्रावयन्तो विदलदरुणिमौद्रेकदेदीप्यमाना:
दूरादेवान्धकारान्वितधरणितलद्योतने बद्धदीक्षा
स्ते दैन्यध्वंसदक्षा मुदमुदयदिनोल्लदुस्त्रा दिशन्तु ।।

यहां पर ध्वलितहरितमैन्दवीनां द्युतीनां आदि वाक्य[1] में सूर्य के हेतु का वर्णन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है ।

भ्रान्तिमान् -

साहृश्य से उत्थापितभ्रान्ति जिस वाक्य में हो वहां भ्रान्तिमान् अलंकार होता है ।[2]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने सूर्य के अस्त होने पर घरों में व्याप्त कुतूहल के वर्णन में भ्रान्तिमान् अलंकार प्रयुक्त किया है --

समन्तादारक्तास्तव मिहिर ! नक्ताभिविरतौ,
करा गेहे गेहे किमपि दधते कौतुकमिदम् ।
पटं दृष्ट्वा शोणं यदिह परकान्तोत्तरपटी
भ्रमात्कान्ता पत्यौ कलयति न कां तां किलरुषम् ।।

यहां भ्रमात्कान्त्या' आदि वाक्य[3] में किरणों से वस्त्र लाल देखकर अन्य नारी के उत्तरीय वस्त्र की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान् अलंकार है ।

१- सुधालहरी - २

२- भ्रान्तिमान का लक्षण -- साहृश्योत्थापिताभ्रान्तिर्यत्रासौ
भ्रान्तिमान् मत: ।

३- सूर्यारुण्यशतकम् - ८८

निर्भिंद्य क्ष्मारुहाणामतिघनमुदरं ये गोत्रां गतेषु
द्राधिष्ठस्वर्णदण्डभ्रमभृतमनसो हन्तधित्सन्ति पादान् ।
ये: संभिन्ने दलाग्रप्रबलहिमकणे दाडिमीबीजबुद्ध्या ।
चञ्चवा चल्यमञ्चन्ति च शुकशिशवस्ते शव: पान्तुभावो: ।

यहां पर स्वर्णदण्ड भ्रमभृतमनसो आदि वाक्य में भ्रान्तिमान अलंकार है । सूर्य की किरणें घने वृक्षों पर पड़ने पर स्वर्णिम दण्ड के भ्रम से तथा वृक्षों के अग्र भाग में विद्यमान हिमकणों अनार के बीज के भ्रम से शुकशिशु चोचों को चञ्चल करते हैं । इसलिए भ्रान्तिमान् अलंकार स्पष्ट है ।[1]

ङ प्रस्तुत पद्य में देवताओं द्वारा सूर्य स्तुत्य होने से उनका महत्व अधिक द्रष्टव्य है --

मोळीन्दोर्मैष मोष द्युतिमिति वृषभाङ्केन य: शङ्कनेव ।
प्रत्यग्रोद्दारिताम्भोरुहकुहरगुहासुस्थितेनेव धात्रा ।
कृष्णेनध्वान्तकृष्णस्वतनुपरिभवत्रस्तुनेव स्तुतोऽलं ।
त्राणाय स्तात्तीयानपि तिमिररिपो: स त्विषामुद्गमो व: ।।[2]

यहां पर ध्वान्तकृष्णस्वतनु आदि वाक्य में भ्रान्तिमान अलंकार है । सूर्य का स्तवन करते हुए भगवान विष्णु रूपधारी श्री कृष्ण ने अपने शरीर की श्यामलता से अन्धकार का भ्रम होने से भ्रान्तिमान अलंकार है ।

उद्गादेनारुणिम्ना विदधति बहुलं येऽरुणस्यारुणत्वं
मूर्धोद्धूतौ खलीनक्षतरुधिररुचो ये रथाश्वाननेषु
शैलानां शेखरत्वं श्रितशिखरिशिखास्तन्वते ये दिशन्तु
प्रेङ्खन्त: खे खरांशो: खचितदिनमुखास्ते मयूखा: सुखं व: ।।

१- सुधालहरी - ६
२- सूर्यशतकम् - १६, ८ ।

यहां पर शैलानां शैखरत्वं श्रित शिखरि आदि वाक्य में घोड़ों के मस्तक पर लगी हुई कलगी द्वारा पर्वतों की चोटी का भ्रम पैदा करने के कारण भ्रान्तिमान अलंकार है ।

परिकर --

जिस वाक्य में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग हो वहां परिकर अलंकार होता है।[1]

भगवान् सूर्य की स्तुतियां साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है ।

तं सूर्यं जगत्कर्त्तारं महातेज: प्रदीपनम् ।
महापापं हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।
तं सूर्यं जगतां नाथ ज्ञानविज्ञान मोक्षदम् ।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।[2]

यहां पर मोक्षप्रदाता, पापों को अपहरणकर्त्ता, जगत्पत्ति आदि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग दृष्टिगत होने से परिकर अलंकार है ।

प्रालेयानां कराला: कवलितजगतीमण्डलध्वान्तजाला:,
त्रावस्त्लोकपाला: विदलदरुणि मणि प्रवालप्रवाला: ।
विश्लिष्यत्कोकबालाऽवरहरणभवत्कीर्तिबाहेर्वटाला:,
व्योमव्यापी विशालास्त्वयि दधतु शिवं भास्वती भानुमाला: ।।
- सु० ल० ५

सूर्य की किरणें तुम्हारे लिए कल्याण करें । यहां और सब किरणों

1- परिकर - विशेषणार्थैर् साकूतै सा उक्तिपरिकरस्तु सा: ।-का०प्र०१०।११६
2- सूर्याष्टकम् - बृहत्स्तोत्ररत्नाकर से उद्धृत ।

के विशेषण हैं जो कि साभिप्राय हैं अत: परिकर अलंकार है । सूर्य की किरणें अन्धारों के लिए कराल है, अत: उन्होंने जगतीमण्डल के अन्धकारसमूह को कवलित कर लिया है । स्वर्ग के लोकपालों की रक्षा करने वाली हैं बालप्रवालों पर अरुणिमा को बिखेर रही है तथा चक्रवाकबालाओं के सन्ताप को दूर करने के कारण यशस्वी तथा आकाश भर में व्याप्त होने वाली विशाल है । ये समस्त विशेषण एक उदात्तामूलक अभिप्राय के लिए प्रयुक्त है ।

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्चित्त्मोश्वर: ।
आदिकर्त्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकर: ।
जीवन: सर्वभूतानां देवगन्धर्वराक्षसाम् ।
मुनि किंनरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ।।[१]

यहां पर भगवान् भास्कर का आदिदेवत्व, आदिकर्तृत्व, ईश्वरत्व आदि विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग है । अत: परिकर अलंकार है ।

नमस्ते मार्तण्ड । द्युतिनिलय । ते चण्डमहसे
नमो स्त्वादित्यस्य प्रकटवपुषे चण्डपरशो: ।
नम: पद्माकान्त प्रियवसतये पद्मपटली ।
प्रकाशायास्तां ते दिवसकर । कस्मैचन नम: ।।[२]

यहां पर भगवान् भास्कर का द्युति के निलय, किरणों का तीक्ष्णत्व, पद्माकान्त निवासत्व आदि विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग है अत: परिकर अलंकार है ।

कैलाशे कृत्तिवासा विहरति विरहत्रासदेहोत्कान्त: ।
भ्रान्त: श्रैौ महाहावविचलधि किमा क्वना पद्मनाभ:

१- आदित्यस्तोत्र - ब्रह्मसूर्य स्तुति

२- सूर्यालंकारशतकम् - ५६ ।

योगीयोगैकतानो गमयति सकलं वासरं स्वं स्वयम्भू
र्भूरित्रैलोक्यचिन्ताभृति भुवनविभौ यत्र भास्वान्सवोऽव्यात् ।।[1]

यहां पर भगवान के भुवनपति होने से ही सम्पूर्ण कार्य कनिष्ठ हो जाते हैं यहां पर भगवान् की कर्मठता आदि विशेषणों का साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है।

समासोक्ति[2] -

श्लिष्टविशेषणों के कारण उपमेयार्थ के प्रतिपादक वाक्य के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का अभिधान समासोक्ति अलंकार है। समासत: अर्थात् संक्षेपूर्वक दो अर्थों का अभिधान होता है। अत: इसे समासोक्ति कहा गया है।

प्रस्तुत पद्य में कवि ने सूर्य के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्राकृतिक का मानवीकरण में यह अलंकार प्रयुक्त किया है यथा --

स्वापं स्वापाकुलानां गदमथ गदिनामन्धकारं त्रिलोक्या:
पापं पापाविलानां सपदि परिहरन्नागतो वासवाशाम् ।
नित्यप्रस्थानलीला कुपित कमलिनी नर्मनिर्माण कर्मा ।
विश्वार्तित्राणधर्मा गगनमणिरसौ पातु शर्माणि व: ।।[3]

यहां पर नित्य प्रस्थान लीला कुपितकमलिनी नर्मनिर्माणकर्मा वाक्य में कमलिनियों के नायिका-रूपी व्यवहार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है।

१- सूर्यशतकम् - ८८

२- समासोक्ति का लक्षण -- परोक्तिर्भेदकै: श्लिष्टै: समासोक्ति:
- का० प्र० सू० १४८

३- सुधाकरी - १२, १४

प्रत्यग्रोढ़: प्रगल्भा युवतिपरिषद: प्रोषितप्राणनाथा ।
यस्मिन्नस्ताद्रिमौलिरूपरिमणिमयच्छत्र लीलां दधाने ।।
सत्रासं सप्रसादं परिणतकरुणं लोचनान्युत्क्षिपन्ति ।
स्थेमानं स प्रियाणां घटयतु भगवान् पद्मिनी वल्लभो व: ।।

प्रस्तुत पद्य में अनेकधा विशेषणों के बल से नायिका के लोचनोत्क्षिप्त आदि व्यापार की प्रतीति होने से यहां पर समासोक्ति अलंकार है । यथा --

तन्वाना दिग्वधूनां समधिकमधुरालोकरम्यामवस्था ।
मारूढ प्रौढिलेशोत्कलितकपिलिमालंकृति: केवलेव ।
उज्जृम्भाम्भोजनेत्रद्युतिनि दिनमुखे किंचिदुद्भिद्यमाना ।
श्मश्रुश्रेणीव भासां दिशतु दशशती शर्म घर्मत्विषो व: ।।[१]

यहां पर दिग्वधू के अलंकरण, दिवसरूपी नायक के अलंकरणादि व्यवहार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है । यथा -

स्फुरद्धारामुक्तावलिमपहरन्निन्दुवदनां
विशेष क्रोशत्सु प्रतिदिन मही रात्रिवनितां
निहत्यैतद्रक्त प्लुतवपुरुदीतो मुनिभिर -
प्यनालोक्य: शङ्के त्वमपि वशपङ्केरुहपतौ ।।[२]

यहां पर श्लिष्ट विशेषणों के सामर्थ्य से मारने वाले पुरुष के द्वारा नायिका की हत्या की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है ।

सरागां रुचो: श्यामां रजनिमधिमत्यैव रमसे ।
निलीय क्वाप्यस्यामथ विगतवत्यां तुलहसा ।

१- सूर्यशतकम् - १५

२- सूर्याष्टनमस्कारम् - ४०

जटाधारी योगी भवसि विलसद्रक्तवसनः ।
दाणादेवं मुञ्चन् भ्रमसि किमुतायं दिनमणे ।।[1]

यहां पर सरागादि विशेषण बल से नायक के चौर्य रति व्यापार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है ।

सन्देह[2] --

यदि संदेह अप्रकृत के माध्यम से प्रकृत का स्पर्श करता है वही कवि प्रतिभा से उत्थापित होकर संदेहलंकार होता है । यथा -

अयं चक्षुस्त्वथ्यं त्वमरुणमरीचिर्यदुदये ।
स्फुटं लोके क्षीणं भवति नयनं मीलनवशात् ।
त्रिलोकीलोकानां बलचितनयनामुतैरथवा ।
त्रिनेत्रस्याहोस्विच्चदिति नहिविदमो वयम भो ।।[3]

यहां व उत्तरार्द्ध पर सूर्य के चक्षुरूप होने पर कस्य नेत्रमसि` शब्द द्वारा संदेहालंकार सूचित होता है ।

पुलकुलहारिद्रयवधूर्विनैक्ष हृदयेशैवतरक्रमाक्रमाभि ।
अभियाति गृहान् स्पृहावती किमु काश्मीर रसैर्निषिञ्चति ।।
यहां किमुकाश्मीररसैनिषिञ्चति` वाक्य में सन्देह अलंकार परिलक्षित हो रहा है ।

१- सूर्यालंण्यशतकम् - ३३

२- सन्देह का लक्षण -- उपादानानुपादानकृतो भेदस्तयोर्मिथः ।
संदेहोऽप्रकृतद्वारा प्रकृतं संस्पृशेद् यदि ।।
- अलंकार मीमांसा

३- सूर्यालंण्यशतकम् - ३१, ६१

उल्लास: फुल्लपङ्कजेरुहपटलपतन्मत्तपुष्पंधयानां
निस्तार: शोकदावानलविकलहृदां कोकसीमन्तिनीनाम् ।।
उत्पातस्तामसानामुपहतमहसां चक्षुषां पक्षपात: ।
संघात: कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्तत: प्रादुरासीत् ।[1]

यहां "कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्तत:" आदि वाक्य में सन्देह अलंकार परिलक्षित हो रहा है।

दृष्टान्त[2] -

धर्मी के अतिरिक्त धर्म का जहां बिम्बप्रतिबिम्ब प्रभाव हो वहां दृष्टान्त अलंकार होता है।

प्रस्तुत पद्य में कवि अपनी रचना को सूर्य से अनुगृहीत के लिए प्रार्थना करता है। यथा --

गिरो गर्हागर्भा यदपि तरणेवर्णनवशात् ।
परं तोषायैव त्वकिरण भवेयुस्तदपि ते ।
हयाप्तौ यातौ यत्परिणमति पित्रे क्वयितु:[3] ।
शिशूनां दुर्वादो ह्यमृतसमवादोपमवच: ।।

यहां पर सूर्य के लिए की गई निन्दापरक स्तुति भी शिशुओं की स्खलित वाणी पिता के हृदय में अमृतमयी है। यहां पर धर्म का बिम्बप्रतिबिम्ब प्रभाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

१- सुधालहरी - १
२- दृष्टान्त का लक्षण - पुनरेतेषां सर्वेषा प्रतिबिम्बनम् ।।
- का० प्रकाश १०। १०२

३- सूर्याह्लव्यक्तकम् - १०, ६

अस्माकं वन्दनीयौ जगति सलजनो प्यत्र यस्य प्रचारा
दन्विष्यन्तै समन्तात् सहृदयजना: शुद्ध सौहार्दभाव:
मार्तण्डोद दाम-धाम ज्वलदखिल -महीचारिजन्तौ
तप्तौ शान्तै स्वच्छन्दमच्छं क इह घन तरुच्छायमिच्छेन्मनुष्य: ।।

यहां पर खल जनों के प्रचार से सहृदयों की खोज, तपते सूर्य से झुलसने के कारण घने तरुवर की छाया की अभिलाषा है। धर्म-धर्मी का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

स्मरण[1] =

जहां पर सादृश होने से दूसरे सादृश का स्मरण हो वहां स्मरण अलंकार होता है। यथा --

शोणं दृष्टे यस्मिन् हृदयमिरोत्थनुदिनम् ।
सहस्त्रांशौ राजा सपदि कृतवीर्यस्य तनय: ।
स्फुरत्यन्तत: पुंसामविरतममेदश्च युवयो ।
स्तवेदं शोणत्वं तदिदं मम खेद शमयतु ।।[2]

यहां पर कवि को सूर्य की अरुणिमा को देखकर कृतवीर्य पुत्र सहस्त्रबाहु का स्मरण होने से दोनों में अभिन्नता प्रतीत हो स्मरण अलंकार है।

संड्•कर --

अपने स्वरूप में निरपेक्षभाव से पर्यवसित न होने वाले अलंकार का अड्•ग तथा अड्•गी रूप से स्थित होना संकर अलंकार है। यथा --

---

१- स्मरण का लक्षण - यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृति: ।
- का० प्रकाश १०। १३२

२- सूर्यालड्•कारशतकम् - १३

विहायद्राङ्•निद्रामळ सतनुपूर्वाद्रिसरसी -
सरोवाळी - स्फुर्जन्मधुरसभरै खेलनरसं ।
न कावा वानीते प्रकृतकरहंसस्य भवतां ।
वपु: शोणं पश्यन्त्युषसि जगतीवाभिजनता ।।[1]

प्रस्तुत पद्य में फैलाते शरीर वाले सूर्यरूपी हंस में रूपक तथा मकरन्दवैभव वाले सरोवर में क्रीडा के कारण उत्प्रेक्षा है। रूपक उत्प्रेक्षा अलंकार का अङ्•ग अङ्•गरूप में स्थित होने से सङ्•कर अलंकार है।

प्राचीभालेन्दुसिन्दूर सीमन्त तिलकद्युति ।
उदितेक्करं पायात् प्रातमार्तण्डमण्डलम् ।।

प्रस्तुत पद्य में पूर्व दिशा रूपी चन्द्रमा में रूपक तथा सिन्दूर के तिलक के समान में उपमा अलंकार है। अपने स्वरूप में निरपेक्षाभाव पर्यवसित न होने वाले अलंकार का अङ्•ग अङ्•गी रूप होने से संकर अलंकार है।

दत्तानन्दा: प्रजानां समुचित समयाकृष्टसृष्टै: पयोभि: ।
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाज:
दीप्तांशोर्दीर्घदु:खप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो ।[2]
गावो व: पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु ।।

यहां पर संसार के भयरूपी समुद्र में रूपक उदत्तारनावो में उपमा अलंकार है। यही दोनों का अङ्•ग अङ्•गी रूप में स्थित होने से संकर अलंकार है।

१- सङ्•कर का लक्षण - अविश्रान्ति जुषामात्मन्यङ्•गाङ्•गित्वं तु सङ्•कर:
- का० प्र० १०। २०८

२- सूर्यालङ्कारशतकम् - ८८, ८९

३- सूर्यशतकम् - ६

उल्लेख[1] --

अनेक धर्मों के बल से यदि एक का अनेक रूपों का उल्लेख होने से उल्लेख नामक अलंकार है। सूर्य की स्तुतियों में यह अलंकार सर्वाधिक दृष्टिगत होता है। क्योंकि देवता को प्रसन्न करने के लिए भक्त अपने देवादिदेव को विभिन्न प्रकार से उल्लेख करता है। यथा --

> सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावन: ।
> एष देवासुरगणांल्लोकान्पाति गभस्तिभि: ।।
> एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिव: स्कन्द: प्रजापति: ।
> महेन्द्रो धनद: कालोयम: सोमो ह्यपांपति: ।।[2]

यहां पर सूर्य की अनेकधा नामों से स्तुति करते हुए अनेक रूपों का उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है।

> त्वमेव ब्रह्मपरममापो ज्योति रसोऽमृतम् ।
> भू भुर्व: स्वस्त्वमोङ्कार: शर्वो रुद्र: सनातन: ।[3]
> पुरुष: सन्महो न्तस्त्वं प्रणमामि कपर्दिनम् ।।

यहां पर सूर्य को ब्रह्म ज्योतिमय, रसामृत, ॐ रुद्र आदि रूपों में उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है।

> एष धाता विधाता च बीजं क्षेत्रं प्रजापति: ।
> एष एव प्रजानित्यं संवर्धयति रश्मिभि: ।।

1- उल्लेख का लक्षण - एकस्यापि निमित्तवशादनेकधाग्रहणमुल्लेख:

2- आदित्यहृदयस्तोत्र - वाल्मीकि रामायण

3- कूर्मपुराण - आदित्यहृदय ।

एष यज्ञ: स्वधा स्वाहा ह्री: श्रीश्चपुरुषोत्तम: ।
एष भूतात्मको देव: सूक्ष्मोऽव्यक्त: सनातन: ॥[1]

यहाँ पर सूर्य को विधाता, धाता, स्वाहा, पुरुषोत्तम, श्री इत्यादि रूपों में वर्णन किया है अत: यहाँ उल्लेख अलंकार परिलक्षित होता है ।

द्वादशात्मा रविर्दक्ष: पितामाता पितामह: ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ।
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुख: ।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेय: करुणान्वित: ॥[2]

यहाँ पर सूर्य को जगतपिता पितामह, चराचरात्मा, विश्वात्मा रूप में स्तुत्य होने से उल्लेख अलंकार परिलक्षित होता है ।

तद्गुण[3] --

जहाँ न्यूनगुणवाली प्रकृत वस्तु अत्यन्त उज्ज्वल गुणवाली के सम्बन्ध से अपने रूप को त्यागकर तद्रूपता को प्राप्त करती है । वहाँ तद्गुण अलंकार होता है ।

पुरस्ताद् भासन्ते तपन ! रथिनस्ते रुचिभृतो
महाश्वानां मन्ये गलमधिगता देवमणय: ।
त एव त्वां देव द्राणमनुविशं तावदरुणं ।
ब्रुवन्त: श्रावाणामुषसि बहुधा कार्विदधते ॥

यहाँ सूर्य के रथ में जुते हुए विशाल अश्वों के गलों की मणियाँ उदित

1- आदित्यहृदयस्तोत्र - बृहद्रत्नाकर से उद्धृत ।

2- अष्टोत्तरशतनाम सूर्य स्तोत्र- महाभारत वनपर्व से उद्धृत ।

3- तद्गुण -- स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत् ।
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुण: ॥-का०प्र०१०।१३७

होने से अपने और अत्यधिक आभा को प्राप्त कर रही है । अत: यहां तद्गुण अलंकार है । न्यूनता उज्ज्वल गुण से सम्बन्धित होने के कारण अपनी न्यूनता को त्यागकर दिया ।

उष: काले वेदाध्ययनविरल्लोलरसनो
रुद्गवसद्ग्रामैमन्ये ऽरुणाति मक्तो मण्डलमिदम् ।
विनिर्गता धाताद्दलितकुरुविन्दद्युतिभरा ।
दमुष्माद् द्रागुधन् दिनकर दिशोऽयारुणयसे ॥[1]

यहां पर सूर्य शीघ्रता के साथ उदित होते हुए स्वयं रक्तमय होने के कारण चारों दिशाओं को भी अरुणमय किया है । अत: यहां पर दिशाओं ने अपने रूप को छोड़कर सूर्य के अरुणमय गुण से सम्बन्ध जोड़कर तद्रूपता को प्राप्त करने से तद्गुण अलंकार है ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य स्तुतियों में अलंकारों के माध्यम से अनेक भावों की उत्पादित कर काव्य की रचना की । सर्वत्र ही अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार परिलक्षित है ।

- o-

१- सूर्याष्टकशतकम् - २६, ८१ ।

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में विवेचित सूर्य स्तोत्रों की प्रास्थातता स्वत: सिद्ध है । स्तोत्र साहित्य की परम्परा अति प्राचीन रही है । वैदिक साहित्य इसके उद्गम स्थल हैं और उत्तरोत्तर काल में स्तोत्र साहित्य की परम्परा में स्तुतियों का निरन्तर विकास होता गया । यह स्तुतियां भावपरक तथा आध्यात्मिक होती हैं । उपासक अपने उपास्य के प्रति अत्यन्त निकट रहने के उद्देश्य से स्तुतियों को सकाम अभिव्यक्त करता है । यही परमेश्वर की स्तुति ही काव्य में भाव की तीव्रता से साहित्य रूप में परिणत होकर स्तोत्र की संज्ञा से अभिहित हुई । इन स्तुतियों में भक्तिरस का उद्दाम प्रवाह के साथ-साथ प्रभु के असाधारण गुणों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा तथा कीर्तन, स्तवन निहित रहता है । चूंकि स्तुतियों का प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म और मोक्ष ही मुख्य रहा है तथा भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत धर्म है । इसलिए धर्म में किसी भी देवता को प्रधान मानकर स्तुतियां की गईं । शिव के उपासकों ने शैव स्तोत्रों, विष्णु के उपासकों ने वैष्णव स्तोत्र तथा देवी के उपासकों ने शक्ति स्तोत्रों की रचना की ।

सूर्य ज्ञान स्वरूप ऐसा प्रकाश स्रोत है जो अनन्त के सर्वोच्च प्रकाश के साथ प्राणी को जोड़ता है । सूर्य का प्रकाश परमपवित्र चेतना का प्रतीक है । विश्व के सभी धर्मों ने सामान्य रूप से इस प्रकाश को ईश्वर की उपस्थिति का प्रतीक माना है । अचेतनात्मक नश्वर संसार को चेतना की उपलब्धि होती है और संचित चेतना प्राप्त होने पर सम्पूर्ण प्राणी जीवन धारण की संज्ञा प्राप्त करते हैं । विद्वान उस अखण्ड मण्डलाकार घन प्रकाश को सूर्य की दिव्य शक्ति मानते हैं इस प्रकार चेतन सूर्य देवता से स्वकामना की पूर्ति के लिए प्रार्थनाएं भी करते हैं तत्पश्चात् उनसे एकरूपता का अनुभव करते हुए असीम-आत्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं ।

भगवान् सूर्य का दार्शनिक तथा स्थूल स्वरूप, देवीकरण प्रतिमा की विवेचनात्मक तथ्यता मिश्रित रूप से बोधगम्य है । यह सूर्य रूप विशुद्ध तत्त्व

विभिन्न विचारधाराओं में प्रतिपादित स्थावर-जंगमात्मक सृष्टि, ब्रह्म और विश्व में अनुस्यूत है। सम्पूर्ण दिशाएं अवर्णात्मक तम से व्याप्त रहा तब सर्वशक्तिमान् परमात्मा हिरण्यगर्भ का परम उत्कर्ष तेज उस दिगन्त व्यापिनी अन्धकारमयी निशा में आत्मप्रकाश सूर्य रूप में उदित हुए और उस आध्यात्मक प्रकाश के आविर्भाव से सम्पूर्ण दिशाएं प्रकाशित हुईं। सूर्य की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सूर्य की स्तुतियों में सूर्य शब्द के अर्थ लिये गये जिनका उल्लेख पूर्वार्द्ध में किया जा चुका है। सूर्य शब्द की अनेक व्युत्पत्तियां भी प्राप्य हैं उनके अनुसार आकाश में गमन करने वाले तथा उदयकाल में कर्म करने के लिए प्रेरणा देने वाले सूर्य ही हैं और जो अभिसरण करते हैं वह सूर्य है।

वैदिक साहित्य में सूर्य स्तुतियों के रूप यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। वैदिकवाद में बहुदेवत्वाद की कल्पना सर्वशक्तिमान सूर्य के असंख्य रूप के कारण ही है। सूर्य के आध्यात्मिक पक्ष के साथ प्रतीकात्मक रूप की भी अभिव्यक्ति है। ऋग्वेद में तो सूर्यदेव को चौदह सूक्त समर्पित है। इन सूक्तों में प्राय: सूर्य शब्द से[१] भौतिक सौर मण्डल का बोध होता है। सूर्य विराट ब्रह्म की चक्षु से उत्पन्न है। सूर्य देव दूरद्रष्टा सर्वद्रष्टा और अखिल जगती के संवेक्षक हैं। सूर्य चर और अचर विश्व सभी की आत्मा तथा उनके रक्षक हैं। वही विश्वपुरुष के नेत्र भी हैं। अन्धकार को चर्म के समान लपेटते हुए वे[३] उसका विध्वंस करते हैं। अपनी महत्ता के कारण वह देवों के दिव्य पुरोहित हैं। अग्नि में दी हुई आहुति वे ही प्राप्त करते हैं[४]। सविता अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के सूर्यों में एक समान विराजमान प्रेरक दिव्य शक्तिरूप परब्रह्म परमात्मा। चिकित्सात्मक भाव भी सूर्य में ही माना गया और सूर्य की किरणें सभी रोगों का शमन करती हैं। तात्पर्य यह है कि सूर्य भौतिक सौर मण्डल के स्थूल देवता हैं, जबकि सविता उनमें अन्तर्निहित दिव्यशक्ति

१- दूराय विश्व चक्षुषे, ऋग्वेद १।५०।२

२- चक्षो: सूर्यो अजायत - ऋग्वेद १०।९०।१३

विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा: - ऋग्वेद ७।६०।२

महादेवा नाम सूर्य: पुरोहित: - ऋग्वेद ८।९० ।१२

सूर्यस्य रश्मिभि: समुच्यति - ऋग्वेद १। । ३

का ध्यानावस्थित महर्षियों के अन्त:करण में प्रादुर्भूत आध्यात्मिक प्रेरणा के अनुसार वर्णित रूप वाले हैं ।

वैदिक साहित्य के साथ पुराणों में सूर्य स्तुतियों में सूर्य के स्वरूप का वर्णन प्राप्य है । पुराणों में सूर्य की सकाम स्तुतियों का अधिक उल्लेख है । इनमें सूर्य के मुख्य-मुख्य कर्म प्रकाश एवं उष्मादान, धी को प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहों की सृष्टि एवं उनका धारण, संचालन प्रभृति, काल नियंत्रण, निर्लिप्तता तथा पवित्र करने की क्रिया आदि का वर्णन है । भगवान् की अनन्त शक्तियों के भण्डार में से प्राणियों को जीवन धारण करने के लिए तत्त् शक्ति प्रदान करने वाले माध्यमिक दिव्य सूर्य को देवता की संज्ञा से विहित किया है । चूंकि पुराणों में वर्णित सूर्य की स्तुतियों का विवरण विशद् है । और यह स्तुतियां किसी न किसी उद्देश्य से की गई हैं, कहीं यह स्तुतियां शत्रु के नाश के लिए जैसे -वाल्मीकि रामायण का आदित्य हृदय स्तोत्र, अदितिकृत सूर्य स्तुति इत्यादि है । कहीं कुष्ठादि रोग शमन के लिए जैसे साम्ब कृत सूर्य स्तुति तथा रक्षात्मक स्तुतियों में कवचात्मक स्तोत्रों की गणना की गई । यह कवचात्मक स्तोत्रों द्वारा शत्रु, भूत-प्रेतादि से रक्षा की जाती है ।

वैदिक साहित्य और पुराणादि में सूर्य का अतिरोचक तथा सारगर्भित वर्णन मिलता है । ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप अपौरुषेय वेद के शीर्षस्थानीय परम गुह्य उपनिषदों में भगवान् सूर्य के स्वरूप का मार्मिक कथन है, उपनिषदों के अनुसार सब का सार तत्त्व एक अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य, सत्-चित्, आनन्द तथा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप ही परमतत्त्व है । इसका न कोई नाम है, न रूप , न क्रिया, न सम्बन्ध और न कोई कुल एवं न जाति ही है । तथापि गुण सम्बन्ध आदि का आरोप कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है और कहीं विष्णु कहीं शिव, कहीं नारायण और कहीं स्वयं साक्षात् सूर्य भगवान् हैं । उपनिषदों में वर्णित सूर्य स्तुतियों में प्रमार्ग प्रणेता रूप सूर्य कहा गया है । सूर्य को ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि का रूप रूप माना है ।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में सूर्य की विशिष्ट स्तुतियां जो पुराणों से उपलब्

हुई उनका विवेचन विशेष रूप से किया गया है । विशिष्ट स्तुतियों में आदित्य हृदय स्तोत्र, साम्ब कृत सूर्य स्तोत्र, आदित्य स्तोत्र, ब्रह्मकृत स्तोत्र, महेश्वर कृत स्तोत्र, देवकृत स्तोत्र, दिवाकर स्तोत्र, त्रैलोक्य मंगल कवच इत्यादि हैं । सामान्य स्तोत्रों में सूर्या व्यशतक, सूर्यशतक, सुधालहरी, बृहत्स्तोत्र रत्नाकर में वर्णित सूर्य स्तोत्र इत्यादि है ।

इन स्तुतियों के आधार पर सूर्य के अनेक गुणों व रूपों का ज्ञान स्वतः हो जाता है । सूर्य स्तुतियां अधिकांशतः मार्कण्डेयपुराण, भविष्य, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण से उद्धृत हैं । लिङ्ग, मत्स्य, विष्णुपुराण में सूर्य धर्म, क्रियाएं, व्रत उपस्थान भी विवेचित हैं । पुराणों में स्तुति के साथ सूर्यवंशावली का वर्णन भी स उपलब्ध है जिसका वर्णन पूर्व कर चुके हैं ।

इन स्तुतियों में सूर्य की सगुण एवं निर्गुण सत्ता दोनों का ही विवेचन है । निर्गुण रूप में भगवान् भास्कर अविज्ञेय, अव्यक्त, सूक्ष्म, अचल रूप वाले हैं । सत, रजस, तमस् वाले त्रिगुणात्मक सृष्टि के उत्पत्ति स्थल है । यह अक्षय अचिन्त्य असीमित, आदि देव हैं । शाश्वत रूप वाले देवाधिदेव दिवाकर हैं । सगुण रूप में ब्रह्म की साक्षात् प्रतिमा माना है । परमेश्वर के रूप वाला कहा । यह ब्रह्म, आदित्य, ज्योतिर्मय, ईश्वरावतार हैं । परमात्मरूप होने के कारण इनमें कोई भेद नहीं है । सूर्य प्रेरक एवं दिव्य शक्ति है । परमपुरुष है । परमात्मा की चेतना रूप में अभिहित है । इस प्रकार सूर्य भगवान् सर्वात्मा, सर्वकर्ता, सर्वेश, सर्वेश आदि नामों से विभाषित हैं । सूर्योपनिषद् के अनुसार भगवान सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है । ब्रह्मरूप उपासना करने वाला आदित्यरूप हो जाता है ।

प्राचीनतम् वैदिक ऋषि मुनि से आधुनिकतम् वैज्ञानिक तक सूर्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणों से भलीभांति परिचित होते रहे हैं । अतएव सूर्य से भावपूर्ण सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने सूर्योपासना को विश्वधर्म और संस्कृति का अनिवार्य अंग बना दिया फलतः भगवान् सूर्य सम्पूर्ण विश्व के लिए अधिष्ठाता के रूप में अंगीकृत हो गये । विश्व के आधाररूप विश्व को प्रतिदिन

प्रकाश से अनुगृहीत करते हैं । जगत् के सर्वदाक हैं । सम्पूर्ण प्राण एवं शक्ति देने वाले हैं । सूर्य द्वारा प्राणन, विकसन, वर्धन, विपरिणामन आदि क्रियाएं होती हैं । सूर्य में ही प्राणी का लय है ।

> उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्राणयति
> तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते (ऐतरेय ब्राह्मण २५।६)
>
> सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा (सूर्य उपनिषद्)

सूर्य स्थावर जंगम के अन्तर्यामी एवं सम्पूर्ण विश्व की आत्मा । समस्त संसार के उत्पादक हैं- कहा भी गया है --

> 'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'

सूर्य से सांसारिक सृष्टि चक्र प्रवर्तित और प्रचलित है । सूर्य से अन्नादि की उत्पत्ति होती है । सूर्य से समस्त सांसारिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं । यदि सूर्य न हो तो सांसारिक सृष्टि चक्र ही नहीं चल सकता है । यह सूर्य का सर्व प्रसवितृत्व ही गुण है ।

सर्ववेदमयो रविः के अनुसार सूर्य नारायण सर्ववेदमय हैं । सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं तथा त्रिमूर्त्यात्मक और त्रिवेदात्मक सर्ववेदमय हरि हैं । भगवान सूर्य में समस्त देवताओं का निवास माना गया है । समस्त देव उन्हीं के रूप हैं । सूर्योपनिषद् में "त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णु" इत्यादि द्वारा सर्वदेवरूप कहा गया । सूर्य का तेज ही विष्णु, प्रकाश, ब्रह्म तथा शक्ति ही शिव है । ब्रह्मपुराण में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है -- सृष्टवर्ये भगवान् विष्णुः सविता स तु कीर्तितः ।

सूर्य में ही सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी चार-अचार नाशवान और अव्यय की मूल सत्ता व्यवस्थित है । सूर्य की रश्मियों में लोक परलोक, देव-पितर मान और ब्रह्माण्ड आदि निविष्ट है । सूर्य ही एकमात्र

प्रजापति है । भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर, जंगम्, सत्-असत् सबके उत्पादन कर्त्ता हैं । सूर्य ही वेदकर्त्ता, वेदाङ्ग और वेद वाहन हैं ।

इन स्तुतियों में कालचक्र प्रणेता रूप में सूर्य प्रतिष्ठित हैं । भगवान् सूर्य ही समय नियन्ता और समय विभाजक हैं । सूर्य से ही दिन, रात, तिथि,पक्ष मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, मन्वन्तर और कल्पादि के समय का यथार्थ ज्ञान होता है । कर्मयोग की प्रेरणा सूर्य से ही मिलती है । दिव्य प्रकाश एवं चैतन्य से निष्काम भाव होकर विश्व का कल्याण करते हैं ।

सूर्य स्तोत्रों में सूर्य के विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है । इन नामों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में स्वीकार किया है । यह स्तुतियां कहीं २१, ११, १०८, १००८ नामों वाली हैं । यह उनके वाच्य नामों की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं । हजारों नामों की कल्पना ही स्तोत्र रूप में विकसित हुई । यह नाम देवता के गुणों को पूर्णतया सार्थक करते हैं । रवि, भास्कर, सविता, भानु, चित्रभानु इत्यादि नामों से अभिहित है ।

सूर्य को देवयान का अधिष्ठाता कहा गया । देवों में सबसे अधिक देदीप्यमान तथा परम तेजस्वी देव कहा जाता है । सूर्य ज्योति ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतियों की भी ज्योति, उनकी प्रकाशक सर्वश्रेष्ठ सर्वोच्च ज्योति है । यह विशाल विश्व-विजयी और ऐश्वर्य विजयी है । सूर्य के कल्याणकारी, कान्तिमय,नाना-वर्ण, शीघ्रगामी आनन्ददायी एवं स्तुत्यरूप है । इन स्तुतियों में सूर्य को ग्रहपति, ज्योतिषपति इत्यादि नामों से अभिहित किया है क्योंकि सूर्य सभी ग्रहों का स्वामी है । सभी ग्रह इससे संचालित होते हैं । चन्द्र, मंगल, बृहस्पति मित्र ग्रह तथा बुध, सोम, शनि सूर्य के शत्रु ग्रह कहे जाते हैं । यही सूर्य मानव जीवन में विभिन्न भावों में रहकर मनुष्य की विभिन्न स्थितियों को समुत्पन्न करते हैं ।

पंचमहाभूतों के अधिपति पाँच देवता हैं - गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु, सूर्य । सनातन धर्म के उपासक चाहे किसी भी सम्प्रदाय के हों, चाहे किसी भी देवता की पूजा करते हों किन्तु सर्वप्रथम पंचदेवों की पूजा करनी पड़ती

है । ये देवता सगुण परब्रह्म के प्रचलित रूप हैं यथा --

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पञ्चदैवत मित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत ।।

इनमें सूर्य का स्थान सर्वप्रथम है क्योंकि सभी का अधिष्ठान सूर्य में ही है । इसलिए सूर्य का महत्व अधिक है । भगवान् शंकराचार्य ने संध्याभाष्य में गायत्री मन्त्र के अर्थ में भगवान् सूर्य के माहात्म्य का वर्णन किया है यथा --

"स्थावर जंगम सम्पूर्ण जगत् के आत्मा सूर्य ही हैं, इस प्रकार भगवान् सूर्य ईश्वरावतार ही हैं, अर्थात् अव्याकृत स्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियों के जीवन का हेतुरूप और प्राणरूप एवं सबको सुख देने वाले चराचर जगत् के उत्पादक सूर्य रूप ईश्वर का सबसे श्रेष्ठ और पाप का नाश करने वाले तेज का ध्यान करते हैं । वह भगवान् सूर्य सविता नाम से विख्यात बुद्धियों को असन्मार्ग से निवृत्त करके सन्मार्ग में प्रेरणा प्रदान करते हैं ।"

इस प्रकार सूर्य गायत्री मन्त्र में भी अधिष्ठित है । सूर्य का इससे महत्व अधिक बढ़ जाता है । यज्ञानुष्ठानों की उपादेयता, वाञ्छित फल प्रदायक शक्ति वैदिककाल से वर्तमान तक स्वान्त: सुखाय के एकमात्र साधन के रूप में निरन्तर बनी रही है । और किसी भी उपलब्धि हेतु यज्ञों का आरम्भ ही । सूर्य का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि अग्निहोत्री पुरुष दीप्यमान अग्नि शिखाओं में प्रदत्त आहुतियां द्वारा अग्निहोत्रादि कर्म को सूर्य ही तृप्त करते हैं यथा --

एह्येहीति तमाहुतय: सुवर्चस: ।
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।।
- मुण्डकोपनिषद् २।६

सूर्य का उल्लेख जहां कहीं भी है आनुषङ्गिक ही है ।सूर्य से सम्बन्धित उपाख्यान अति संक्षिप्त रूप से पुराणों में प्राप्त है । सूर्य की उत्पत्ति कथा एवं

महात्म्य कथा थोड़े बहुत भिन्न रूपान्तरों के साथ मिलते हैं । यह कथाएं अधिकांशत: पुराणों में उपलब्ध हैं उन पुराणों में विशेष कर भविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व) वराहपुराण (आदित्योत्पत्ति) विष्णुपुराण (द्वितीय अंश), कूर्मपुराण (४० वां अध्याय) ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड) आदि में है ।भविष्यपुराण के ब्रह्मपर्व में दुर्वासा के शाप से कृष्णपुत्र साम्ब के कुष्ठरोग से आक्रान्त होने की प्रख्यात कथा है । मुक्ति के लिए सूर्य की आराधना की थी । पद्मपुराण के सृष्टि-खण्ड के अध्याय ८२ में महाराज भद्रेश्वर की प्रख्यात गाथा प्रस्तुत प्रमाण है । फलत: ब्राह्मणों की सम्मति से महाराज भद्रेश्वर ने सूर्याराधना के द्वारा कुष्ठ रोग से छुटकारा पाया । प्रसिद्ध `सूर्यशतक` के रचयिता मयूर कवि ने भी कुष्ठ रोग निवारणार्थ भगवान् सूर्य की आराधना करते हुए सूर्यशतक की रचना कर अपने को कुष्ठरोग से विमुक्त किया । ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना करते समय सूर्य की स्तुति की - यह भी कथा अत्यन्त प्रचलित है । अदिति के पुत्र को दैत्यों ने हरा दिया तो शत्रुओं के नाश हेतु सूर्य की आराधना की कथा प्रचलित रही है । इस प्रकार अनेकानेक कथाएं हैं जिनमें सूर्य की महिमा का गुणगान किया गया है । श्रीमद् भागवत् में सूर्य से तेज तेजस्कामी विभावसु तथा रामायण में सूर्य से अरि विजय की कामना की गई है ।

सूर्य की आराधना से कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह, नेत्रों का अन्धापन सब नष्ट हो जाता है । नाना प्रकार की व्याधियां सूर्य की किरणों से दूर किया जाता है । सूर्य स्तुतियों में सर्वत्र फलश्रुतियों का विवेचन किया गया है । सूर्य के कामद एवं कल्याणान्वित नाम यह प्रकट करते हैं कि सूर्य-पूजा से इच्छाओं की पूर्ति होती है, प्रजा द्वार नाम से सन्तान की प्राप्ति होती है । अन्धकार का नाश करते हैं । प्रात:कालीन किरणें जीवन में कर्म के लिए प्रेरित करती हैं । सूर्योपासना से दिव्य आयु, ऐश्वर्य धन, मित्र, स्त्री, अनेक इच्छित भोग तथा स्वर्ग ही नहीं, मोक्ष तक भी अनायास सुलभ हो जाते हैं । सूर्य में सर्वोपकारी गुण हैं । सर्वत्र ही एक स्वर से सूर्य से आरोग्यलाभ का विशिष्ट बोध किया है । सूर्य के द्वादशादित्य ही बारह मास के विभिन्न

देवता हैं । इसलिए सूर्य को द्वादशात्मा कहा जाता है । द्वादशादित्यों का भी विशेष महत्त्व है । पृथक् पृथक् मास में इन द्वादशादित्यों की उपासना-पद्धति बताई गई है । श्रीमद्भागवत में उस द्वादशादित्यों की उपासना का माहात्म्य बताते हुए कहा भी गया है --

> एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतय: ।
> स्मरतां सन्ध्ययो नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने ।।
> - श्रीमद्भागवत् १२ ।११।४५

सूर्य चैत्र में धाता, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में मित्र, आषाढ़ में वरुण, श्रावण में इन्द्र, भाद्रपद में विवस्वान्, आश्विन में पूषा, कार्तिक में क्रतु मार्गशीर्ष में अंशु, पौष में भग, माघ में त्वष्टा, फाल्गुन में विष्णु नाम से जाने जाते हैं ।

सूर्य की किरणें कल्पवृक्ष के समान हैं । सूर्य किरणों से आकृष्ट जल पृथ्वी पर जीवनदायी है उसी प्रकार सूर्य किरणों से आप्यायित होकर मन और शरीर नवीन स्फूर्ति पाता है । सूर्य केवल विश्व के प्रकाशक, प्रवर्तक, धारक, प्रेरकमात्र ही नहीं अपितु आरोग्यकारक व नेत्र जनित पीड़ा को भी हरने वाले हैं । नेत्र-जनित विकार के नाश अक्षि-उपनिषद् में सूर्य की आराधना का विवेचन है । अपने तेजोमय प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करते हैं । तम को दूर कर विश्व का कल्याण करते हैं ।

इस प्रकार इन्हीं फलश्रुतियों के माध्यम से सूर्योपासना की महत्ता को व्यक्त करते हुए कहा भी गया है कि जो सूर्य की उपासना नहीं करता वह अज्ञानमय, प्रकाशविहीन असुर्यलोक (असुरों के लोक) को प्राप्त करता है ।

सूर्योपासना की व्यापकता के कारण सूर्यदेव के उपासकों ने अपने उपास्य को सर्वोच्च माना तथा इस सम्प्रदाय को 'सौर सम्प्रदाय' कहा गया । इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का निरूपण पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्य के

ग्रन्थों में उपलब्ध है। सूर्य देव की उपासना पद्धति का निर्देशन एक 'सूर्यतन्त्र' नामक ग्रन्थ में संगृहीत है।

हिन्दू जाति में प्रचलित उपासना-पद्धतियों में सूर्योपासना का एक विशिष्ट स्थान है। इसका कारण यह है कि सौरमण्डल में सूर्य नवग्रह, पंचदेव, त्रिदेव में प्रथम पूज्य देव हैं और आदि देवता रूप में प्रतिष्ठित हैं। सूर्य ही समस्त लौकीय देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। विविध प्रकार से सूर्य की पूजा का विधान किया है। कुछ लोग पूजात्मक, कुछ लोग व्रतादि के द्वारा व्रतात्मक, कुछ लोग पठन मात्र से पाठात्मक, कुछ लोग माला पर जपादि द्वारा जपात्मक और कुछ लोग ध्यान आदि द्वारा ध्यानात्मक विधि द्वारा सूर्य की उपासना करते हैं। इन स्तुतियों में जप, व्रत, पूजाविधि का वर्णन मिलता है और त्रिकाल सन्ध्योपासना, तांबे के पात्र में अर्घ्य देने की परम्परा अति प्राचीन है। यह पूजा स्वान्त: सुखाय वाञ्छित फल प्रदायक एवं मोक्षमार्ग प्रणेता, दु:ख रोग निवारक और अन्धकार नाशक के रूप में सूर्य को अभिहित करती है। सूर्य की पूजा में रविवार और शुक्लपक्ष की सप्तमी का विशेष महत्व रहा है। सूर्य के जितने भी व्रत जैसे मन्दरा सप्तमी इत्यादि षष्ठी तिथि को शुरू कर सप्तमी तिथि में पूजाति का विधान है। सूर्य का प्रिय रत्न माणिक्य है। माणिक्य धारण करने से यह शुभ फल देते हैं यथा --

माणिक्यधारणे: (बालकामरण- स्मृति कौस्तुभ)

सूर्योपासना में प्रयुक्त विभिन्न पुष्प विभिन्न फल को देते हैं। इन पुष्पों में सर्वाधिक फल देने वाला मन्दार का पुष्प है। वृक्षों में सूर्य का प्रिय वृक्ष नीम कहा गया है। सूर्य के त्यौहारों में माघ के महीने में मकरसंक्रान्ति सर्वफलदायक है। सूर्य की पूजा में मुद्राओं का भी विशेष महत्व रहा है। उनकी अपनी कुछ विशिष्ट मुद्राएं हैं जिनका विवेचन पूर्वार्द्ध में कर चुके हैं। यह मुद्राएं स्वास्थ्यवर्धक तथा देवता को प्रसन्न करने के लिए की जाती हैं।

जहां एक ओर सूर्योपासना की परम्परा अति सनातन रही है वहीं

दूसरी ओर सूर्य के ध्यान रूप की भी अवतारणा हुई है । इन स्तुतियों में सूर्य का ध्यान रूप वर्णन है । आदित्य साकार विग्रह है । रक्त कमल पर स्थित, हिरण्यमय वर्ण, चतुर्भुज तथा दो भुजाओं में पद्म शंख धारण किये हुए तथा दो हस्त अभय तथा वरमुद्रा से युक्त सप्ताश्वों वाले रथ पर आसीन अरुण नामक सारथि द्वारा चालित भगवान् सूर्य हैं । जो उपासक ऐसे सूर्य का ध्यान करता है वह परम गति को प्राप्त करता है ।

इसी ध्यान की परम्परा में मन्दिरों व मूर्ति की स्थापना का प्रचलन हुआ । भारत में प्राचीनकाल के अनेक सूर्य मन्दिर हैं जिनमें सूर्य की मूर्ति या रथ रूप में स्थापना की गई है । उपासक मन्दिरों में जाकर सूर्य के इस दिव्य-रूप का दर्शन करते हैं । सूर्य के मन्दिरों में सर्वाधिक प्रसिद्ध कोणार्क मन्दिर तथा काश्मीर प्रदेश में स्थित मार्तण्ड का मन्दिर है जो आज भी अपने अवशेषों के साथ सूर्योपासना की परम्परा को कायम रखे हुए है ।

अति संक्षिप्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में यह कहना पर्याप्त होगा कि आध्यात्मिक,आधिदैविक तथा आधिभौतिक शक्तियों की प्राप्ति एवं इन सबके विकास के लिए सूर्य शक्ति ही सर्वोपरि है । सूर्य की सभी प्रकार की उपासनाओं में उपासक को अद्भुत सुख शान्ति की अनुभूति होती है ।

-0-

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्निपुराण - मुनसुख राय मोर द्वारा प्रकाशित क्लाइव रोड कलकत्ता - २०१४ सं०

अमरकोश - श्रीगुरुप्रसाद शास्त्री, आनन्द सागर प्रेस गायघाट, वाराणसी, १६५० सन्

अलंकारों का स्वरूप एवं विकास - डा० ओमप्रकाश

अलंकार रीति और वक्रोक्ति - डा० सत्यदेव चौधरी

अलंकारसर्वस्व - प्रकाशक रेवाप्रसाद द्विवेदी

अष्टाध्यायी - पाणिनि द्वारा रचित

अष्टोत्तरशतनाम् - मल्लिका विद्यासागर मिश्र

अथर्ववेद - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर संस्कृत संस्थान, बरेली, १६६२ ।

आइन-ए-अकबरी - ब्लाचमैन का अंग्रेजी अनुवादक मोतीलाल गुप्त १६६५

उज्ज्वलनीलमणि - निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित १६३१

उत्तराध्ययन अंग्रेजी प्रस्तावना - जार्ल चार्पेटियर उपमाला सं० १६४० ।

ऐतरेय उपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर

ऐतरेयब्राह्मण - चौखम्बा संस्कृत, सीरीज,वाराणसी ।

काव्यप्रकाश - नागेश्वर टीका, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, २००८

काव्यादर्श - श्री वी० नारायण अय्यर सम्पादित बाक्लिा प्रेस, मद्रास, १९६४ ।

काव्यानुशासन - श्री वामन शर्मा कुलकर्णि सम्पादित द्वितीय संस्करण १९६४

कल्याण उपासना अंक - सम्पादित गीता प्रेस, गोरखपुर ।

काव्यमाला - पं० दुर्गाप्रसाद और वासुदेव लक्ष्मण, सम्पादित निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९२६ ई०

काव्यालंकारसूत्र - वामन द्वारा रचित

कूर्मपुराण - मनसुख राय मोर द्वारा सम्पादित, क्लाइव रोड कलकत्ता, २०१८ सं०

गोपथब्राह्मण - कल्याण गीता प्रेस, गोरखपुर

गोपालोपनिषद् - कल्याण उपनिषद् अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

गरुडपुराण - श्रीरामतेज पाण्डेय सम्पादित पुस्तकालय काशी सं० १९६२ ।

छान्दोग्योपनिषद - हरिनारायण आप्टे आनन्द आश्रम, पूना १८३७ ।

छान्दोऽनुब्राह्मण - एच० डी० वेलणकर द्वारा सम्पादित जयदामन हरितोष समिति बम्बई में अंकित ।

छन्दशास्त्र - रमाशंकर शुक्ल रसाल सन् १९६१ में प्रकाशित

छन्दोदर्पण - गौरीशंकर मिश्रा, सन् १९७७ में प्रकाशित ।

छन्दप्रभाकर - जगन्नाथ भानु, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी । सन् १९५४

छन्दमञ्जरी - गंगादास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९५६ ।

छन्द शेखर - एच० डी० वेलणकर

जैनकाव्य की पृष्ठभूमि - डा० प्रेमसागर, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, संवत् १९३६ ।

जयदेवच्छन्द - एच० डी० वेलणकर द्वारा सम्पादित, जयदामन हरितोष समिति बम्बई में संकलित

तन्त्रसार - महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द वागीश भट्टाचार्य रचित चौखम्भा संस्कृत सीरीज, सन् १९३८ ।

तैत्तिरीयब्राह्मण - हरिनारायण आप्टे, आनन्द आश्रम, पूना १८९८ ।

तैत्तिरीय आरण्यक - कल्याण गीता प्रेस, गोरखपुर

तैत्तिरीय संहिता - हरिनारायण आप्टे, आनन्द आश्रम, पूना, सं० १८२० ।

ताण्ड्यायन - श्रीचिन्नस्वामिन सम्पादित जयकृष्ण हरिदास सं० १६३६ ।

देवीरहस्य पटल - श्रीरामचन्द्र काक सम्पादित, श्रीनगर, सं० १६४१ ।

नाट्यशास्त्र - भरतमुनि द्वारा रचित रूप प्रिंटिंग प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित ।

निरुक्त - क्षेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा प्रकाशित दुर्गादास भाष्य ।

नवीनपिङ्गल - अवध उपाध्याय

ध्वन्यालोक लोचन - अभिनवगुप्त द्वारा रचित ।

पिङ्गलपीयूष - परमानन्द शास्त्री - चौखम्भा संस्कृत सिरीज ।

पिङ्गल सूत्र - निर्णय सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित ।

पातञ्जल योगसूत्र - गीताप्रेस, गोरखपुर ।

पतञ्जलि महाभाष्य - श्रीशिवदत्त शर्मा टीका प्रकाशित निर्णय सागर प्रेस बम्बई १८३६ ।

पद्मपुराण - अयोध्याप्रसाद प्रकाशित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

पादुका सहस्र - मूल मात्र पार्थ सारथि एडवोकेट देवकोट्टै द्वारा प्रकाशित ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण - वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई से मुद्रित, संवत् १९६६ ।

ब्रह्माण्डपुराण	क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित मुम्बई १९६२
भक्तिरसायन	मधुसूदनसरस्वती अनुवादक श्रीमुकुन्ददेव शास्त्री, वाराणसी विश्वविद्यालय, वाराणसी, पुस्तक सं० १०१९८।
भविष्योत्तरपुराण	बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, काशी संस्करण ।
भविष्यपुराण	अनुवाद श्रीराम शर्मा, क्षेमराज श्रीकृष्णदास मुम्बई से प्रकाशित सन् १९५९ ।
भागवत गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर ।
भक्तिरसामृत सिन्धु	अनुवादक - श्यामनारायण पाण्डेय
महाभारत	वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तक सं० १७९९४ ।
मार्कण्डेयपुराण	श्री मनसुख मोर द्वारा सम्पादित, क्लाइव रोड, कलकत्ता, १९६२ ।
मत्स्यपुराण	श्रीमनसुख मोर द्वारा सम्पादित, क्लाइव रोड, कलकत्ता, २०११ ।
मैत्री उपनिषद्	कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
महानारायणोपनिषद्	श्री विमलानन्द सूरि सम्पादित, मद्रास, सन् १९५७
यजुर्वेद	श्रीपाद सातवलेकर सम्पादित भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मण्डल, औंध सतारा १९४४ ।

रसगङ्गाधर	-	पंडितराज जगन्नाथ द्वारा रचित, श्रीबद्रीनाथ कृत व्याख्या, चौखम्भा संस्करण प्रकाशन, वाराणसी १९५५ ।
लिङ्गपुराण	-	वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित, १८६३ ।
बृहत्संहिता	-	ठाकुरप्रसाद गुप्त, विजय नगर संस्कृत सीरीज़, वाराणसी से प्रकाशित ।
वृत्तरत्नाकर	-	नारायणभट्टीय हिन्दी संस्कृत टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी से प्रकाशित, १९६६ ।
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर	-	श्रीवासुदेव सरस्वती, काशी संस्करण ।
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर	-	शंकर द्वारा रचित, काशी संस्करण
वाल्मीकि रामायण	-	चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी
विष्णुसहस्रनाम	-	शांकरभाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
व्यवहारभाष्य	-	मलयगिरि द्वारा रचित ।
बृहद्देवता	-	श्रीरामकुमार राय द्वारा सम्पादित, चौखम्भा संस्करण, वाराणसी, २०२० ।
बृहदारण्यकोपनिषद	-	गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०११ । चतुर्थ संस्करण ।

विष्णुपुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर

वैदिकदेवशास्त्र - मैक्डानल द्वारा रचित ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण - कल्याण उपासना अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर

वराहपुराण - खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा मुम्बई से प्रकाशित सन् १६५६ ।

कृत्प्रत्ययकौमुदी - निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित

संस्कृत हिन्दी शब्द-कोष - वी० एस० आप्टे

संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान - डा० नेमिचन्द्र शास्त्री

संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० बलदेव कुमार

संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० ए० बी० कीथ अनुवादक डा० मंगलदेव शास्त्री ।

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० बाबूराम त्रिपाठी ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, काशी, १९५६ ।

साहित्यदर्पण - विश्वनाथ द्वारा रचित, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी से प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, सं० १९५५ ।

संस्कृत पञ्चदेवतास्तोत्राणि - सुरेन्द्र नारायण त्रिपाठी, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशन - सनमार्ग बंगला रोड जवाहर नगर, नई दिल्ली, सन् १९७४ ।

साम्बपुराण - खेमराज, श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित मुम्बई १९५९ ।

सौरपुराण - आनन्द आश्रम पूना पुस्तक सं० १८११२ ।

सुवृत्ततिलक - क्षेमेन्द्र द्वारा रचित ।

सत्यार्थप्रकाश - प्रथम संस्करण, १८७५

सुधालहरी - पण्डितराज जगन्नाथ का काव्यसंग्रह से उद्धृत ।

स्कन्दपुराण - काशी खण्ड, छठां भाग, मनसुखमोर क्लाइव रोड, कलकत्ता - २०१६ ।

सूर्योपनिषद् - श्री विमलानन्द सूरि द्वारा सम्पादित, मद्रास १९५७

स्तोत्रार्णव - श्रीकोदण्ड शर्मा कृत श्री टी० चन्द्रशेखरन् सम्पादित, प्रकाशित, मद्रास १९६१ ।

स्तोत्ररत्नावली - गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित, २०१६ ।

सूर्यशतक - मयूर कवि द्वारा रचित, निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित ।

सूर्यारुण्यशतक - अनुवादक परमानन्द शास्त्री, नेशनल प्रिंटिंग प्रेस, कनवरीगंज, बनियाबाड़ा, अलीगढ़ ।

स्वयम्भू स्तोत्र - अनुवादक सम्पादक, जुगल किशोर मुख्तार वीर सेवा मन्दिर, सरसावा, १९५६ ।

स्तुति विद्या - सम्पादक अनुवादक साहित्याचार्य, पण्डित पन्नालाल जैन बसन्त, १९५० ई०

हिन्दी काव्य में रससिद्धान्त - डा० सत्यदेव चौधरी

हलायुध कोश - जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी, १८७१ ।

हरिवंशपुराण - नीलकण्ठ कृत टीका आनन्द आश्रम, पूना ।

ऋग्वेदसंहिता - पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी,
वैदिक पुस्तक माला,कृष्णगंज,सुल्तानपुर,
भागलपुर, १९२१ ।

शाक्तप्रमोद - राजदेवनन्द सिंह बहादुर संग्रह प्रकाशित,
श्रीखेमराज कृष्णदास सेन मुद्रालय २००८ ।

शारदातिलकतन्त्र - रामकृष्ण मिशन पुस्तकालय, कलकत्ता से
प्रकाशित १९३३ ।

शतपथब्राह्मण - श्री रघुवीर द्वारा सम्पादित,
मोतीलाल बनारसीदास, १९३९ ।

शब्दकल्पद्रुम - राजा राधाकान्त सम्पादित १९६१ ।

शब्दवाचस्पत्य - तर्क वाचस्पति तारानाथ संकलित,
चौखम्भा संस्कृत सिरीज,वाराणसी,१९६२

श्रुतबोध - चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

शिवपुराण - श्रीरामतेज पाण्डेय, सम्पादित
पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९६२ ।

श्रीमद्भागवत् - गीताप्रेस, गोरखपुर ।

प्रश्नोपनिषद् - गीताप्रेस, गोरखपुर ।

Sunworship in Ancient India - Written by V.C.Srivastava
Published by - Indological Publications.

G.de. Blonay - Lardesses Boudhique Tara,
Hiramanda member, Arch Survey
of India, No. 20 .